डुग्गर के नगर

(डुग्गर के नगरों, राजथड़ों तथा नगरोटों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय)

- शिव 'निर्मोही' -

डुग्गर के नगर

(डुग्गर के नगरों, राजथड़ों तथा नगरोटों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय)

– शिव 'निर्मोही' –

प्रकाशकः-

साहित्य संगम पब्लिकेशन्स

कच्ची छावनी, जम्मू

डुग्गर के नगर
लेखक :- शिव 'निर्मोही'
प्रकाशक- साहित्य संगम पब्लिकेशनस्
जम्मू

प्रकाशन वर्ष : 2007

मूल्य:- 200 /- रुपये
दो सौ रुपये

प्रतियाँ: 500

आभार:- इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ लेखक जे. एण्ड. के, अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ द्वारा प्रदत वितीय सहायता हेतु आभारी है, पुस्तक की त्रुट्टियों से अकाँदमी का कोई सम्बन्ध नहीं। पुस्तक में प्रकाशित सामग्री का दायित्व लेखक पर है।

मुद्रक : बाला जी आफसेट,
दया बस्ती, नई दिल्ली।

विषय सूची

क्रमांक	नगर	पृष्ठ
38.	चेडेई (चड़ेयाई)	117
39.	जिब	119
40.	क्रिमची	122
41.	उधमपुर	125
42.	चन्देल नगरी	130
43.	जगन्नपुर (जगानु)	133
44.	बन्दरालता	135
45.	मझालता	144
46.	थियाल	145
47.	वब्बापुर	146
48.	मनकोट (रामकोट)	148
49.	सुमरता	150
50.	कोह्‌ग	151
51.	भड्‌डु	152
52.	नगरोटा पृथ्वीपाल	153
53.	बल्लपुर	156
54.	महानपुर	162
55.	बनी	163
56.	बसोहली	165
57.	लख्ऩपुर	172
58.	कठुआ	174
59.	नगरीपरोल	176
60.	जसरोटा	178
61.	जसमेरगढ़	182
62.	राजपुरा	183
63.	नन्दक (सोबा)	185
64.	रामगढ़	188
65.	विराना	193
66.	पुरमंडल	194
67.	रणवीर सिंह पुरा	196
68.	नृसिंह पुरा	197
69.	काह्‌ना चक्क	197
70.	वाहुस्थली	198
71.	डन्साल	202
72.	जन्द्राह	203
73.	जम्मू	204
74.	सहायक ग्रंथ सूची	234
75.	लेखक परिचय	

समर्पण

– पत्नी अनुसूया के नाम
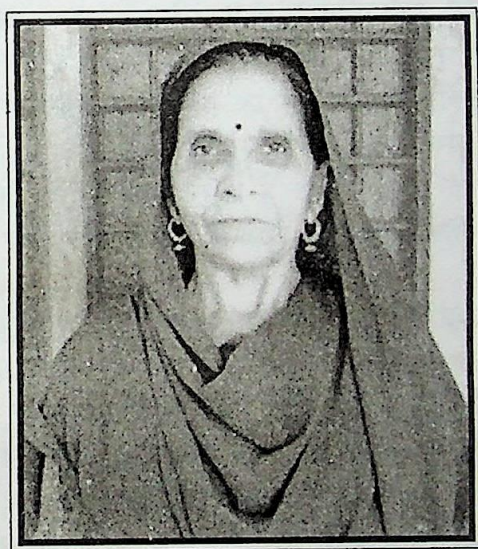
शिव 'निर्मोही'
लेखक
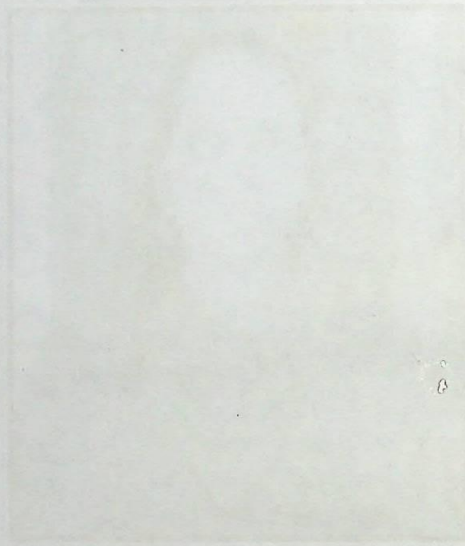
पूर्व कथन

'डुग्गर के नगर' अपने ढ़ग की पहली पुस्तक है। इस में इस भूखंड में बसे नगरों की संरचना, इतिहास तथा भूगोल तथा संस्कृति की दृष्टि से सर्वेक्षण किया गया है।

डुग्गर के प्रायः सभी नगर और उपनगर किसी नदी या नदी के तट पर बसे हैं, अतः इनमें अब भी नदी घाटी सभ्यता का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव है। इन नगरों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है, यथा नगर, राजथड़ा और नगरोटा, नगर की परिभाषा बड़ी व्यापक है और उसके अन्तर्गत केवल जम्मू की ही परिगणना होती है क्योंकि यही डुग्गर का अकेला ऐसा नगर है जिस की प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन नगर निगम के हाथ है। शेष नगर कस्बा वर्ग में आते हैं। उधमपुर और कठुआ जम्मू के बाद दूसरी श्रेणी के नगर हैं। ये दोनों विकासो न्मुख हैं और पूर्णनगर की ओर बढ़ रहे हैं। इनकी परिगण्ना नगर पालिका के अन्तर्गत की जा सकती है।

डुग्गर में 'राज थड़ा' भी नगर का ही एक उप रुप माना जाता है, 'राज थड़ा' राजधानी का पर्याय है। राजधानी के लिए डुग्गर में 'नगरी' का प्रयोग भी होता रहा है। डुग्गर में जितने भी स्थल 'नगरी' कहलाते हैं वे कभी न कभी किसी राजवंश की राजधानी रहे हैं। डुग्गर में राजथड़ों की संख्या दर्जनों में थी, अतः यहाँ नगरियाँ भी दर्जनों में थी। 'नगरी' के लिए आवश्यक नहीं है कि वह कोई बड़ा नगर हो। छोटा नगर या गाँव भी नगरी हो सकता था। नगरी में राजा का महल या दुर्ग होना आवश्यक था। राजथड़ो की भी अपनी विशेषताएँ रही हैं। इनकी संरचना में ऊँचे स्थान पर महल होता है, महल के साथ चौगान और बाद में मुहल्ले के घर होते थे। नगर के मध्य में सरोवर का प्रावधान अवश्य रखा जाता था। प्रायः सभी राज थड़ों की संरचना इसी शैली में है।

राजमहल के साथ कुल पंडित, पुरोहित तथा राज ज्योतिषी का भवन भी साथ होता था। राजथड़ों में हरिजनों को अलग वस्तियों में बसाने का प्रावधान होता था। इसी प्रकार व्यवसायिक जातियों को भी अलग-अलग वस्तियों में बसाया जाता था। यथा जुलाहों, रंगरेज़ों, कुम्हारों, लुहारों आदि को

अलग-अलग स्थानों पर बसाया जाता था डुग्गर के अधिकांश उपनगर कभी न कभी राजथड़ा रहे हैं। अत: इन राजथड़ों का महत्व इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से उल्लेखनीय रहा है।

डुग्गर में तृतीय वर्ग के नगरों को 'नगंरोटा' कहा जाता है। वैसे नगरोटा उपनगर का ही पर्याय है किन्तु ऐसा है नहीं। नगरोटा में केवल वही बस्तियाँ परिगणित की जाती हैं यहां सौ डेढ़ सौ इकट्ठे घर हों, एक छोटा बड़ा बाज़ार हो जिस में जीवनोपयोगी सभी वस्तुएँ उपलब्ध हों। पंडित, पुरोहित, नाई, ध ोवर आदि का कोई न कोई घर हो। व्यवसायिक जातियाँ कुम्हार, धीवर आदि रहती हों। नगरोटा में भी पानी के लिए सरोवर की व्यवस्था की जाती थी। छोटा-बड़ा चौगान या मैदान भी इसके साथ होता है। डुग्गर में ऐसी बस्तियाँ वीसियों हैं जिन के नाम के साथ नगरोटा लिखा जाता है। डुग्गर में राजाओं और सामंतों द्वारा अपने नाम पर नगरोटा बसाने की परम्परा रही है। नगरोटा में एक विशेषता यह भी देखी गई है कि वहाँ कोई चबूतरा अवश्य होता है जिस में बस्ती के लोग दोपहर या सायं इकट्ठे बैठकर गप्प छप्प करते हैं। नगरोटा में मंदिर या पूजास्थल अवश्य होता है।

भौगोलिक दृष्टि से डुग्गर के नगरों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है - पहाड़ी नगर और मैदानी नगर। संरचना की दृष्टि से इन नगरों में विभिन्नता देखी जा सकती है। पहाड़ी नगर सीढ़ी नुमा होते हैं। ये ढलान पर बसाये जाते हैं। इन नगरों में जो घर बनते हैं वे भी स्थानीय परिवेश के अनुरुप होते हैं। पहाड़ों में महानगर नहीं होते हैं। ये आकार में छोटे होते हैं। पहाड़ी नगरों में एक विशेषता यह है कि ये साफ-सुथरे और स्वच्छ होते हैं। मैदानी नगर समतल मैदान में बसे हाते हैं, अत: इन का विस्तार होता है। इन के साथ कई छोटे-छोटे उपनगर भी जुड़े होते हैं। मैदानी नगर यातायात के लिए उपयुक्त होते हैं अत: यहाँ बड़ी-बड़ी मंडियाँ और उद्योग स्थापित रहते हैं। इस पुस्तक में नगर संरचना के साथ-साथ नगर संस्कृति को सोद्देश्य इसलिए जोड़ा गया है कि इन नगरों की जीवन शैली से भी पाठकों को परिचित करवाया जाए। पुस्तक में अभी कई त्रुट्टियाँ हैं। सम्भव है कि कई महत्वपूर्ण नगर छूट गए हों किन्तु मुझे विश्वास है कि विज्ञ पाठक मेरा ध्यान उस ओर दिलवायेंगें।

15.09.2004

-शिव 'निर्मोही'
पैंथल (उधमपुर)

काष्ट वट

स्थिति:- काष्टवट डोडा जनपद में सबसे बड़ा नगर है। विश्वमान चित्र में यह भूमध्य रेखा से 33.19^0 अंश उतर में प्रधान मध्याहन रेखा से 75.25^0 अंश पूर्व में अवस्थित है। समुद्रतल से इस की ऊँचाई 1634 मीटर है। यह नगर चन्द्रभागा के ऊपरीय जिस तट भाग में बसा है उस की लम्बाई सात से आठ किलोमीटर के बीच तथा चौड़ाई चार से पाँच किलोमीटर के मध्य में है।

काष्टवट जम्मू से 229 कि.मी. श्रीनगर से 280 कि.मी. तथा डोडा से 59 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यह नगर चारों ओर से कहीं छोटी तो क़हीं बड़ी पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। इसका प्राकृतिक परिवेश अति मोहक है।

नामकरण:- इतिहासकारों ने काष्टवट क्षेत्र की उत्पत्ति और नामकरण के विषय में भिन्न-भिन्न मत अभिव्यक्त किये हैं। कई इतिहासकारों का मत है कि इस नगर का आदि नाम समर्थगढ़ था। कईयों का मत है कि जिस स्थान पर अब किश्तवाड़ बसा है वहाँ पहले एक बड़ी झील थी जिस का नाम गोवर्धनसर था। यह झील सिंहपुर से लेकर ठाठरी तक परिव्याप्त थी। बादमें ठाठरी स्थान से इस झील का जल निष्कासित किया गया और जो भूमि उभरी उसका नाग गोवर्धनसर रखा गया। आज भी संग्राम भटा से लेकर चौगान तक जो भूमि है उसे गोवर्धनसर कहते हैं। लगता है कि काष्टवट की भूमि में कई छोटी- बड़ी झील रही होगी जिस का अवशेष सरकोट का सरोवर माना जा सकता है। एक मत यह है कि काष्टवट का प्राचीन नाम काश्यप वास था और उस का विकृत रूप काष्टवट है। किन्तु यह मत भाषा वैज्ञानिको को मान्य नहीं है। कई इतिहासकारों ने लिखा है कि किश्तवाड़ का पुराना नाम महाकालगढ़ था। श्रीपाल ऋृषि ने गोवर्धनसर के तट पर महाकाल मंदिर की स्थापना करके इस भूस्थल में जो नगर बसाया उसी का नाम 'महाकालगढ़' पड़ा। किन्तु 'गढ़' दुर्ग का पर्याय है, अत: इस मत को भी विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है।

कुछ विद्वानों का मत है कि काष्टवट का आदि नाम लोहितमंडल था। लोहित का अर्थ है- केसर और मंडल से अभिप्राय है- परगना अथवा क्षेत्र अर्थात् केसर का क्षेत्र। यहाँ केसर की पैदावर होती थी, अत: इसे 'लोहित

मंडल' के नाम से अभिहित किया जाता था। लोहित मंडल का उल्लेख महाभारत के सभा पर्व में भी उल्लिखित है, यथा:-

ततः काश्मीर कान् बीएन क्षत्रियान् क्षत्रियर्सभः व्यज्य ल्लोहितं चैवे मण्डलै र्दशभिः (सभापर्व अध्याय 27.17)

व्यजयल्लोहिंत चैव मण्डलै र्शाभः- अर्थात् कश्मीर के वीरों का दमन करने के बाद अर्जुन ने दस मंडलों के राजाओं को जिस में लोहित मंडल भी सम्मिलित था, जीता। इतिहासकार दूनीचन्द शर्मा का मत है कि द्विर्गत के दस राज्यों में ग्यारहवां राज्य काण्टवट था, अतः महाभारत में वर्णित लोहित मंडल, यही भू भाग था। स्थानी विद्वानों के अनुसार

इस भूस्थल का एक नाम पोही भी था। 'पोही' पुहाल से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है- चरवाहा इस भूखंड में पहले पुहालों की बस्ती थी, अतः इस का नाम पुहाल' प्रसिद्ध हुआ। किन्तु यह नाम मिट कैसे गया इस का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। इतिहासकारों का एक दल मानता है कि काष्ट वट का मूल नाम भोट नगर था और यह सुरु के ग्यालपो के अधीन था। उनके अनुसार आठवीं नौवीं सदी तक यह क्षेत्र बौद्ध प्रभाव में रहा। अतः भोट क्षेत्र या भोट नगर नाम पड़ना अस्वाभाविक नहीं था।

सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित 'जम्मू एण्ड कश्मीर' पुस्तक के अनुसार इस नगर की संस्थापना किष्ट ऋषि ने की थी, अतः इस का नाम उनके नाम पर किष्टवाट या किश्तवाड़ पड़ा।

किन्तु राज तरंगिणी में इस रम्य स्थली का नाम कश्मीर के राजा कलश के सन्दर्भ में काष्टवट वर्णित है। राजा कलश (सन् 1063.83 ई.) के दरवार में डुग्गर के जिन राजाओं ने हाज़री भरी थी उनमें काष्टवट का राजा उतम भी था। लगता है राजा उतम से भी बहुत पहले इस नगर का नाम काष्टवट प्रचलन में आ चुका था अतः हम कह सकते हैं कि काष्टवट नगर एक हजार वर्ष से भी पहले का है और सम्भवतः सातवीं सदी में इस का नाम करण हो चुका था।

लोक परम्परा के अनुसार 'काष्टवट' पंजाब के पंचसासियों द्वारा दिया गया नाम है। वे 'कुश्ता' बनाने के लिए जड़ी वूटियों की खोज में इस क्षेत्र में आते थे। उनको 'कुश्ता के वट यहीं उपलब्ध थे। अतः वे इसे कष्टवट नाम से पुकारते थे।

किन्तु हरि लाल ज्योतिषी ने अपनी अप्रकाशित पुस्तक 'राजवंश कीर्ति कौमुदी' में काष्टवट को 'कष्टवारक' से व्युत्पन्न माना है। उनके अनुसार:-

स कष्टवार को देश: कमनीयोडति पावन:,

क्रीड़ा स्थान महेशस्य हिमाद्रेह्दय स्थलम्।।

अर्थात: कष्टवार एक पावन और कमनीय देश है। यह हिमालय के मध्य (हृदय) में है और भगवान महेश की क्रीड़ा स्थली है।

वासुकि पुराण में काष्टवट का उल्लेख कष्ट निवारक स्थान के नाम से हुआ है। श्लोक इस प्रकार है:-

कष्ट निवारकं देश चन्द्र भागा तट स्थितम्

समागत: स नागेश: काश्मीरेभ्योभयन्र्वित:।।

वासुकिपुराण 4112

इतिहासकार दूनीचन्द शर्मा के अनुसार काष्टवट का एक अर्थ है- काष्ट + वट अर्थात काष्ट के वट का प्रदेश। वन मार्ग अथवा दुष्कर मार्ग को भी काष्ट वट कहा जाता है। यहां तक पहुँचने का मार्ग दुष्कर था, अत: इसे काष्टवट कहा जाता रहा। किन्तु यह मत भी भ्रामक है।

कश्मीरी में बड़े कस्बे को 'कारतावार' कहते हैं। एक मत है कि 'काष्टवट' मध्य हिमालय में स्थित वस्तियों में एक बड़ा कस्बा था, अत: इसे इसी अर्थ में पहाड़ी में 'किश्तवाड़' कहा गया।

किश्तवाड़ को काष्टवट से निसृत माना जाए तो इस का अर्थ यह भी लिया जा सकता है- काष्ट का मार्ग अर्थात लकड़ी ले जाने का मार्ग। किश्तवाड़ 'लकड़ी की मंडी' रहा है अत: सम्भव है इसी कारण इसे पहले काष्ट वाट और बाद में उच्चारण भेद के कारण किश्तवाड़ कहा जाने लगा हो।

राजनैतिक महत्व

किश्तवाड़ को तब राजनैतिक महत्व मिला जब दसवीं सदी के लगभग गौड़ देश के राजा काह्न सेन ने पंचसासियों को किश्तवाड़ से खदेड़ कर कुन्तवाड़ा, ठकुराई, उदिल आदि क्षेत्रों के राणाओं को पराजित करके किश्तवाड़ को अपनी राजधानी बनाया। वह पहला राजा था जिस ने किश्तवाड़ के ऊँचे टीले पर एक कच्चा दुर्ग निर्मित किया और इस दुर्ग के भीतर कई आवासीय कक्ष बनाये। उसी के शासन काल में कहते हैं कि किश्तवाड़ को नगर का रुप देने का प्रारुप तैयार किया गया। राजा के महल के आस-पास दरवारियों और सांमतों की हवेलियाँ बनी और नागरिकों को कबीलों के आधार पर भिन्न-भिन्न मुहल्लों में व्यवस्थित ढ़ग से बसाया गया।

डुग्गर की नगर-संरचना में मुख्य रुप से तीन विशेषताएँ थी। पहली विशेषता थी राजमहल का ऊँचे स्थान पर निर्माण। दूसरी विशेषता थी- नगर में विशाल सरोवर या जलाश्य का निर्माण। काह्न पाल और उसके वंशजों ने इन तीनों का ध्यान रखा। उन्होंनें ऊँचे टीले पर महल निर्मित किये। महल के सन्मुख एक बड़ा चौगान खुला रखा और चौगान के निकट ही सरकोट सरोवर का विकास किया।

किश्तवाड़ के इतिहास में जिन सेन राजाओं ने किश्तवाड़ को एक राजधानी के रुप में विकसित किया उनके नाम थे- काह्नसेन, गर्न्धव सेन, मदनसेन और ब्रह्मसेन। सेन वंशीय राजाओं के बाद किश्तवाड़ देव वंशीय राजाओं की राजधानी रही। इन राजाओं के क्रमानुसार नाम हैं:- राजा उदतदेव, गंगादेव, गौड़देव, संघदेव, रक्षादेव इन्द्रदेव, अनन्त देव, अवतार देव, भोगदेव, रायदेव, गौदेव, उग्रदेव, बलभद्रदेव तथा लक्ष्मण देव। देव वंशीय राजाओं के शासन काल में किश्तवाड़ में कंई नये लोग आए और फिर यहीं बस गए। इनमें कई योद्धा थे, कई व्यापारी और कई कश्मीर के विस्थापित भी थे।

नये लोगों के बसने से किश्तवाड़ नगर का विकास हुआ और यह पर्वतीय नगर एक पहाड़ी मंडी के रुप में उभरने लगा।

किश्तवाड़ को विशेष गौरव सिंह वंशीय राजाओ के शासन काल में मिला। इस वंश का पहला राजा संग्रामसिंह था जो सम्भवत: 1400 ई. के लगभग सिंहासनारुढ़ हुआ। उसके बाद रायसिंह, बहादुर सिंह, प्रतापसिंह, गौड़ सिंह, जगत सिंह, भगवान सिंह, महासिंह, जयसिंह किश्तवाड़ की राजगद्दी पर बैठे। इन राजाओं के शासन काल में किश्तवाड़ में एक ओर समृद्धि और विकास का युग आरम्भ हुआ तो दूसरी ओर किश्तवाड़ को बाह्य आक्रमणों से भी जुझना पड़ा जिस से इस नगर को क्षति भी पहुँची और कई भव्य अट्टालिकाएँ आग की भेंट चढ़ी।

राजा जयसिंह के शासनकाल में किश्तवाड़ में एक नया सांस्कृतिक परिवर्तन यह आया कि एक मुसलमान संत सैय्यद मुहम्मद फरीद-उ-द्दीन कादिरी किश्तवाड़ आया जिसने इस नगर में अपने दिव्य ज्ञान तथा चमत्कारों से किश्तवाड़ के नागरिकों को इतना प्रभावित किया कि वे उसके मुरीद बन गए। किश्तवाड़ के राजा कीर्तिसिंह ने भी दिल्ली के शहन्शाह औरंगजेव के दबाव में आकर इस्लाम में दीक्षा तो ली किन्तु उस ने हिन्दू परम्पराओं का परित्याग भी नहीं किया। इसके शासनकाल में किश्तवाड़ में एक समन्वित संस्कृति विकसित हुई। किश्तवाड़ नगर में यहाँ पहले केवल हिन्दू मंदिर थे राजा के मुसलमान बनने के बाद मस्जिदें, मकबरे, खानकाहें तथा मज़ार भी निर्मित हुए। किश्तवाड़ के नव मुस्लिम हिन्दू मंदिरों में भी जाते रहे और मस्जिदों में भी नमाज़ पढ़ने लगे।

राजा कीर्तिसिंह के बाद राजा अमूलक सिंह, राजा मेहर सिंह, राजा सुजानसिंह मुस्लिम नामों के साथ किश्तवाड़ की गद्दी पर बैठे। राजा अनायत उल्लाह सिंह किश्तवाड़ का पहला राजा था जिसने अपने मुस्लिम नाम के साथ सिंह जोड़ा और इस के बाद वहाँ का अन्तिम शासक राजा मुहम्मद तेग सिंह किश्तवाड़ की गद्दी पर बैठा जिसे सन 1820 में गुलाव सिंह ने बंदी बना कर लाहौर भेज दिया और वहीं किश्तवाड़ के इस शासक का देहावसान सन् 1823 ई. में हुआ। कुछ समय के लिए किश्तवाड़ खालसा अधिकारियों के नियंत्रण में रहा किन्तु बाद में यह जम्मू-कश्मीर राज्य का अंग बना।

किश्तवाड़ ने अपनी स्थापना से लेकर आज तक एक हज़ार वर्ष में कई उत्थान और पतन देखे। कई बार यह समृद्ध नगर बना और कई बार यह उजड़ा किन्तु फिर भी इसका अस्तित्व बना रहा। किश्तवाड़ नगर कई

अपदस्थ बादशाहों, सामंतों तथा दरवारियों की शरणस्थली भी रहा। कश्मीर का शासक याकूब शाह और काबुल का सुल्तान शाह सुजा तथा कई अन्य शाही अतिथि किश्तवाड़ के महलों में रहे। किश्तवाड़ के लोगों ने अपने अतिथियों को पूरा मान और सम्मान दिया।

विदेशी पर्यटकों की दृष्टि में किश्तवाड़

कप्तान वेस्ट ने किश्तवाड़ नगर का निरीक्षण करने के बाद अपनी डायरी में लिखा: -

यह चन्द्र भागा के बायें किनारे के निकट एक मैदान में स्थित है जिस की चौड़ाई लगभग दो मील और लम्बाई पाँच मील है। यह मारवल दर्रा के मार्ग से अनन्त नाग के उतर पूर्व में लगभग 84 मील और भद्रवाह के शमाल में अनुमानत: 46 मील की दूरी पर अवस्थित है। किश्तवाड़ का कस्बा पहले वर्तमान कस्बे से काफी बड़ा था। अब यह केवल एक सौ घरों या झोंपड़ियों तक ही सीमित है जिन की छतें कश्मीरी भवनों की भाँति नहीं हैं।

यह समतल छतों वाले मकान प्राय: लकड़ी पत्थर और मिट्टी के बने हुए हैं। इन में फलदार वृक्ष लगाये जाते हैं। यहाँ घटिया किस्म के शाल बनाने की पन्द्रह से बीस खड्डियाँ लगी हुई हैं।

खुरदरे ऊनी कम्बल भी बनाये जाते हैं। मुसलमानों की आवादी हिन्दुओं के मुकावले में अधिक है। इनकी लोकप्रिय जिजारत कस्बा से लगभग एक चौथाई मील की दूरी पर उतर में स्थित है। पुराने राजा का महल एक मिट्टी से बने हुए किले से घिरा हुआ है। जब सिक्खों ने किश्तवाड़ को अपने अधिकार में लिया तो इसे एक कारावास के रुप में प्रयोग किया।

सन 1873 में फेडरिक डियू ने किश्तवाड़ का अवलोकन करने के बाद लिखा- किश्तवाड़ समुद्रतलसे 5300 या 5400 फुट ऊँचा है। पहाड़ों में कई विस्तृत वादियों के विपरीत यह (किश्तवाड़ की वादी) न पूरी तरह समतल है और न ही विल्कुल ढलान में है बल्कि इसमें छोटे-छोटे टीले जैसे हैं।

लगभग पूरा क्षेत्र कृषि क अन्तर्गत लाया गया है। ग्राम सफेदे के वृक्षों और फलदार पेड़ों से घिरे हुए हैं। हर मोहड़े से दूसरे मोहड़े (उपगाँव) को जाने वाली गलियों के साथ-साथ सफेद, पीले और लाल गुलाब और कई फूलदार झाड़ियाँ पंक्ति पर पंक्ति दिखाई देती है।

कस्बा किश्तवाड़ में बाज़ार सहित यहाँ कुछ दूकाने हैं लगभग दो सौ घर हैं किन्तु वहाँ अन्य बाज़ारों की भाँति चहल-पहल नहीं थी। लोग काफी निर्धन हो गए हैं क्योंकि यह कस्बा बीते कई वर्षों में बजीर खानदान को दिया गया था। जो अभी तक बहुत प्रभाव शाली हैं। कश्मीर के धनाढ्य व्यक्तियों के मकानों की अनुकृति पर बनाये गए इस खानदान (बजीर खानदान) के मकान जन सामान्य के मकानों से विपरीत हैं। यहाँ ऊँचाई पर एक प्राचीन दुर्ग है जिन की नगरानी पर लगभग तीस व्यक्ति नियुक्त हैं। आधे से अधिक नागरिक कश्मीरी हैं शेष ठाकुर, कराड़ (महाजन) तथा अन्य जातियों से सम्बन्धित हैं। कश्मीरी यहाँ भी शाल वानी का काम करते हैं। इस कस्वा में शाल बनाने के लगभग बीस केन्द्र हैं। भद्रवाह की भाँति यहाँ भी कश्मीरी कई पीड़ियों से आवाद हैं। किश्तवाड़ की जलवायु भद्रवाह की जलवायु से कुछ भिन्न है। यहाँ गर्मी कुछ अधिक होती है और वर्फ कम पड़ती है। किन्तु अधिक समय तक ज़मीन में नहीं टिकती। यह एक अवधि में बीस दिन से अधिक नहीं रहती (द जम्मू एंण्ड कश्मीर टेराटरीज़)

एक अन्य विदेशी पर्यटक ओटुरथ ने किश्तवाड़ का भ्रमण करने के बाद लिखा-इसका नाम काठवाड़ है, जो धीरे-धीरे किश्तवाड हो गया है। काठ लकड़ी को तथा बोड़ या बाड़ी हिन्दी में स्थान को कहते हैं। अर्थात लकड़ी की खेती का स्थान। वली मुहम्मद असरीर किश्तवाड़ी ने एक विदेशी पर्यटक के सन्दर्भ में लिखा है- किश्तवाड़ राजा काहनपाल के समय से राजा तेग मुहम्मद के शासन त्यागने (सन् 1822) तक किश्तवाड़ देश की राजधानी था। यही कारण है कि डोगरों ने इस कस्बा को खंडहरों में तबदील कर दिया था।

नगर की संरचना

किश्तवाड़ की संरचना नगरशास्त्र के अनुरुप लगती है। यह नगर ढलान भूमि में बसा है, अत: कभी इस का स्वरुप सीढ़ी नुमा रहा होगा। किन्तु बीच-बीच में कई समतल मैदान भी हैं जिन में घनी आवादी है। पहले यहाँ

मुख्य एक ही सदर बाज़ार था जो के महल की ओर जाता था किन्तु नगर के बीच में सड़क बन जाने से एक नया बाज़ार बना है जिसे शहीदी बाज़ार के नाम से अभिहित किया जाता है। इस बाज़ार में दिन भर चहल पहल रहती है। यहाँ बड़ी बड़ी दूकानें हैं जिन में आधुनिक जीवन से जुड़ी वस्तुएँ उपलब्ध हैं। इसी बाज़ार में सरकारी कार्यालय हैं जिन से इस बाजार की शोभा में बढ़ोतरी हुई है।

पूरे किश्तवाड़ को 49 मुहल्लों में विभाजित किया गया है। इन मुहल्लों में उल्लेखनीय मुहल्ले हैं:- घोड़ी, तरकश, पीर, ख्वाजा मुहम्मद, बजीर मुहम्मद, जलाई, ज़रगरां, अस्तान शरीफ पाई, बुन- अस्तान (बख्शी नगर) पालिज़, काज़ी, पावरहाऊस, शान, परिहार, कंडु, सुजान गगडू मुहम्मद, देवीनयार, गुरुपोचा, अखून, ब्राह्मण, राथर, तरक, शाल, गगडू, पटल, करायपाक, गकार, अज़ा, डार, कुम्हार, शहीदी, चांगडू, बागवान, शोर गुड्डी, रंगरेज़, कचलू, सरुड़ी, कोतवाल, गोस्वामी, बाद-दार, मतु, भंडारी अग्गु, मेहता तथा अल्फत गनाई। इनके अतिरिक्त नये मुहल्ले हैं:- असरवाद अख्यारवाद और दुल हस्ती विद्यु परियोजना के कर्मचारियों के लिए आधुनिक शैली में बनी शालीमार कॉलोनी।

सन 2001 की जनगणना के अनुसार किश्तवाड़ की कुल जनंसख्या 14936 थी जिस में 8794 पुरूष और 6142 महिलाएँ थी।

किश्तवाड़ के लोगों के भवन दो शैलियों में हैं - कश्मीरी शैली तथा पहाड़ी शैली कश्मीरी शैली में बने मकानों की छतें ढलवां हैं। ये कई मंजिल में हैं। इन घरों के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग अधिक होता है। पहाड़ी शैली में बने मकानों के छत सपाट हैं। इन की दीवारें पत्थर, मिट्टी अथवा गारे से निर्मित हैं। दोनों शैलियों के मकानों में वातान की व्यवस्था रहती है। घनाढ्य वर्ग के लोग कश्मीरी शैली में बने मकानों में रहना पसंद करते हैं। जन साध ारण पहाड़ी शैली के मकानों में रहते हैं। इनके मकान तंग अथवा छोटे अवश्य हैं किन्तु वे हवादार होते हैं। सर्दियों में जब हिमपात होता है ढलवां छत के मकान उपयोगी रहते हैं।

वेश भूषा तथा आहार - किश्तवाड़ में कश्मीरी पहाड़ी तथा डोगरा संस्कृति का समन्वित रुप देखा जस सकता है। यहाँ के जन साधारण की वेशभूषा कुर्ता पायजामा (घड़नां) कनटोप तथा पट्टू का कोट है। महिलाएँ कश्मीरी पहाड़ी और डोगरा वेश भूषा में दिखाई देती हैं। दुपट्टा, लम्बा कुर्ता और सुत्थन का प्रचलन भी रहा है। महिलाओं का आभूषणों के प्रति लगाव है। ये आभूषण सोने और चाँदी के होते हैं।

किश्तवाड़ में मक्की का प्रयोग अधिक किया जाता रहा है किन्तु अब गेहूँ तथा चावल का प्रयोग भी हो रहा है। चावल किश्तवाड़ में कम होता है, अतः इसे बाहर से आयतित करना पड़ता है। बाजरा और दालों का प्रयोग भी होता है। प्रायः सभी पहाड़ी सब्जियाँ किश्तवाड़ में उगाई जाती हैं जिन में टमाटर, आलू, बैंगन, मिर्च आदि उल्लेखनीय हैं। पहाड़ी कद्दू यहाँ अधिक पैदा होता है। कसोड़ साग तथा खुंबा यहाँ का प्रिय भोजन है। दूध-दही की तंगी के कारण दूध से बनी बस्तुओं का किश्तवाड़ में अभाव देखा जा सकता है। सेव, नाशपाती, अखरोट, अंगूर तथा खुमानी जैसे फल यहाँ पर्याप्त मात्र में उपलब्ध हैं। शहद का प्रयोग लोग प्रायः प्रतिदिन करते हैं। किश्तवाड़ एक शरद नगर माना जाता है अतः यहाँ अधिकांश लोग माँसाहारी हैं।

साहित्य और शिक्षा:- किश्तवाड़ में कश्मीरी, सिराजी, पाडरी, सरोड़ी, डोगरी तथा किश्तवाड़ी के अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, हिन्दी, उर्दू तथा पंजाबी का प्रचलन भी रहा है। इस क्षेत्र में ब्राह्मी तथा शारदा के शिलालेख भी उपलब्ध हैं, अतः लगता है कि इनका प्रचलन भी यहाँ रहा है। किश्तवाड़ी भी अपने रुप में एक सश्वत बोली है और इसकी अपनी लिपि भी रही है जो देवनागरी से बहुत मिलती जुलती है।

किश्तवाड़ के शासक स्वयं भी पढ़े लिखे तथा साहित्यप्रेमी और कवि रहे हैं। शिवाजी धर द्वारा लिखित तारीख किश्तवाड़ में राजा महाजान द्वारा हिन्दी में लिखित वह कविता संकलित है जो उसने दुर्भिक्ष का दूर करने के लिए नील कंठ भगवान के मंदिर में पढ़ी थी। किश्तवाड़ का अन्तिम राजा मुहम्मद तेग सिंह भी फारसी में शायरी करता था। उसका बाप राजा अनायत-अल्लाह सिंह तो फारसी का रसिक शायर था। उसे अपनी शायरी के कारण अपने प्राण भी गवाना पड़े थे।

सूफीसंत हज़रत मुहम्मद शाह मसकीन फारसी में बहुत ही अच्छी शायरी करते थे। इनके अतिरिक्त हज़रत मुहम्मद शाह फरीद ने भी किश्तवाड़ में फारसी को जन-जन तक पहुँचाया। समझा जाता है कि राजा भगवान सिंह के शासन काल से ही फारसी सरकारी भाषा के रुप में प्रयोग में आने लगी थी। किश्तवाड़ में संस्कृत भाषा और साहित्य का प्रचलन भी पूर्ववत रहा। पंडित हरिलाल शर्मा संस्कृत के प्रकांड विद्वान माने गए हैं और उन द्वारा रचित 'श्री स्थल-दर्शनम्' संस्कृत में उच्चकोटि का ग्रंथ है।

महाराजा प्रतापसिंह ने उर्दू को जब जम्मू-कश्मीर की सरकारी भाषा बनाया तो उससे भी बहुत पहले किश्तवाड़ में उर्दू का प्रचलन आरम्भ हो चुका था। उर्दू को बढ़ावा देने के लिए बज्में-अदब' संस्था का गठन इशरत कश्मीरी, निशात किश्तवाडी, गुलाम हैदर गागरु तथा कश्मीरी लाल तथा रुप किश्तवाड़ी ने किया। अब किश्तवाड़ में उर्दू साहित्य कारों की एक लम्बी पंक्ति है।

हिन्दी में किश्तवाड़ के पंडित दीना नाथ ने सन् 1885 में किश्तवाड़ के इतिहास पर पुस्तक लिखी। अव चन्द्र किश्तवाड़ी, कृष्णा मेहता (कश्मीर पर हमला) वीरन बज़ीर, खुशीराम सेन, शुभदेव शर्मा तथा मन मोहन गुप्ता किश्तवाड़ में हिन्दी साहित्य के प्रचार प्रसार में सेवारत हैं।

किश्तवाड़ में ऐसे लेखकों की संख्या कम नहीं जो कश्मीरी में लिखते हैं। इन में गुलामरसूल काम़गार, गुलाम नबी दूलवाल, जानवाज किश्तवाड़ी, हँसराज बजीर किश्तवाड़ी, निशात किश्तवाड़ी तथा गुलाम मुहम्मद, उल्ताफ किश्तवाड़ी तथा मुश्ताक किश्तवाड़ी ने कश्मीरी साहित्य की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

किश्तवाड़ के इतिहासकारों का मत है कि नागसेन लिखित 'मिलिन्द पनोह' किश्तवाड़ी में रचित है किन्तु विद्वानों ने इस की पुष्टि नहीं की है। आधुनिक किश्तवाड़ी कवियों और लेखकों में कश्मीरी लाल, रुप किश्तवाड़ी, लासाजू राणा, तारा चन्द शर्मा तारिक, जानवाज़ किश्तवाड़ी, वद्रीनाथ पालमारी, मोहन गरीव तथा जगदीश राज दिलगीर आदि लेखक किश्तवाड़ी की सेवा में रत हैं।

किश्तवाड़ में राजा अमोलक सिंह (1728-71) राजा हरसिंह (1771-86) राजा तेगसिंह के दरवारियों द्वारा प्रदत कुछ पट्टे डोगरी में भी उपलब्ध हैं। इन में नागर पंडित, जल्ला पुरोहित तथा भौंचू के नाम उल्लिखित हैं। डोगरी में लिखित एक पट्टा का देव नागरी रुप इस प्रकार है:-

ओंम सिरी महा सिरी साहब,
सिरी महां सिंह जी बचनें बजीरै,
मंगल सनी हत्थें पटा लिखेआ,
ग्रां अग्रहन्गे किश्तवाड़ बिच
हीर मन परोहित गी रोजगार खाने-कपड़े समेत बख्शेआ।
रोजगार कफी कीता, अब फिरत नई करना
सम्बत 45 माघ प्रविष्ठ 10, पटा लिखेआ।

दर्शन और इतिहास

किश्तवाड़ के दो दार्शनिक अति प्रसिद्ध हैं- एक नागसेन और दूसरे शांति कंठ। नागसेन के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने विश्व विख्यात 'मिलिंद पनोह' ग्रंथ लिखा जिस में बौद्धधर्म के सूक्ष्म तत्वों का विवेचन संवाद शैली में है। दूसरा ग्रंथ महानि प्रकाश है जो नील कंठ की कृति है। यह ग्रंथ शैव दर्शन पर आधारित है।

किश्तवाड़ के इतिहास पर पहला ग्रंथ संग्राम देव लिखित 'राजवंश कीर्ति कौमुदी है। यह पूर्ण रुप से अब उपलब्ध नहीं है। सन् 1881 ई. में शिव जी काक ने तारीख-ए किश्तवाड़ फारसी में लिखी। इसके बाद सैय्यद निजामुद्दीन ने तारीख-ए-किश्तवाड़, गुलाम मुहम्मद इशरत ने उर्दू में तारीख-ए किश्तवाड़ लिखी जो सन् 1973 में प्रकाशित हुई। दूनी चन्द शर्मा ने अंग्रेजी में 'हिस्टरी एण्ड कल्चर आफ किश्तवाड़' पुस्तक का सृजन किया जिस का प्रकाशन 1995 में हुआ। किश्तवाड़ के इतिहास पर यह एक पूर्ण ग्रंथ है। इनके अतिरिक्त मौलवी इश्मतुल्ला खान लखनवी, हिचन और बोगल, कल्हण, नृसिंह दास नरगिस, डॉ. सुखदेवसिंह चाड़क, हरिलाल ज्योतिषी, जे. एन. गनहार, दीवानकृपाराम, रामधन, दीनानाथ पंडित, रोठ फिल्ड तथा शिव निर्मोही की इतिहास पुस्तकों में किश्तवाड़ की चर्चा है। किश्तवाड़ के इतिहास पर जो काम हुआ है उसे देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि

इतिहासकारों के लिए भी किश्तवाड़ एक महत्वपूर्ण नगर रहा है।

संगीत और चित्रकला-

गीत-संगीत, नृत्य और चित्रकला किश्तवाड़ की संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं। किश्तवाड़ के शासक स्वयं संगीत-प्रेमी थे। उनके दरवार में संगीत की महफलें जमी रहती थी। स्थानीय लोगों का लगाव भी इन में अत्याधिक था।

किश्तवाड़ का राजा नरेन्द्र सेन तो स्वयं संगीत प्रेमी था। उस ने शास्त्रीय संगीत पर 'संगीत संग्रह' पुस्तक का सृजन श्री वाक से करवाया।

किश्तवाड़ का लोक संगीत भी बहुत चिताकर्षक तथा रसमय है। कृषि कर्म में 'मझंलोला' गाने का प्रचलन है। किश्तवाड़ का लोक नृत्य 'चलन्त' और 'जागरो' लोकप्रिय लोकनृत्य हैं। यहाँ 'भाड' भी घर-घर अपने नृत्य और संगीत से लोगों का मनोरंजन करते हैं। कश्मीरी छकरी और रोफ का भी किश्तवाड़ में प्रचलन है।

किश्तवाड़ के संगीतकारों में लालचन्द, नन्दलाल गुरु तथा गुलाम नवी दुलवाल का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। रहमत अली रहमत, कुंजलाल का भी इस क्षेत्र में विशेष नाम है। किश्तवाड़ के वाद्य यंत्रों में सितार, इकतारा, घड़ा, चंग, रवाब तथा सुरनाई उल्लेखनीय हैं।

चित्रकला के क्षेत्र में भी किश्तवाड़ का विशेष नाम रहा है। किश्तवाड़ के राजाओं के श्वेत और काले रंग में कई चित्र उपलब्ध हैं। कई हस्त लिखित ग्रंथों के हाशिये केसर के रंग में हैं। राज महलों में भीतिचित्र बने थे किन्तु अब उनके नमूने उपलब्ध नहीं हैं। जन्म-पत्रों कुडलियों तथा धार्मिक ग्रंथों में भी रंगदार हाशिये यह संकेत देते हैं कि किश्तवाड़ के लोग चित्रकला में निपुण थे।

डोगरा काल में किश्तवाड़ में बसोहली चित्रकला का प्रचलन भी हुआ। इस के नमूने लाब जूके महल में देखे जा सकते हैं। किश्तवाड़ में लोक चित्र कला भी समृद्ध रुप में रही है। इसके नमूने विवाह, पर्व त्योहारों के

अवसर पर देखे जा सकते हैं।

आज के युग में हंसराज गुप्ता, फैज़ मुहम्मद फैज तथा मोहन लाल शर्मा किश्तवाड़ के चर्चित चित्रकार हैं।

पर्व और त्योहार-

किश्तवाड़ पर्व, उत्सव और त्योहारों का शहर है। यहाँ पूरा वर्ष त्योहार आयोजित होते हैं जिन में निम्न उल्लेखनीय हैं:-

समसर- यह संस्कृत शब्द संवतसर का विकृतरुप लगता है। किश्तवाड़ के लोग इस पर्व पर अपने सम्बन्धियों को आमंत्रित करते हैं और उन्हें भोज खिलाते हैं। यह त्योहार नौ दिन चलता है। अन्तिम नवरात्रा के दिन गौरी शंकर मंदिर से एक झांकी निकाली जाती है जिसका समापन रघुनाथ मंदिर में होता है।

बिसो:- विक्रम वर्ष के प्रारम्भ होने की खुशी में यह त्योहार मनाया जाता है। किश्तवाड़ के लोग भंडार कोट में स्नान करने जाते हैं और वहां दान पुण्य करते हैं। दोपहर के समय चौगान में एक मेला आयोजित होता है जिस में मुख्य आकर्षण दंगल रहता है।

कंठक यात्रा- इसका आयोजन भादों मास की अमावस्या की द्वितीया और तृतीया को होता है। इस दिन लोग चौगान में इकट्ठे होते हैं और कंठक के पुतले को आग लगाकर नाचते और गाते हैं। जनश्रुति है कि सन् 1636 ई. में किश्तवाड़ के राजा भगवान सिंह ने बसोहली के राजा भूपतदेव के प्रतिनिधि कंठक का सिर तलवार से काट कर उसे चौगान में गेंद की भाँति लुड़क वाया था। उसी दिन से कंठक यात्रा का प्रचलन है। इनके अतिरिक्त सरथल यात्रा, त्रिसंध्या यात्रा, हुन्द माता यात्रा, गोमाई नाग यात्रा का आरम्भ भी किश्तवाड़ से होता है।

माघ अमावस्या- यह पर्व भादों मास की अमावस्या के दिन बहुत पहले किश्तवाड़ में किन्तु अब सरथल में आयोजित होता है। किश्तवाड़ के लोग इसमें भाग लेने सरथल जाते हैं। रात्रि में इस त्योहार में 'जागरो' का

आयोजन होता है जिस में 'चेला' कई चमत्कार दिखाता है। वह आग पर भी चलता है और भविष्य वाणियाँ भी करता है। इस दिन लोग पूरी रात नाचते और गाते हैं। इस पर्व पर विशेष पकवान 'मांडु' तैयार किया जाता है। इसका लगभग एक फुट घेरा होता है।

भूत तसोरो- पौष मास की अमावस्या से पहले आने बाले वुधवार को किश्तवाड़ के हिन्दू एक छोटे गोल पत्थर में भूत का आहवान करके उसकी सायंकाल को पूजा करते हैं और उसे बढ़िया भोजन भेंट करते हैं। किश्तवाड़ के लोगों का विश्वास है कि भूत उनके पशुओं की रक्षा करता है।

फागिन पुर्णिम्- पौष मास की पूर्णिमा के दिन किश्तवाड़ के हिन्दू परिवारों में इस पर्व का आयोजन होता है। सायंकाल के समय पुरुष-महिलाएँ और बच्चे एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होते हैं। वे झाड़ियों की पूजा करते हैं और बाद में इन्हें आग लगा कर जला देते हैं। समझा जाता है कि यह पर्व अतिशीत के अन्त का सूचक है। महिलाएँ अपनी-अपनी थालियाँ एक दूसरे को भेंट करती हैं और वहाँ बच्चों को खाना खिलाने की भी परम्परा है।

गुरतराइ- यह महिलाओं का पर्व है। यह माघ मास की पूर्णिमा के तीसरे दिन मनाया जाता है। इसे कई लोग गौरी तृतीया का पर्व मानते हैं। इस दिन विवाहित महिलाएँ अपने पतियों की दीर्घ आयु के लिए वर और मुहल्ले के बृद्धों से आर्शीवाद लेती हैं और 'थान' या मंदिर में एकत्रित होकर एक दूसरे को शुभ कामनाएँ अर्पित करती हैं। इस दिन महिलाओं को विशेष भोजन परोसा जाता है।

फाल्गुन के तिहारः- किश्तवाड़ के हिन्दुओं में माघ की पूर्णिमा से नौ दिवसीय तिहार मनाने की परम्परा है। इस दिन हिन्दू परिवार देवी-देवताओं का आह्वान करते हैं और उनकी मूर्तियाँ घरों में स्थापित करते हैं। आह्वान को वे 'दिव आए' कहते हैं। पहली अन्धेरी रात को सदान, दूसरी को सदां काला, तीसरी को सातान चौथी को काकुल, पाँचवीं को दो काकुल, छटी को तृकाकुल सातवीं को निकास आठवीं को दो निकास नवीं को तृीनकास कहते हैं। इन नौ दिनों में वे विभिन्न क्रियाएँ करते हैं। काकुल के दिन पुरुष जलकुंडों में जाकर पैन छुआई (पानी छूना) करते हैं। इस दिन के बाद महिलाएँ जल लेने घर से वाहर नहीं जाती। यह क्रिया पुरुष करते हैं। दूसरे

काकुल को 'कामरथ' परम्परा का निर्वहन किया जाता है। इसके अन्तर्गत घर के आभूषणों को तोला जाता है। इन दिनों ज्येष्ठा नक्षत्र के दिन मालगादन त्योहार भी मनाया जाता है। घर की सफाई करने वाले को थान पर बैठा कर उसे फूलों की माला पहनाई जाती है। तीसरे निकास को महिलाएँ जलकुंडों में एकत्रित होती हैं और 'भूम छुआई' परम्परा का पालन करती है जिस का अर्थ है भूमि को स्पर्श करना। इसके पश्चात् दम्पति खेतों में जाते हैं और वृक्षों तथा पौधों का भूमि खोद कर आरोपन करते हैं। इस अवसर पर बच्चों को भोजन परोसा जाता है। तिहार के अंतिम दिन देवताओं को यह कह कर विदा किया जाता है:- दिव दराई दिव दराइ गोलन गदाइ गांदी गई।

हल वांज़न वाह- यह कृषि सम्बन्धी अनुष्ठान है। फाल्गुन मास के चन्द्र पक्ष की बारहवीं तिथि को आयोजित होता है। इस दिन घी की रोटी प्रातः काल तैयार की जाती है। पुरुष हल उठाकर खेतों में जाते है और महिलाएँ रोटी लेकर उनके पीछे जाती हैं। वे बैल के माथे पर केसर का टीका लगाकर कृषि कर्म आरम्भ करते हैं।

शाह फरीद-उ-द्दीन का उर्स- शाह साहब का निर्वाण दिवस 21 या 22 जून को अस्तान वाला में जो जियारत शरीफ के अन्तर्गत है, बड़े उत्साह और श्रद्धा से मनाया जाता है जिसमें जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के हज़ारों श्रद्धालु भाग लेते हैं।

इसे स्थानीय भाषा में अस्थान यात्रा कहते हैं।

शाह फरीद-उ-द्दीन बगदाद से राजा जयसिंह (1656-64) के शासन काल में किश्तवाड़ आये। वे उच्च कोटि के रूहानी सूफी संत थे। उनका सम्बन्ध कादरिया सिलसिले से था।

शाह असरार का उर्स:- शाह असरार का उर्स 9 या 10 नवम्बर को प्रति वर्ष किश्तवाड़ में मनाया जाता है। वे शाह फरीद-उ-उद्दीन के बड़े लड़के थे और केवल अठारह वर्ष की आयु में शरीर छोड़ गए। शाह साहव के उर्स में सभी धर्मों और सभी वर्गों के लोग सम्मिलित होते हैं।

किश्तवाड़ के धार्मिक स्थलः-

किश्तवाड़ में सबसे प्रसिद्ध धर्मस्थल सरकोट सरोवर के तट पर निर्मित गौरी शंकर मंदिर है। किश्तवाड़ के हिन्दुओं का यह एक प्रमुख सांस्कृतिक स्थल है। मेलों, यात्राओं का शुभारम्भ यहीं से होता है। इसके अतिरिक्त किश्तवाड़ में एक रघुनाथ मंदिर और एक शिव मंदिर भी है। सिक्खों का यहाँ एक गुरुद्वारा है।

मुस्लिम दरवेश शाह फरीद-उ-द्दीन तथा उनके पुत्र शाह असरार की सुन्दर तथा कलात्मक दरगाहें हैं। इनके अतिरिक्त जामा मस्जिद, मस्जिद बाजार, मस्जिद कामगार, मस्जिद फरीदिया, मस्जिद असराया, अबु वकर मस्जिद और गुड़िन मुहल्ला मस्जिद स्थापत्य की दृष्टि से उच्चश्रेणी के प्रार्थना-भवन हैं।

किश्तवाड़ की शान-चौगान- किश्तवाड़ का दर्शनीय स्थल इसका चौगान है। इसकी प्रशंसा में एक शायर ने फारसी में लिखा हैः-

शानी बगदाद या खलद बरेया किश्तवाड़

या फरा चौगान दिलकश जनत अलमादि अस्तइ।

निः सन्देह यह चौगान स्वर्ग का ही एक टुकड़ा लगता है। इसका क्षेत्र फल पैंसठ एकड़ है। इसके चारों दिशाओं में ऊँचे-लम्बे छायादार वृक्ष हैं और मध्य भाग खाली है। इस के साथ सटे भूभाग में आकर्षक एवम कलात्मक भवन हैं। यह मैदान डुग्गर में सबसे बड़ा क्रीड़ा स्थल है। इसके पश्चिम दक्षिण में मृत हिन्दुओं के स्मारक (पत्थर) हैं। किश्तवाड़ के अधिकांश सांस्कृतिक कार्यक्रम इसी चौगान में आयोजित होते हैं। निःसन्देह यह मैदान किश्तवाड़ की शान है।

सरकूटः- यह किश्तवाड़ का एक विशाल सरोवर है। यह चौगान के दक्षिण पश्चिम में है। यह अति आकर्षक सरोवर है। इसके एक भाग में कलात्मक अट्टारिकाएँ हैं जिन में बैठ कर श्रद्धालु स्नान करते हैं। इसके साथ ही एक छोटा सा पवर्तीय टीला है। टीले को हिन्दी में कूट कहते हैं। सम्भव

है यह सर पहले टीले तक फैला हो और उसी कारण इसका नाम सरकोट पड़ा हो। इतिहासकार दूनीचन्द शर्मा का मत है कि प्राचीन समय में ऋषि श्रीपाल का इसी के तट पर निवास था और उसी के नाम पर इस सर का नाम सरकोट पड़ा। कुछ भी हो यह किश्तवाड़ का रम्य स्थल है।

गौरी शंकर मंदिर- यह किश्तवाड़ का प्राचीनतम मंदिर है। सम्भव है कि नील कंठेश्वर महादेव का लिंग पहले यहीं-कहीं स्थापित हो जिसे बाद में बसोहली के राजा भूपतपाल ने बसोहली में स्थापित किया। मूल मंदिर नाग खस शैली में था और इस का ऊपरी भाग ढलवां छत जैसा था किन्तु अब इसे नागर शैली का रुप दिया गया है और इसका ऊपरी भाग कलशयुक्त है। नव निर्मित गौरी शंकर मंदिर भव्यता की दृष्टि से किश्तवाड़ का वेजोड़ मंदिर है। इस के निचले भाग में एक कक्ष है जिस की बनावट महा-मण्डप जैसी है। इसमें स्थापित गौरी-शंकर की मूर्ति दर्शनीय है।

दरवार फरिदिया- सूफी संत हज़रत शेख फरीद-उ-द्दीन की याद में बना यह विशाल स्मारक पर्यटकों, श्रद्धालुओं तथा मुरीदों के लिए किश्तवाड़ में आकर्षण का सबसे बड़ा केन्द्र है। यह कई कक्षों में आधारित है। इसका प्रवेश द्वार पश्चिमोंमुख है। यह मुस्लिम शैली में बना है और इसके मीनार बहुत ऊँचे हैं। इस में शाह फरीद-उ-द्दीन तथा उन के परिवार के सद्स्योंकी कब्रे हैं। उस के दिन शाह साहब और उनके पुत्र अख्यार-उ-द्दीन की दो कमीज़े, साहब ज़ादों के मुए मुवारक, मिट्टी का संगपाया, चाँदी की मछली, मोहर, लम्बी टोपियाँ एक कंधा और एक मंत्र के दर्शन मुरीदों को कराये जाते हैं।

दरवार असरारया- हज़रत शाह मुहम्मद असरार-उ-द्दीन की जियारत गाह को दरवार असरारया, आस्ताना दरबार तथा आस्तान पाये भी कहा जाता है। यह पावन स्थल चौगान के दक्षिण में स्थित है। यह काष्ठ निर्मित भवन छोटा होते हुए भी अध्यात्मिकता का मुख्य केन्द्र माना जाता है। यहाँ शाह मुहम्मद अससर-उ-द्दीन का उसे नौ या दस नवम्बर को बड़ी श्रद्धा के साथ आयोजित होता है।

वर्तमान किश्तवाड़- वर्तमान किश्तवाड़ पहले जिला डोडा के अन्तर्गत तहसील किश्तवाड़ का मुख्यालय था किन्तु अब यह जिला की

मुख्यालय बनेगा। महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल में इसे जिला का दर्जा दिया गया था किन्तु 1909 में महाराजा प्रतापसिंह के शासन काल में इसे जिला उधमपुर की तहसील बनाया गया और बाद में स्वतन्त्रतोपरान्त जम्मू कश्मीर राज्य में नये जिलों का गठन हुआ तो इसे जिला डोडा की तहसील का मुख्यालय रखा गया।

किश्तवाड़ पर दैवी आपदाएँ भी बहुत आई। सन् 1933, 1943 तथा 1980 में इसे आग लगी और इस का बहुत बड़ा भाग जल कर राख हो गया। इसके भव्य और विशाल राजमहल डोगरा काल में धराशायी हो गए और यह नगर खंडहरों में कई बार बदला। फिर भी आज़ादी के बाद किश्तवाड़ का कुछ विकास भी हुआ। सन् 1947 के बाद इसे वटोत से सड़क से जोड़ा गया। सड़क आने के बाद किश्तवाड़ का मानचित्र बदला। नया बाज़ार बना। कई सरकारी कार्यालय बने। सन 1986 में यहाँ महाविद्यालय भी खुला किन्तु किश्तवाड़ आज भी विकास की इस यात्रा में डुग्गर के कई नगरों से पीछे हैं। इस नगर की शैक्षिक, और आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है। आतंकवाद भी इस की प्रगति में बाधक बना। किन्तु नई पीढ़ी में जो सांस्कृतिक और बौद्धिक जागृति आ रही है उसे देखते हुए किश्तवाड़ का भविष्य उज्जवल लगता है।

भद्रावकाश (भद्रवाह)

स्थितिः- यह नगर जम्मू के पूर्वोतर में जम्मू से 201 कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है। श्रीनगर से इस की दूरी 252 कि.मी. किश्तवाड़ से 73 कि. मी. और बसोहली से पगडंडी के मार्ग से 96 कि.मी. है। यह नगर नीरु नदी द्वारा निःसृत घाटी में आबाद है।

नामकरण- भद्रवाह के नामकरण पर इतिहासकार और विद्वान एक मत नहीं हैं। कईयों का मत है कि पुराणों में वर्णित मद्र देश के साथ जिस भद्र देश का उल्लेख हुआ है, वह यही है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भद्र देश की राजधानी 'भद्र' थी और उसी के नाम पर इस जऩ पद का नाम 'भद्र' पड़ा किन्तु भद्रदेश भद्रावकाश ही था इस की पुष्टि में ठोस प्रम़ाण नहीं मिलते। कल्हण कृत राज तरंगिणी इतिहास की पहली पुस्तक है जिस में इसका नाम भद्रावकाश उल्लिखित है। पुराविद रामचन्द काक के

अनुसार भद्रावकाश का अर्थ है- 'सुन्दर स्थल', भद्रावकाश अति सुन्दर और रमणीक स्थल है, अतः इसी कारण इस का नाम भद्रावकाश रखा गया। भद्रावकाश का विकृत रुप भद्रवाह है और अब यही नाम प्रचलन में है। वासुकि पुराण में भी इसे भद्रावकाश ही लिखा गया है, जैसे 'भद्रावकाश कथिंत भद्राश्रम विभूषितम्'।

किन्तु कतिपय इतिहासकारों का मत है कि इस नगर की स्थापना वल्ल पुर के राजा राधक के पुत्र भद्रपाल ने अपने नाम पर की थी, अतः इस का नाम भद्रवाह प्रचलन में आया। कई विद्वानों का मत है कि इस नगर का नाम करण इस स्थान की अधिष्ठात्री देवी 'भद्रकाली' के नाम पर हुआ है। जान फास्टर ड्रिव के अनुसार इस का एक नाम भद्रकाशी भी है। डोगरा शासन काल में इसे 'भदर वाल' भी कहा जाता रहा।

निष्कर्ष रुप में हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि इसका आदि नाम भद्रावकाश ही था और उसी से भद्रवाह विकसित हुआ है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य-

भद्रावकाश पर जो ग्रंथ प्रकाशित हैं उन का अनुशील न करने से पता चलता है कि प्राक् इतिहासकाल में यह क्षेत्र नाग शासकों के अधीन था और वासुकि नाग इस क्षेत्र का पहला राजा था। उस के बाद पौराणिक काल में जुब नाथ इस क्षेत्र का शासक बना। उस की राजधानी डुंगानगर थी जो वर्तमान भद्रवाह नगर से डेढ़ किलोमीटर दूर थी। जुबनाथ के पास एक ऐसा घोड़ा था जो अश्वामेध यज्ञ के लिए पांडवों को चाहिए था। माँगने पर जुबनाथ ने घोड़ा न दिया तो पांडवों ने उसे और उसके उतराधिकारी मेघनाथ को लड़ाई में आहत किया और वे घोड़ा लेकर चले गए।

किन्तु ऐतिहासिक के ग्रंथों में भद्रावकाश का उल्लेख ग्यारहवीं सदी से मिलता है। कल्हणकृत राजतरंगिणी में वर्णित है कि सुस्सल (1101-1128 ई.) के शासन काल में सहावर मंगल कश्मीर छोड़ कर भद्रवाह आ बसा था। भद्रवाह का उल्लेख चम्बा के एक ताम्रपत्र में भी राजा सोमवर्मन तथा असतादेव के सन्दर्भ में मिलता है। समझा जाता है कि यह ताम्रपत्र 1080 ई. का है। इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि भद्रावकाश बारहवीं सदी में वजूद

में आ चुका था। डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल का मत है कि भद्रवाह बारहवीं सदी में एक राज्य के रुप में स्थापित हो चुका था और इसका आदि शासक राजा नागपाल (1120-1184 ई.) था। उसके उतराधिकारियों के जो नाम मिलते हैं वे हैं - शम्भुपाल, भोगपाल और राधकपाल। इतिहासकारों का मत है कि राधक बल्लपुर का राज कुमार था। जब वह भद्रवाह का राजा बना तो वह बल्लपुर के अधीनस्थ था। उसका पुत्र भद्रपाल था जिसने भद्रवाह नगर की स्थापना की। किन्तु भद्रवाह का विधिवत इतिहास राजा नागपाल द्वितीय से ही आरम्भ होता है। राजा नागपाल मुगल सम्राट अकबर का समकालीन था। नागपाल के बादक्रमशः भगतपाल (1620-34 ई.) धर्मपाल (1634-1691 ई.) अभयपाल (1691-1707 ई.) मेदनीपाल (1707-1735) सम्मतपाल (1735-1770) फतेहपाल (1770-1790) दयापाल (1790-1810 ई.) तथा पहाड़चन्द (1810-1821 ई.) भद्रवाह के राजे रहे। किन्तु इनमें अधिकांश शासक चम्बा के राजा के करदाता थे। सन् 1821 में खड़तसिंह और सन् 1844 में श्रीसिंह भद्रवाह के नाम मात्र राजा थे। उन पर पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह का पूर्ण नियंत्रण था। सन् 1846 में अमृतसर संधि के अन्तर्गत भद्रवाह जम्मू-कश्मीर का अंग बना। बाद में महाराजा रणवीर सिंह (1857-1885 ई.) ने भद्रवाह की जागीर अपने कनिष्ठ पुत्र अमर सिंह को प्रदान की। किन्तु 1926 ई. में जब उसका पुत्र हरिसिंह जम्मू कश्मीर का महाराजा बना तो भद्रवाह पुनः जम्मू कश्मीर का अंग बना।

पर्यटकों की दृष्टि में भद्रवाह

विदेशी पर्यटक वायन ने अपने यात्रावृत में भद्रवाह के विषय में लिखा- मेरे ख्याल से यह कस्बा किशतवाड़ से दुगना है। इस में दो सौ से तीन सौ घर थे। इन तमाम पहाड़ी कस्बात में अधिकांश कश्मीरी हैं जो अपने प्रदेश से सिक्ख प्रशासकों के अत्याचारों से बचने के लिए इन इलाकों में पलायन करके आए। मुख्य बाज़ार पश्चिम उतर दिशा में है। इस में जो किला है वह वर्गाकार और भव्य है जो स्लेट के बड़े-बड़े पत्थरों से बनाया गया है। ये पत्थर आस-पास में उपलब्ध हैं। यह अन्य किलों की अपेक्षा बड़ा ही विचित्र है। इस किला की पृष्ठ भूमि में जो वनों से भरी पहाड़ियाँ हैं वे इस को सुरक्षा प्रदान करती हैं। ऐसा लगता है कि वाज़ार में व्यापार होता था। अढ़ाई सौ के लगभग शाल की खड्डियाँ थीं किन्तु इन का उत्पादन घटिया था। सेव की लकड़ी से बड़िया कंघे बनाये जाते हैं। गर्मी के मौसम में एक

ऊँचे दर्रा को पार करके चार पाँच दिनों में चम्बा जा सकते हैं। या दूसरे दर्रे छातरु धार से बसोहली। दोनों दर्रे बर्फ ने जनवरी 1839 में जब मैं वहाँ था, बन्द कर दिए थे। वायन ने भद्रवाह के लोगों के विषय में लिखा है- वे मैदान के लोगों की अपेक्षा छोटे कद किन्तु सुदृढ़ शरीर के हैं। उनके नक्श खूब सूरत, रंग सफेद और अख्लाक पसंद हैं।

फेडरिकड्रियू ने अपने अनुभवों को कलमबंद करते हुए लिखा- भद्रवाह लगभग एक समतल वादी है जिस की चौड़ाई एक मील तथा लम्बाई लगभग चार मील है। वादी की सतह में लगभग तीन ढलवान हैं। इस उतराई में भूमि कुछ फुटों में एक सोपान बनाती है ताकि यह सिंचाई के योग्य बन सके। यहां धान की फसल के लिए पर्याप्त जल संसाधन हैं। मई के महीने में लोग हल और कुदाली की सहायता से ज़मीन को धान लगाने के लिए नर्म करते हैं। पुरुष और महिलाएँ दस या बारह के समूह में खेतों में काम करते हैं। कन्धे से कन्धा मिलाकर वे दिन भर कठिन परिश्रम करते हैं और सुन्दर गीतों से अपना मन बहलाते हैं। भद्रवाह का व्यस्त कस्बा इस प्रकार के पहाड़ी इलाके की तुलना में एक बड़ी जगह है। यहाँ अनुमानतः छह या सात सौ घर और अनुमानतः तीन हज़ार निवासी है। भद्रवाह में एक खुला बाज़ार है। एक लम्बी गली किला की ओर जाती है। दो या तीन बाज़ार, दो मस्जिदें और एक बड़ा मंदिर है। आधे से भी अधिक नागरिक कश्मीरी हैं। इन्होंने स्थानीय हिन्दू नागरिकों को पीछे धकेल दिया है। इन्होंनें लगभग प्रत्येक प्रकार की नौकरियाँ प्राप्त कर ली हैं। इन में कई दुकानद्वार हैं।

'ए गज़ट आफ कश्मीर' में भद्रवाह के विषय में वर्णित है- यह जनूब- मशिरक में वाका है। यहाँ इस की सरहदें चम्बा की रियासत से मिलती हैं। भद्रवाह की वादियाँ काफी लाभदायक हैं जो स्थानीय लोगों की आवश्यकता की पूर्ति करती है। इस ज़िला में बढ़िया किस्म का तम्बाकू पैदा होता है जो कम मकदार में आस-पास की मंडियों में जाता है। भद्रवाह के मेवे कश्मीर के अच्छे मेवों का मुकावला करते हैं। शहद बहुत अधिक है और स्वादिष्ट है। मकान आम तौर पर ऊँची ऊँचाई में कम और एक मंजिल में हैं जो मिट्टी लकड़ी और पत्थरों से निर्मित हैं। समतल छतों पर धुआं निकलने के लिए पत्थरों के सुराख वाला एक चवूतरा सा बनाया जाता है। कुछ बढ़िया किस्म के मकान दो मंजिल में हैं जिन की छते ढलवां हैं किन्तु इस प्रकार के घर

आम नहीं हैं। इस जिला में पंजाब के बराबर वारिश पड़ती है किन्तु मई के महीने में गर्ज चमक के साथ वारिश पड़ती है और मौसम की खराबी कई दिनों तक जारी रहती है। इस कस्बे में चार सौ से अधिक घर हैं जिनमें दो सौ घर हिन्दुओं के हैं। बाज़ार में हिन्दू लोगों की साठ दुकानें है और पच्चास शालवाफ हैं। मुसलमानों के 160 घरों के इलावा यहाँ चार सौ खड्डियाँ भी मजूद बताई जाती हैं। कहा जाता है कि कस्बे में सात चश्में हैं। भद्रवाह में बनाये जाने वाले शाल खुरदरे किस्म के हैं फिर भी शाल बुनने वालों को काफी आज़ादी हासिल है और उनकी अनुमानतः आय साढ़े चार रुपये मासिक है। किले से थोड़ा नीचे एक मस्जिद और सैय्यद साहब की ज़ियारत है। कस्बा में दूसरी मस्जिद और गंदर शाह की जियारत है। यहाँ हिन्दुओं के तीन मंदिर हैं। वदरवार का अर्थ है - भड़हा का गढ़, पहाड़ी लोक इसे वदार और कश्मीरी बुदरीकार भी कहते हैं।

नगर की संरचना- भद्रवाह एक पर्वतीय उपनगर है। इसका कुछ भाग समतल है और शेष भाग में ढलान है, अतः यह सीढ़ी नुमा शहर लगता है। यह साढ़े पाँच वर्ग किलोमीटर में परिव्याप्त है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार इस में कुल 955 मकान थे और इस की आवादी 6075 और 2001 में 10516 थी। इस उपनगर में आठ मुहल्ले थे जिन के नाम क्रमशः किला मुहल्ला, मस्जिद मुहल्ला, मुहल्ला धर्मपुरा, मुहल्ला सराफा, मुहल्ला गनाईयाँ, शनाली मुहल्ला, सदर बाज़ार तथा मुहल्ला बासक देहरा हैं। इनके अतिरिक्त अब कई नये मुहल्ले भी बजूद में आ चुके हैं और इसका फैलाव भी बढ़ गया है। डोगरा नगरों की भाँति भद्रवाह में कोई विस्तृत चौगान या मैदान नहीं है और जो छोटा सा चौगान था वह अब बस अड्डा में परिवर्तित है जिस के चारों ओर दुकानें हैं। इसी मैदान के पश्चिम से एक छोटा सा टेढ़ा-मेढ़ा बाज़ार शुरु होता है। इस बाज़ार में सारा दिन चहल पहल रहती है। चौगान के दक्षिण में वासुकिनाग मंदिर की ओर जाने वाली सड़क में भी दोनों ओर दुकानें खुल गई हैं जिस से यहाँ भी एक बाज़ार विकसित हुआ है। बस अड्डा के पूर्व में गुप्त गंगा की ओर जो सड़क जाती है उसमें भी एक नया बाज़ार मजूद में आया है।

भद्रवाह एक साफ-सुथरा नगर है। इस का बाज़ार और गलियाँ पक्की हैं। अब यहाँ कश्मीरी शैली में भी कई मकान बने हैं जिन की छतें ढालवां हैं। सपाट छत वाले मकान भी यहाँ दिखाई दे जाते हैं। भद्रवाह में जल पर्याप्त

मात्रा में है, अत: वनस्पति के कारण यह हरा भरा लगता है। इस में फलदार और छाया दार वृक्षों की भरमार है। इसी कारण इस का एक नाम छोटा कश्मीर भी है। भद्रवाह के चारों ओर जो पर्वत श्रृंखलाएँ हैं वे इसके सौंदर्य में और भी अभिवृद्धि करती हैं।

जन-जीवन- लोकपरम्परा के अनुसार नाग भद्रवाह के मूल निवासी थे। आज भी भद्रवाह की मूल संस्कृति में नाग परम्पराएँ अन्तर्निहित हैं। माना जाता है कि नागों ने ही पशुचारकों की कई प्रजातियों को यहाँ बसाया। भद्रवाह का प्राकृतिक परिवेश उनके अनुकूल भी था। कई विद्वानों का मत है कि आर्यों की ही एक शाखा भद्रवाह की ओर आई और यहाँ बसी। स्थानीय लोगों का शारीरिक गठन आर्यों जैसा ही है अत: इस मत की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। नाग और आर्य परम्पराओं ने भद्रवाह में जिस संस्कृति को जन्म दिया उसे ही भद्रवाही संस्कृति या आँचलिक संस्कृति का नाम दिया जा सकता है। भद्रवाह के 'ठाक्कर' आर्य हैं या खस इस पर बहस की आवश्यकता है किन्तु इतना निश्चित है कि भद्रवाह की पहचान इन्हीं के कारण है। बाद में भद्रवाह पलायन करके दूर-दूर से आए लोगों की शरण स्थली भी बनी। भद्रवाह के ब्राह्मण परिवार माना जाता है कि स्थानीय निवासी नहीं हैं। वे मैदान से आए हैं या उत्पीड़न के कारण कश्मीर से आए हैं किन्तु इन्होंनें भद्रवाह में जो सांस्कृतिक चेतना जगाई उस के जो परिणाम सामने आए वे सुखद कहे जा सकते हैं। भद्रवाह को कई बार वल्लपुर, चम्बा और बाद में जम्मू की अधीनता में भी रहना पड़ा। अत: चम्बा, बल्लपुर और जम्मू के मैदानी इलाके से भी कई लोगों ने भद्रवाह को अपना निवास बनाया जिस कारण यहाँ एक समन्वित संस्कृति विकसित हुई। भद्रवाह को एक पहाड़ी मंडी का रुप देने का श्रेय महाजनों को दिया जाता है। उनके इस नगर में बसने से भद्रवाह का आर्थिक विकास भी हुआ। मुस्लिम परिवार बाहर से आए और कई स्थानीय लोगों ने धर्म परिवर्तन भी किया जिस कारण भद्रवाह की आधी जनसंख्या हिन्दू और आधी मुसलमान हो गई। किन्तु मुसलमानों ने भी परम्परित रीति-रिवाज़ों का परित्याग नहीं किया। इसी कारण इन दोनों सम्प्रदायों में मेल मिलाप बना रहा। हिन्दू जोगी, बराले तथा वनजारे बहुत बाद में भद्रवाह में आए किन्तु अब ये भी इसी धरती के मान्य पुत्र हैं।

भद्रवाह में हिन्दू तथा मुसलमान उप जातियों की संख्या इक्कीस बताई जाती है हिन्दुओं की उप जातियों में 'आन' प्रत्यय जोड़ने की परम्परा

है, यथा-जम्मान, खस्सान तथा ठोल्लान इत्यादि। मुसलमानों में सैय्यद, कटोच, रांथर, डार, मतु, रिशु, चक्कू, क्राल, कादिर, काज़ी, शेख, हाजी आदि उपजातियाँ हैं।

भद्रवाहियों की वेशभूषा पहाड़ी लोगों के ही समान है। पुरुष पट्टू का ढीला-ढाला पाजामा, कुर्ता, पट्टु का कोट और पगड़ी पहनते हैं। कश्मीर के प्रभाव के कारण फिरन भी पहना जाता है। नारियों में आभूषण के प्रति विशेष लगाव है। वे प्रायः चाँदी के आभूषण पहनती हैं। कंठा, बुगदी, झुमके, कंगन, गोखरु, जोट, बंगलसचूड़ी, मरिदे, तोड़े, कड़ियाँ, हंजीर, रोप्यहार इनके प्रिय आभूषण हैं।

भद्रवाह का चावल और राजमाष बहुत ही स्वादिष्ट व्यंजन है। ये मक्की और गेहूँ का प्रयोग भी करते हैं। दूध-दही पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। अतः इन से बनी अनेक वस्तुओं का ये सेवन करते हैं। यहाँ कई प्राकृतिक बनस्पतियाँ यथा गुच्छियाँ भी उपलब्ध हैं, अतः रसोई में इन का प्रयोग भी होता है। आलू, टमाटर, मटर की पैदावार भी होती है।

पर्व और त्योहार- भद्रवाह के पर्व और त्योहारों में पहला स्थान जाट्ल का है। जाट्ल जातए से निःसृत है। यह त्योहार पूरे पहाड़ी क्षेत्रों में आयोजित है। यह त्योहार नाग देवताओं अथवा स्थानीय लोकदेवताओं के सम्मान में सम्पन्न होते हैं। भद्रवाह की जाटल को मोल कहते हैं और इस का आयोजन नालडी में नागदेवता के मंदिर में भादों मास में होता है। इस दिन मांस, मदिरा, छत्रोई तथा शहद का प्रयोग होता है। रात्रि के समय लोग 'कुड्ढ़' नाचते हैं। भादों महीने की पूर्णमाशी के दिन नगर और गाठा में रेउट्लान जाट्ल का आयोजन होता है। यह त्योहारतीन दिन चलता है। नाग पंचमी के दिन मेला पट्ट आरम्भ होता है जो तीन दिन लगता है। यह त्योहार भद्रवाह के राजा नागपाल द्वारा भारत सम्राट् अकवर को बासुकि नाग का चमत्कार दिखाने और अकबर द्वारा उसे पट्ट (वस्त्र) प्रदान करने की खुशी में मनाया जाता है। इस मेले का विशेष आकर्षण कुड्ड नृत्य है।

फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की तीज के दिन 'शरारी' त्योहार का आयोजन होता है। इस दिन लोग अपने घरों की डयोढियों में त्रिशूल बनाते हैं। इस से यह आशय लिया जाता है कि घर यंत्र जादू के प्रभाव से मुक्त है।

हेडुहिटार भद्रवाह के बच्चों का त्योहार है। पुणाव पारिवारिक त्योहार है। इस दिन घर का मुखिया अपने सम्बन्धियों के घर 'किम्ब' फल लेकर जाता है और उन्हें भेंट करते हुए कहता है- 'अवं पुणाव देईं' (मैं तुम्हें पुणाव की वध ई देने आया हूँ) 'नाग जुहारणों' पर्व के दिन लोग नाग वावलियों को साफ करते हैं। शीतला सप्तमीं के दिन 'बडकन' का त्योहार मनाया जाता है और 'त्रोस' पर देवता को प्रसन्न किया जाता है। इसे 'देवतो कालोव' भी कहते हैं जिस का अर्थ है देवता को भोग लगाना।

लोक अनुष्ठान- फसल को कीड़ों से बचाव के लिए भद्रवाह में जो अनुष्ठान ज्येष्ठ मास में किया जाता है उसे 'राढ़', बर्षा न होने पर पारेन्त और अति वर्षा को रोकने के लिए 'शान्त' अनुष्ठान किया जाता है। ग्राम में सांझा कष्ट दूर करने के लिए भंडारा किया जाता है।

पट्लपूजा, खड़ह् तथा प्याला- ये तीनों शिव सम्बन्धी अनुष्ठान हैं जो भद्रवाह सहित पूरे डोडा के पहाड़ी लोगों द्वारा किए जाते हैं। इस अनुष्ठानों को विधि-विधान और पूरी आस्था से मनाने की परम्परा है।

नाग पूजा- भद्रवाह नाग संस्कृति का केन्द्र माना जाता है। यहाँ बासुकि नाग के भद्रवाह' गाठा और नालडी में अलग अलग मंदिर हैं। वासुकि नाग को संभी भद्रवाह निवासी अपना कुलदेवता मानते हैं। इस देवता की पूजा नाग परम्परा के अनुसार कीजाती है। नागों कें नाम पर इस क्षेत्र में कई वाबलियां भी है जिन्हें पवित्र माना जाता है।

शक्ति पूजा- जिस प्रकार वासुकि नाग भद्रवाह के कुल देव हैं उसी प्रकार भद्रकाली इन लोगों की कुल देवी है। देवी-देहरा से चाहे भद्रकाली की मूति चोरी हो चुकी है किन्तु उस की पूजा का प्रचलन पूरे भद्रवाह में आज भी है।

शिवपूजा- शिव भद्रवाह के लोगों के विशेष रूप से कश्मीरी पंडितों के इष्टदेव हैं। यहाँ इन्हें 'शामी' नाम से भी अभिहित किया जाता है। शिव से सम्बन्धित मुख्य पर्व 'हेरथ' हैं। इस पर्व पर लोग शिव को भैरव रुप में पूजते हैं। इसे भद्रवाह के कश्मीरी पंडितों का सब से बड़ा त्योहार माना जाता है। इस दिन वाम-मार्गी सभी क्रियाएँ की जाती हैं और मासं-मदिरा का भी

सीमित प्रयोग होता है। इसे कई लोग तांत्रिक ढ़ग से भी मानते हैं।

इसके अतिरिक्त लोकदेवताओं पीरों और फकीरों को भी पूजा जाता है।

भद्रवाह के पीर- भद्रवाह के लोग जो आदर मान और सम्मान लोकदेवताओं को देते हैं वैसा ही सम्मान वह सूफी संतों पीरों और फकीरों को भी देते हैं। भद्रवाह में पीरों की चार दरगाहें हैं। पत्थर तोड़ पीर की दरगाह तहसील कार्यालय के प्रांगण में है। मूछ मरोड़ पीर का स्थान भी तहसील के निकट है और एक दरगाह हज़रत सैय्यद साहब और एक हज़रत गंदर साहव की है। साई सकीद साहिव की भी यहाँ बहुत मान्यता है। सभी धर्मों के लोग इन दरगाहों में मनौती माँगने आते हैं। पीरों के उर्सों में भी सभी सम्मिलित होते हैं।

केल्लू वीर- भद्रवाह में अन्य लोकदेवताओं की अपेक्षा केल्लूवीर का विशिष्ट स्थान है। माना जाता है कि यह एक राक्षसी देवता है और कष्ट तथा क्लेश से बचने के लिए इस की पूजा की जाती है।

नृत्य तथा संगीत- ढेक्कू नृत्य भद्रवाह का लोकप्रिय नाच है। इसे जाट्ल, कुड्ढ तथा मालचे के अवसर पर नाचा जाता है। यह एक सामूहिक नृत्य है इसमें पुरुष और नारियाँ भागे लेते हैं। इस नृत्य में ढोल, नरसिंहा, बेल्ल तथा बाँसुरी का उपयोग होता है। इस नृत्य की तीन अवस्थाएँ होती हैं। यह नृत्य मंद गति से आरम्भ होता है मध्य में इस में गति आती है और अंत में यह तीव्र होता है। भद्रवाह में गीत नाच का प्रचलन भी है। इसमें दस बारह व्यक्ति गोल बनाकर बैठ कर गाते हैं और नर्तक नृत्य प्रस्तुत करता है। महिलाओं के नृत्य को 'घुरेई' नाम दिया गया है किन्तु भद्रवाह में इसका प्रचलन कम हो गया है। यह महिलाओं का सामूहिक नृत्य है। इसमें वे एक दूसरे की कमर में बाँह डाल कर नृत्य के साथ-साथ गाती भी हैं। देवताओं का आह्वान करने के लिए 'बेल्ल ताल' बजाया जाता है। देवोनी ताल विशेष अवसरों पर बजाया जाता है। इन तालों में ढोल भानों तथा नरसिंह का प्रयोग होता है।

भाषा बोली और साहित्य :-

भद्रवाही:-भद्रवाह की बोली है जो डॉ. सत्यपाल श्री वत्स के अनुसार डोगरी की उपभाषा है। इस में वैदिक शब्दावली सुरक्षित है। इस में संस्कृत की भाँति नपुंसकलिंग का प्रयोग होता है।

ट्ल, ड्ल और ढ्ल इस में विशेष व्यंजन हैं। भद्रवाही का लोकसाहित्य बहुत समृद्ध है। डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल ने भद्रवाही लोक साहित्य पर सराहनीय कार्य किया है। भद्रवाही की अपनी अलग लिपि नहीं है। आधुनिक भद्रवाही साहित्य देवनागरी में प्रकाशित है। भद्रवाही साहित्य को प्रोत्साहित तथा विकसित करने के लिए स्थानीय साहित्यकारों ने भिडलाही साहित्य सभा का गठन किया है। इस संस्थान ने एक दर्जन से अधिक पुस्तकें भद्रवाही में प्रकाशित की हैं। हंसराज शर्मा, लेखराज भद्रवाही तथा डॉ. कौल भद्रवाही के लेखक हैं।

भद्रवाह में हिन्दी, उर्दू और डोगरी में लिखने वालों की संख्या भी पर्याप्त है।

भद्रवाह को यह श्रेय प्राप्त है कि जिला डोडा में पहला स्कूल अमर हाई स्कूल तथा इन्टरमीडियेट कॉलेज भद्रवाह में खुला। अब यहां एक महा विद्यालय तथा कई उच्च विद्यालय है। नागरिक पढ़े लिखे और जागरुक है।

भद्रवाह में कई पट्टे और शिलालेख डोगरी में भी मिलते हैं जिन के अलोकन से लगता है कि डोगरी का यहाँ प्रचलन रहा है।

दर्शनीय स्थल- पूरी भद्रवाह घाटी ही दर्शनीय है। इसे घरती का स्वर्ग भी कहा जा सकता है। इस का तापमान 18^0 से.से 32^0 सेलसियस तक रहता है, अत: यहां की जलवायु अति सुहानी है। फिर भी भद्रवाह में गुप्त गंगा, वासुकि नाग मंदिर, भद्रकाली मंदिर, लक्ष्मी नारायण मंदिर तथा गाठा का नाग मंदिर दर्शनीय हैं। गुप्त गंगा को तो स्थानीय लोग अति पावन मानते हैं और इसी कारण इसे भद्रकाशी के नाम से अभिहित करते हैं। यहाँ एक गुफा है जिस में ब्राह्मी लिपि में एक शिलालेख है जिस के विषय में कहा जाता है कि वह दूसरी सदी का है। इस शिलालेख के अवलोकन से लगता है कि भद्रवाह अति प्राचीन नगर है। काल गंगा के निकट ही बुद्ध सत्व की मूर्ति भी प्राप्त हुई है जिस से पता चलता है कि कभी यहाँ बौद्ध-विहार भी रहा होगा।

वासुकि नाग का मंदिर भद्रवाह में पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण है। इस में स्थापित जीमूत वाहन तथा वासुकि नाग की आदमकद काली मूर्तियाँ मूर्ति कला का वेजोड़ नमूना हैं।

भद्रवाह की जामअ मस्जिद रियासत की मस्जिदों में सिरमौर है। इसकी गणना भद्रवाह के सुन्दरतम भवनों में की जाती है।

डोडा

स्थिति- यह नगर जम्मू के पूर्वोतर में जम्मू से 173 कि.मी. और श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व में 224 कि.मी. दूर है। यह चन्द्रभागा के पश्चिमी तट पर स्थित पहाड़ी की गोद में बसा है। यह एक अति सुन्दर और स्वच्छ उपनगर है। पुल डोडा से किश्तवाड़ 59 कि.मी. और भद्रवाह 27 कि.मी. दूर है।

समुन्द्र तल से इस की ऊँचाई लगभग 3800 फुट है।

नामकरण- डोडा के नामकरण के विषय में विद्वान एक मत नहीं है। कुछेक का मतहौ कि यहाँ पोस्त के डोडों का उत्पादन होता था, अत: इस स्थल का नाम 'डोडा' प्रचलन में आया। किन्तु डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल का अभिमत है कि इस स्थान का नाम 'डोड़ा मांड' के नाम पर पड़ा जो एक शिल्पकार था और यहाँ काम करने मुल्तान से आया था। लोक परम्परा के अनुसार पहले इसका नाम नगरी था । बाद में यह नाम मिट गया और 'डोडा' नाम प्रसिद्ध हुआ।

ऐतिहासिक पृष्ट भूमि-डोडा सिराजी संस्कृति का मुख्य केन्द्र रहा है। सिराज क्षेत्र पहले छोटे-छोटे राणाओं के अधिकार में था किन्तु बाद में किश्तवाड़ के शासकों ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। उन्होंने सिराज क्षेत्र को नियंत्रण में रखने के लिए डोडा को शरदकालीन राजधानी बनाया। किश्तवाड़ का राजवंश हिमपात के दिनों में कड़ाके की ठंडक से वचने के लिए डोडा में आ जाता था। उन दिनों नगरी मुहल्ले के आस-पास उनका राजमहल था जो अब धराशायी है। सन 1821 में पंजाव नरेश के आदेश पर मिंया गुलावसिंह ने किश्तवाड़ के अन्तिम राजा मुहम्मद कीरत सिंह को डोडा

में बुलाया फिर उसे बंदी बना कर लहौर भेज दिया। डोडा महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल में तब चर्चा में आया जब महाराजा ने गुलावसिंह के दासी पुत्र मिंया हट्ठु को उनकी हत्या का षडयंत्र रचने के आरोप में डोडा दुर्ग में बन्दी बनाकर रखा।

विदेशी पर्यटकों की दृष्टि में डोडाः-

ए गज़ट आफ कश्मीर के सम्पादक वेट्स (1870-72) के शब्दों में डोडा सूबा किश्तवाड़ का एक कस्बा है जो चन्द्र भागा दरिया के दायें किनारे से ऊपर एक छोटे से मैदान में वाकय है। यह एक घास से ढके हुए दरख्तों से खाली पहाड़ के दामन में कदरे ढलवान ज़मीन पर आवाद है।

डोडा बदर वार (भद्रवाह) के शुमाल मगरिव में शमील और वरादरी वाल दर्रे के रास्ते वेरी नाग के जनूव मगरिव में 46 मील की दूरी पर है। दरिया चिनाव एक फैले हुए और पुर ज़ोर सैलाब के साथ शोर कर रहा है। जून जुलाई और अगस्त के महीनों में वर्फ पिघलने की वजह से दरिया का पानी काफी बढ़ता है तो पुल को भी ऊँचा कर दिया जाता है। दरिया के किनारे से मैदान और कस्वे तक चढ़ाई कदरे ऊँची है जिसे किले को जाने वाले रास्ते से पच्चीस मिन्ट में तह किया जा सकता है। डोडा का किला मैदान के एक किनारे पर कस्वा के जनूव में तकरिविया पच्चास गज की दूरी पर वाकया है। मिट्टी की बनी हुई यह इमारत दो सौ मुरब्बा फुट है। जिसके किनारों पर बुर्ज हैं। इसमें कोई खाई बगैरह नहीं है।

इसमें दाखिल होने का रास्ता मशरिक की जानिब कुछ दरख्तों में से है। इस किला को अब सरकारी कैदखाना के रुप में इस्तमाल किया जाता है और इस में महाराजा का सौतेला भाई मीर हठो सिंह को नज़रबंद किया गया है। इस बद किस्मत शाहज़ादा ने चन्द अहले फौजी अफसरों के साथ मिलकर महाराजा की तख्त नशीनी के थोड़े ही अरसे में महाराजा को तलवार या ज़हर से कतल करने की साजिश बनाई थी। इस साजिश का पता चलने पर हठो सिंह के साथियों को संगीन जुर्म की पावाश में गोलियों से उड़ा दिया गया। पंडितों और मौलवियों की शिफारश पर महाराजा ने अपने इस रिश्तादार को सज़ा-ए-मौत से तो बचा लिया लेकिन उसे ऊमर कैद की सज़ा दी गई। उस की बीवी और बाकी घर वाले कस्बा में रहते हैं मगर उन्हें शाहज़ादा के साथ

किसी भी किस्म का रावता कायम करने की इज़ाजत नहीं है।

कस्वा के अकसर मकान दो मंजिला और मिट्टी के बने हुए हैं। अच्छे मकानों की छतें कश्मीरी मकानों की तरह ढलवां हैं जो कांटेदार पतों और मिट्टी की एक तह से ढके हुए हैं। ईटों की वनी एक लम्बी वारादरी कस्बा के वालाई हिस्से में नमाया मुकाम रखती है जिस में मीर हठोसिंह का कुम्बा रिहायश पज़ीर है। बाज़ार पहाड़ के दामन में है। कस्बा के ऊपर वाले हिस्से में गलियां तंग और ऊँचाई पर हैं जो बड़े-बड़े पत्थरों से बन्द हो जाती हैं। कस्बा के शुमाल-मश्रिक में एक दर्रा आता है जिस के किनारे बहुत न हमवार है।

कहा जाता है कि यहाँ पाँच सौ से ज्यादा घर हैं जिन में से 239 हिन्दुओं और 320 शालवाफों के समेत 205 मुसलमानों के घर हैं। वाज़ार में आम तिजारत और पेशों के नमायंदे मौजुद हैं। लेकिन सबसे अहम सनत जिसके लिए यह जगह मशहुर है शालवानी है जो कश्मीरी शालों के मुकावले में किस्म और बुनाई के लिहाज़ से घटिया हैं। कस्बा में दो मस्जिदें और हिन्दुओं के कई मंदिर हैं। शाह फरीद-उ-द्दीन बगदादी की जियारत मकामी सतह पर बहुत मश्हुर है।

कस्बे में कोई कुआं या चश्मा नहीं है इसलिए पानी की फराहमी के लिए उसे मुकम्मल तौर पर मौज़ा कोटी से बहने वाली नदी पर निर्भर रहना पड़ता है। कोटी कस्बा डोडा के शुमाल में छह मील की दूरी पर एक पहाड़ के दामन में वाकया है। चौधरी रसूलखान ने कोह्ल तामीर की थी जिसके जरिया कस्बे में पीने का पानी आता है। डोडा के छोटे मैदानों को अच्छी तरह जेरे काश्त लाया गया है और यह सारा मैदान जंगलों से खाली पहाड़ों से घिरा हुआ है। इस जिला में चावल की पैदावार लोगों की जरूरत से काफी कम है। इसलिए भद्रवाह से हर साल काफी तैदाद में चावल दरामद होते हैं।

सरकारी बाग जो कस्बा के जनूब मगरिव में किला के नज़दीक है बैठने के लिए आरामदाह और पसिंदा जगह फरहाम करता है। यह बाग सूर्य की गर्मी से बचने के लिए छांव मुहैया करता है। एशियाई जरूरत की फरावाई है और माल मवेशी व भेड़े पर्याप्त हैं लेकिन पड़ोस में खच्चर और टट्टू वमुश्किल ही नज़र आते हैं। (तस्बीर ए डोडा से सामार)

वायन ने डोडा के विषय में लिखा है- ''मैं नें जनवरी 1839 ई. में डोडा देखा। यह खूबसूरत और दिलकश है। किश्तवाड़ से बड़ा है। और बेहतर बाज़ार रखता है। इर्द-गिर्द का नज़ारा दिलकश है। सिक्खों ने मुरब्बा शक्ल का साफ सुथरा किला तामीर किया है जिस के गोशों पऱ बुर्ज बने हुए हैं।' (तस्वीर-ए-डोडा से साभार) डोडा के किले के वारे में काहनसिंह वलौरिया ने लिखा है कि इस की दीवारें चार फुट चौड़ी और चालीस से पच्चास फुट तक ऊँची थीं। इनके कोणों में बुर्ज थे। किले के सहन में एक चहवचा था। दीवारों में शत्रु को देखने के लिए रन्ध्र बने हुए थे।

नगर की संरचना

डोडा उपनगर 14.25 वर्ग किलोमीटर भूमि में पऱिण्याप्त है। यह पुल डोडा से लेकर डोडा नगर तक परिसीमित है। पूरे नगर को आठ मुहल्लों में वांटा गया है जिन के नाम हैं:- नगरी, फरीदावाद, आस्तान, मतु, अकरम, शनाल, सराय तथा पुल डोडा।

यहाँ आज नगरी मुहल्ला है वहीं डोडा आवाद हुआ था और राज महल का निर्माण भी इसी स्थान में किया गया था। डुग्गर में राजधानी को 'नगरी' कहने का प्रचलन रहा है, अत: यह माना गया है कि नगरी मुहल्ला ही किश्तवाड़ के राजाओं की शरद-कालीन राजधानी था।

इसका फरीदावाद नाम सूफी संत फरीद-उ-द्दीन बगदादी के नाम पर रखा गया। उन्होनें कुछ समय के लिए यहाँ विश्राम किया था और बाद में वे राजा जय सिंह के शासन काल में किश्तवाड चले गए। सूफी दरवेश के नाम पर मुरीदों ने इस क़स्वा का नाम फरीदा वाद तो रखा किन्तु यह नाम प्रचलित न हो सका और एक मुहल्ले के नाम तक ही सीमित रहा।

आस्तान मुहल्ले में हज़रत फरीद-उ-द्दीन की एक भव्य खान काह है, अत: यह मुहल्ला रौनक के कारण चर्चा में रहता है। इसी मुहल्ले के नम्बरदार की वेटी मलाहता वानों का विवाह फरीद साहव से हुआ था, अत: हिन्दू भी खानकाह का पूरा सम्मान करते हैं।

किन्तु कई विद्वान डोडा को केवल चार ही भागों में विभाजित करते

हैं और वे हैं- पुल डोडा, बुन डोडा, मध्य वर्ती भाग तथा ऊपरी भाग। डोडा की संरचना 'नगर शास्त्र विधान' के अनुरुप की गई नहीं लगती है। डोगरा नगरों की भाँति न तो यहाँ कोई छोटा या बड़ा सरोवर है और न कोई खुला, विस्तृत तथा आकर्षक चौगान। सन् 1947 के बाद और विशेष रुप से जिलों के पुर्नगठन के बाद डोडा की तस्वीर ही बदल गई। अब यहाँ दर्जनों की संख्या में सरकारी कार्यालय हैं जिन के कारण यह पिछड़ा नगर विकास की ओर वड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। यहाँ कई नये मुहल्ले आवाद हो रहे हैं जिन के लिए भूखंड पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं। डोडा में केवल एक ही वड़ा बाज़ार है जो डाक बंगला से आरम्भ होता है और बस अड्डा से भी आगे जाता है।

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार डोडा की जनसंख्या 7174 थी सन् 2001 से यह बढ़कर 11320 था। सन् 1945 के जो आंकड़े मिले हैं उनके अनुसार सन् 1945 में डोडा की कुल आबादी 1863 थी जिनमें हिन्दू 575 मुसलमान 1193 हरिजन 60 और सिक्ख 35 थे। तब कुल आवाद घर 286 थे जिन में 254 कच्चे और 22 पक्के थे। सन् 1981 में डोडा में मकानों की संख्या 953 थी। सन् 2001 की जन गणना के अनुसार डोडा की जनसंख्या 11320 थी जिस में 6495 पुरूष और 4825 महिलाएँ थी।

जन-जीवन- मूल रुप से डोडा सिराजी- संस्कृति का केन्द्र रहा है। बाद में जब बहुत बड़ी संख्या में कश्मीरी लोगों ने भी इसे अपना आवास बनाया तो इस कस्बे में एक मिली जुली संस्कृति विकसित हुई। लोकों का जीवन स्तर भी बदला और नये बने मकानों की शैली में अन्तर आया कश्मीरी-स्थापत्य का प्रभाव इन लोगों के भवनों में स्पष्ट पड़ा। डोडा के लोगों ने अपनी परम्पराओं को मिटने नहीं दिया। यह इनकी बड़ी देन है। इनका प्रमाण डोडा के पर्व और त्योहार है।

डोड़ा के स्थानीय पर्व त्योहार और अनुष्ठान निम्न हैं:-

गोंगल- यह एक कृषि सम्बन्धी अनुष्ठान है। यह प्रायः चेत के महीने में आयोजित होता है। इस दिन कृषकों के घरों में हर्ष और उल्लास का वातावरण देखा जा सकता है। इसे सभी सम्प्रदायों के लोग मनाते हैं। इस दिन प्रातः काल वृषभ पूजा की जाती है। घर का मुखिया बैलों को गूड़ और घास

खिला कर खेतों में ले जाता है और इन्हे हल में जोतता है। वह खेतों में कुछ देर हल चलाने के बाद धरती से उखड़ी मिट्टी की तीन ढेरियाँ लगाता है। वह ऋतुओं के नाम पर इन ढेरियों के नाम रखता है। इसके बाद वह पकाया चावल और छोटी-छोटी पक्की रोटियाँ इन के ऊपर रख कर परे हट जाता है। वह दूर से देखता है कि कौआ या मुर्ग किस ढेरी से अनाज खाता है। जिस ढेरी से पक्षी पहले अनाज खाता है उसी के अनुरुप कृषक अपने खेतों की बुहाई करता है। किन्तु नई पीढ़ी इस अनुष्ठान के प्रति आस्था बद्ध नहीं लगती किन्तु पुरानी पीढ़ी में इस का प्रचलन आज भी है।

जातर- आछर देव, कंडेर देवता डोडा के प्रसिद्ध लोक देवता हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई नाग तथा ग्राम देवता हैं। डोडा निवासी जिन का सम्बन्ध ग्रामों से है वे लोक देवी देवताओं के प्रति आस्था बद्ध हैं। भादों मास से लेकर अश्विन मास तक देवताओं को रिझाने तथा उन्हें प्रसन्न करने के लिए यात्राओं का आयोजन होता है जिस में कुड्ड नृत्य के अतिरिक्त गीत संगीत भी होता है। मांस मदिरा का प्रयोग इन अवसरों पर वर्जित नहीं है। ये जातराएँ प्राय: रात्रि के समय आयोजित होती हैं अत: इन्हें 'रत जगा' भी कहा जाता है।

यहाँ तक डोडा के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन का सम्बन्ध है मुहम्मद असदुल्ला वाणी के शब्दों में हम कह सकते हैं:- यहाँ के लोग कुदरती तौर पर बहादुर, गैरत मंद और आज़ाद ख्याल के हैं। मेल जोल भाई चारा, एकता इतफाक और मेहनत इन की रग-रग में है। लोगों में कमज़ोर अकीदे वालों की तादाद ज्यादा है। वैसे खुदा प्रस्त और सूफ़ी लोगों की इज्ज़त करना इनका इमान है। सूफी मत का इन पर अधिक प्रभाव है। हिन्दुओं और मुसलमानों में अपने अपने मज़हवों पर पुख्ता इमान होते हुए भी लोक विश्वासों पर अधिक भरोसा है। ज्यारतों, खानका हों और आस्तानों से वे सम्बन्ध रखते हैं। बजुर्गों की प्रसन्नता को यह मुक्ति का मार्ग समझते हैं।

यहाँ तक मुसलमानों के रस्मों-रिवाज़ का सम्बन्ध है इन पर भी स्थानीय रस्मों का प्रभाव दिखाई देता है परन्तु अधिक प्रभाव इस्लामी रस्मो-रिवाज़ के हैं। शादी-विवाह, दफन, कफन, निकाह तलाक और जिन्दगी से सम्बन्धित विभिन्न समस्याएं एवं अन्य कारोवार अपने-अपने धर्म के अनुसार किये जाते हैं और कहीं-कहीं एक दूसरे के साथ मिलते जुलते हैं।

ज़हालत के कारण और शिक्षा की कमी के कारण कुछ रस्में बुरी तरह जड़े पकड़ गई हैं। जैसे वेटियों की इच्छा जाने बगैर जिससे जी चाहे घर वाले शादी कर देते हैं। कई बार तो उमर का भी लिहाज नहीं रखा जाता। इसी प्रकार यदि पति-पत्नी में अनबन हो जाए तो पति को बल्कि लड़के के माता पिता को भी कहीं-कहीं खास राशि देकर दूसरा व्यक्ति उस लड़की को पहले पति से तलाक दिलवा कर विवाह कर सकता है। यह सिलसिला अब अशिक्षित वर्ग में ही चल रहा है। इसी प्रकार एक और रस्म का भी अब अन्त हो रहा है जिस की पावन्दी में विवाह करने वाले लड़के को लड़की के मायके में रह कर शादी से पहले एक खास समय तक घर का सब काम-काज अवश्य करना पड़ता था।

शादी सम्बन्धी बहुत सी रस्में दोनों सम्प्रदायों की मिलती जुलती भी हैं और कुछ भिन्न भी हैं। सेहरा दोनों सम्प्रदायों के लोग दूल्हा को बांधते थे दुल्हन को डोली में बिठा कर ले जाने की रस्म दोनों सम्प्रदायों में मौजूद है। शादी में दुल्हन को मुँह दिखलाई की रस्म और दुल्हा को न्यौता देने का रिवाज़ आम है। उसी प्रकार जन्म से मृत्यु तक विभिन्न रस्में प्रचलित हैं। उसी प्रकार रहन-सहन, खाना पीना और पहनावे में भी दोनों सम्प्रदायों में समानता और विभिन्नता विद्यमान है। औरतों में यहाँ हिन्दुओं में साड़ी का रिवाज है, वहाँ मुसलमानों में कहीं-कहीं वुर्के का चलन रस्मी तौर पर रह गया है। बूढ़े मर्द पगड़ी, कुर्ता पायजामा पहनते हैं जबकि नई नसल आधुनिक रिवाज की शौकीन है। पुरुषों में अब यहाँ कुरते-सलवार का रिवाज़ चल पड़ा है और महिलाओं में कश्मीरी फिरन का रिवाज ज़ोरो पर है। गहने-बंधों और श्रृंगार का सामान और दूसरे इस्तेमाल की चीज़ों में परिर्वतन आ गया है और जम्मू प्रान्त की डोगरा तहज़ीव का प्रभाव नज़र आता है।

डोडा के लोग जब छोटी-छोटी बस्ती में बसते थे तो इन का पेशा कृषि और मजदूरी था किन्तु अब कस्वा में शिक्षित लोगों की अच्छी खासी संख्या है। इस कारण बहुत से लोग नौकरी करते हैं। यह सिलसिला राजनीति, वकालत, व्यापार डाक्टरी, इन्जीनियरी में भी जारी है। लोग ठेकेदारी आदि पेशों को भी अपनाए हुए हैं। यहाँ तक डोडा के निवासियों की आर्थिक स्थिति का सम्बन्ध है, इस कस्वा में लोग यदि ज्यादा अमीर नहीं हैं तो वह ज्यादा गरीव भी नहीं हैं।

भाषा वोलियाँ और साहित्य- डोडा की मुख्य बोली सिराजी है। सिराजी की परिगणना पश्चिमी पहाड़ी बोलियों के अन्तर्गत की जाती है। इसमें 'औ' को छोड़ कर अन्य सभी दीर्घ स्वर उपलब्ध हैं। सिराजी में झ्,ष्, ढ़ युक्त शब्द नहीं हैं। च, छ ज कई रुपों में च, छ और ज़ में बदल गए हैं। इस में 'र' युक्त व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग मिलता है।

सिराजी के अतिरिक्त भद्रवाही, किश्तवाड़ी, डोगरी, कश्मीरी और उर्दू का प्रयोग भी यहाँ होता है। कश्मीरियों के आने से कश्मीरी-भाषा का प्रयोग बढ़ गया है। और डोडा के अधिकांश लोग कश्मीरी और डोगरी समझ लेते हैं।

डोडा के बुद्धिजीवी सिराजी को साहित्यिक रुप देने में प्रयासरत हैं। सिराजी में कविताओं का सृजन हो रहा है तथा कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं। अभी तक जिन लेखकों ने सिराजी में कलम उठाई है उनमें ठाकुर चढ़त सिंह, बशीर अहमदशाह , हरिचन्द केसरी ठाकुर अमरचन्द तथा गंडा सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार उर्दू में शाह फरीदा वादी, आसफ फरीदी, शौकत फरीदी, फरीद अहमद फरीद शमीम अख्तर तथा मुहम्मद असदुल्ला वाणी के नाम लिए जा सकते हैं। कश्मीरी में मुखताक फरीद साहब, गुलाम रसूल खोड़ा तथा मौलवी गुलाव कादिर का नाम चर्चा में हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक लेखक हैं जो सिराजी, कश्मीरी, उर्दू में लिख रहें हैं।

सिराजी का लाक-साहित्य भी अति समृद्ध हैं किन्तु इसे संकलित करने की आवश्यकता है।

डोडा के दर्शनीयं स्थल- डोडा में कई मस्जिदें, मंदिर और .एक गुरद्वारा भी है। ये सभी भवन स्थापत्य की दृष्टि से चाहे सामान्य हैं किन्तु लोगों की श्रद्धा का केन्द्र हैं।

डोडा में आस्था का जो सर्वप्रिय और सर्वमान्य स्मारक है वह शेख हज़रत शाह फरीद-उ-द्दीन की सादा किन्तु आकर्षक खान काह है। यह खानकाह मुहल्ला आस्तान में है। सूफ़ी संत शाह फरीद-उ-द्दीन ने कुछ दिन

यहाँ विश्राम किया था अतः उन की इसी पावन स्मृति में उनके मुरीदों ने इस का निर्माण किया। शाह साहब का तीसरा निकाह भी नम्बरदार की वेटी से यहीं हुआ, अतः हिन्दू मुसलमान सभी इस खानकाह को आदर की दृष्टि से देखते हैं।

प्रत्येक वृहस्पति वार को यहाँ लोगों की भीड़ होती है। लोग यहाँ मनौती माँगने आते हैं और कामना पूरी होने पर चादर चढ़ाते हैं।

जंगलवाड़ (ठाठरीं)

स्थितिः- यह उपनगर चन्द्रभागा नदी के दायें तट के साथ एक समतल मैदान में बसा है। यह सुरम्य नगर जम्मू से 201 कि.मी. भद्रवाह से 60 कि.मी. और किश्तवाड़ से 29 किलोमीटर दूर है।

नामकरण- जंगल वाड़ दो शब्दों के जोड़ से बना है- जंगल + वाड़। जंगल से अर्थ वन और वाड़ से तात्पर्य खेत या मार्ग है। अतः हम कह सकते हैं कि 'वन्य स्थल' को पहाड़ी में जंगल वाड़ कहते हैं। इसका एक अर्थ वन मार्ग भी हो सकता है। अब यह स्थान ठाठरी का एक मुहल्ला मात्र माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि नदी के वायीं ओर ठाठरी तथा पुल पार दायीं और जंगल वाड़ है।

ठाठरी के नाम करण पर अपने विचार व्यक्त करते हुए जरगर साहव ने लिखा है- 'एक ख्याल यह है कि ठाठरी के स्थान पर प्राचीन काल से शहतीरों को इकट्ठा किया जाता था। पूरी तरह गिनती करने के बाद इन शहतीरों को चिनाव नदी में डालते थे। ठाठरी में लकड़ी के ठाठ ही ठाठ दृष्टिगत होते थे। ठेकेदारों ने इसे पहले ठाठर और बाद में ठाठरी अर्थात लकड़ी के ठाठों की जगह कहना शुरू किया। चुनांचि यही नाम प्रसिद्ध हुआ।'

इतिहास- जंगलवाड़ कभी राणाओं के अधिकार में रहा तो कभी किश्तवाड़ के अधिकार में आया। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह (1856-85 ई.) के शासनकाल में जब अमरसिंह को भद्रवाह की जागीर प्रदान की गई तो यह भद्रवाह का अंग बना। स्थानीय जन श्रुतियो में कहा गया है कि महाराजा प्रतापसिंह का छोटे भाई और भद्रवाह का जागीर दार अमर सिंह जब

एक बार यहाँ आया तो उसने भेला ग्राम की एक नव यौवना को एक मेले में देखा तो वह उस पर मोहित हो गया। उसके सामंतों ने उस लड़की के पिता से सम्पर्क स्थापित किया और उसका विवाह अमर सिंह से करवा दिया। वह अमर सिंह की चाहे उपपत्नी के रुप में रही किन्तु यहाँ के लोग उसे रानी चमेला के नाम से आज भी याद करते हैं। उस द्वारा निर्मित भेला का तालाब और मंदिर आज भी रानी चमेली का मंदिर तथा रानी का तालाव नाम से अभिहित किए जाते हैं। यदि अतीत के इतिहास का अवलोकन करें तो पता चलता है कि ठाठरी तक कभी सुरू के गियाल्पों का राज्य था।

विदेशी पर्यटकों की दृष्टि में जंगलवाड़- फेडरिकडियू और वायान इत्यादि विदेशी पर्यटकों और इतिहासकारों ने इस उपनगर को 'जंगल वाड़' नाम से ही उल्लिखित किया है। उन्होंने इसके अतीत, जीवन शैली तथा भौगोलिक परिवेश पर विशेष चर्चा नहीं की है।

नगर संरचना- जंगल वाड़ पहले एक छोटे से कस्वा के रुप में था और भद्रवाह के अन्तर्गत एक उप तहसील का मुख्यालय था। किन्तु बाद में इसे एक तहसील का रूप दिया गया तो इस का विकास बड़ी तीव्र गति से हुआ। तस्वीरए डोडा के अनुसार इस उपनगर में लगभग अढ़ाई सौ घर और सौ के करीब दुकाने हैं। बाज़ार लगभग आधा किलोमीटर लम्बा है और इसमें छोटी बड़ी मिलाकर 125 के लगभग दुकाने हैं। यह एक लम्बवत नगर है। इसमें कश्मीरी शैली में दुमंजिले मकान भी हैं और पहाड़ी शैली में बने सपाट छत के भवन भी हैं।

जन-जीवन- जंगल वाड़ एक विशुद्ध पहाड़ी उपनगर है। इसमें अधि कांश घर मुसलमानों के हैं अतः इनके रीतिरिवाज और जीवन शैली पर इस्लाम का गहरा प्रभाव है। लोग धार्मिक हैं किन्तु इन में साम्प्रदायिक संकीर्णता का अभाव है। ये एक दूसरे से सहयोग करते हैं और मिल जुल कर सुख दुःख बांटने की इन में भावना है। कुछ घर हिन्दुओं के भी हैं जिन का मुख्य व्यवसाय व्यापार अथवा नौकरी है। हिन्दू और मुसलमान वन सम्बन्ध ो व्यवसाय से जुड़े हैं। लोगों के पास जो थोड़ी बहुत ज़मीन है उसमें धान की खेती करना यह पसंद करते हैं। इनकी वेश भूषा मिश्रित है। मुसलमान लम्बी कमीज़ और पाजामा पसंद करते हैं। हिन्दुओं में कुर्ता- पायजामा और पगड़ी का प्रचलन है। महिलाओं की वेशभूषा परम्परित है किन्तु आभूषणों के प्रति

इन का लगाव है। ये लोग निष्कपटी और उदार हृदय के हैं। सादगी तथा इमानदारी इन में जातीय गुण हैं।

गंदोह

यह जिला डोडा का एक पहाड़ी ग्राम है जो अब एक उपनगर के रुप में विकसित हो रहा है। गंदोह ठाठरी से 29 कि.मी. की दूरी पर वाक्या है। यह भलेष तहसील का अब मुख्यालय है। गंदोह जाने के लिए ठाठरी से बस उपलब्ध है।

गंदोह एक विकासशील ग्राम है। यह नाला काल गेई के तट के साथ एक पहाड़ी दामन में बसा है।

नाला काल गई को पार करने के लिए पुल बना है। जैसे ही पुल पार करते हैं आगे गंदोह की जामअ मस्जिद दृष्टिगत होती है जो स्थापत्य कला की दृष्टि से सामान्य कोटिकी है। मस्जिद के साथ ही एक बंगला है। इस बंगला से थोड़े ऊपर जाने पर गंदोह का बाज़ार आरम्भ होता है। यह बहुत ही छोटा बाज़ार है। इस में प्रत्येक प्रकार की दूकानें हैं यहाँ जीवनोपयोगी बस्तुएँ उपलब्ध हैं। गंदोह में यात्रियों के लिए एक दो होटल भी हैं यहाँ खाना उपलब्ध रहता है।

गंदोह पहाड़ीमाल की मंडी है। घी और राजभाष के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है। गंदोह के राजमाष उतरी-भारत में प्रसिद्ध हैं जिन्हें भद्रवाही राजमाष का नाम दिया गया है।

यहाँ कई सरकारी कार्यालय है जिन में मुख्य तहसीलदार का कार्यालय है। इसके अतिरिक्त पोलीसथाना, हस्पताल, उपविका उप विकास मंडल, खाद्‌य वितरण विभाग, खंड शिक्षा अधिकारी के कार्यालय प्रमुख हैं। गंदोह में शिक्षा का विकास बहुत कम हुआ है किन्तु अब ऐसे प्रयास किए जा रहे हैं कि गाँव के लोग भी शिक्षा ग्रहण करें।

गंदोह की बोली भलेषी है। इस क्षेत्र की स्थानीय संस्कृति को भी भलेषी-संस्कृति का नाम दिया गया है। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि और पशु चारन है। लोग सीधे-सादे और भोले हैं। इन का शारीरिक गठन भद्रवाहियों

से मिलता जुलता है। गद्दी और गुज्जर इस क्षेत्र में वहु संख्या में रहते हैं।

भलेष की जन श्रुतियों में कहा जाता है कि इस क्षेत्र का एक सशक्त नाग राजा था जिस का नाम महल नाग था। उसने अपने नाम पर एक नगर बसाया जिस का नाम महलवाल रखा। इस महल की रोशनी चम्बा में भी दिखाई देती थी।

एक वार दिल्ली सल्तनत का सेनापति गोजर चम्बा में आया। उसने इन महलों का प्रकाश चम्बा में देखा तो उसने भलेष पर आक्रमण कर दिया।

भलेष समुद्र तल से 14 हज़ार फुट ऊँचाई पर था। अतः सेनापति को पहुँचने में कठिनाई तो आई किन्तु उसने भलेष पर आक्रमण कर ही दिया। राजा महल नाग ने गोजर का सामना किया और अपनेतीर से उस की हथेली काट दी। जिस स्थान पर हथेली गिरी उसका नाम हथियाली पड़ा। राजा महल ने दूसरे तीर से गोजर का सिर काटा राजा ने जहाँ गोजर मरा था एक स्मारक स्थापित किया।

राजा के मरने के बाद भलेष के लोगों ने राजा का मंदिर एक स्मारक के रुप में मनोदारवली चिली ग्राम में बनाया जहाँ आज भी उसकी पूजा होती है।

वैसे भलेष में नाग पूजा का प्रचलन है और लोगों में स्थानीय देवी-देवताओं के प्रति भी अमिट श्रद्धा है।

गुलाबगढ़ (पाडर)

स्थितिः- पाडर का यह ऐतिहासिक उपनगर चन्द्रभागा और भोटना नदियों के संगम स्थल से पच्चास मीटर के लगभग ऊँचाई पर 1600 कनाल भूमि में फैले एक मैदान में बसा है। यह मैदान रेतीला है।

गुलाबगढ़ किश्तवाढ़ के उतर में पैंसठ किलोमीटर दूर है। यहाँ से एक मार्ग पांगी को भी जाता है। सड़क का मार्ग अभी निर्माणाधीन है। गुलावगढ़ से पांगी की दूरी 35 कि.मी. है।

नामकरणः- उपलब्ध जानकारी के अनुसार सन् 1650 ई. में लियोंडी के राणा शीतल सिंह ने सबसे पहले यहाँ एक किला बनवाया जिस का नाम उसने शीतल गढ़ रखा। बाद में चम्बा के राजा चतुर सिंह ने पांडर विजित किया तो उसने इस दुर्ग पर अधिकार करने के बाद इसका नाम अपने नाम पर चतुरगढ़ रखा। चतुर सिंह ने यहाँ एक वस्ती विकसित की जिसे चतुरगढ़ के नाम से अभिहित किया जाता रहा। सन् 1836 ई. में गुलाब सिंह के सेनापति ने चतुरगढ़ का दुर्ग जीता तो इस का नया नाम गुलाबगढ़ रखा। आज इसे गुलाबगढ़ के नाम से पुकारा जाता है।

राजनैतिक महत्व- गुलावगढ़ चन्द्र भागा नदी के पूर्व में स्थित है। इससे केवल तीन किलोमीटर दूर चन्द्रभागा के पार अठोली ग्राम है जो अब गुलावगढ़ का ही एक़ भाग है। पाडर के इतिहास का अनुशीलन करें तो पता चलता है कि गुलावगढ़ सहित पाडर का अधिकांश क्षेत्र कभी पद्म तो कभी किश्तवाड़ के अधीन रहा। स्थानीय राणा भी किसी न किसी के अधीन रहे। सन 1836 में गुलाव गढ़ रत्नु पालसर के अधिकार में था। वह चम्बा के राजा की ओर से नियुक्त था। बजीर जोरावर सिंह ने पालसरको पराजित करके इस पर अधिकार किया। महाराजा गुलाबसिंह के शासनकाल से लेकर महाराजा हरिसिंह के शासन काल तक गुलावगढ़ का विकास सामान्य रुप से हुआ। किन्तु 1990 के बाद जब गुलावगढ़ में सड़क पहुँच गई तो यह स्थान एक गाँव से एक छोटे कस्वा के रुप में विकसित हुआ।

उपनगर की संरचना- गुलावगढ़ एक खुले और चौड़े मैदान में आवाद है। इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसके ऊपरी भाग में स्थानीय ठाकुर और राजपूतों की वस्ती है। इसी भाग में एक छोटा सा बाज़ार है जिस में लगभग पच्चास दुकानें हैं। गुलाबगढ़ का बस अड्डा, शक्ति मंदिर, स्थानीय नाग देवताओं के काण्ठ निर्मित मंदिर इसी भाग में है। निचले भाग में बौद्ध वस्ती है जिस में सौ के लगभग घर है। इसी भाग में बौद्ध गुम्पा और बौद्ध-शिक्षा संस्थान है जो बौद्ध संस्कृति का केन्द्र है। शीतला माता का काष्ठ मंदिर भी इसी भाग में है। यह मंदिर प्राचीन है।

जन जीवन- गुलाब गढ़ पाडरी संस्कृति का केन्द्र है। पाडरी संस्कृति बौद्ध और पहाड़ी संस्कृति का मिश्रित रुप है। यहाँ तिव्वती शैली में बने भवन भी हैं और पहाड़ी शैली के मकान भी हैं। लोग मंदिरों में भी जाते हैं और

गुम्पाओं में भी जाते हैं। 'खड़जात' पाडर का लोकप्रिय नृत्य है। पाडर का लोकसंगीत बहुत ही मधुर है। गुलाबगढ़ के हिन्दू पर्वो में मिठियांग, विशु, दक्खनियाज, नात्रोई, कलचोती, जागरु, चऊ, चरज़िक तथा जागरा हैं और बौद्ध पर्वों में नयुने, जागरु, बुद्ध पूर्णिमा, उल्लेखनीय हैं। गुलावगढ़ का मेला पूरे क्षेत्र में प्रसिद्ध है। लोसर बड़े उत्साह से मनाया जाता है। लोगों का व्यवसाय पशु-पालन, कृषि तथा घरेलु उद्योग हैं। लोग अन्ध-विश्वासी तथा परम्परा वादी है। सत्यवादिता निष्कपटता तथा उदारता इन के जातीय गुण हैं। ठाकुर कमीज पायजामा और पगड़ी पहनते हैं और बौद्ध परम्परित बेश-भूषा पंसद करते हैं। आधुनिकता का रंग वहाँ भी है। पाडरी यहाँ की मुख्य बोली है। नौरत्न छटियान गुलाबगढ़ के प्रख्यात कवि, रंगकर्मी तथा गायक हैं।

बनसाल (बनहाल)

स्थितिः- यह उपनगर जम्मू के उतर में पीरपंचाल पर्वत के अंचल में एक छोटे से समतल मैदान में बसा है। जम्मू से इस की दूरी 187 कि. मी. है। समुद्रतल से इस की ऊँचाई 5580 फुट है। विश्वमान चित्र में इस की स्थिति 33.27 अक्षांश और 75.16 रेखांश के बीच में है।

नामकरणः- राजतंरगिणी की आठवीं तरंग में बनसाल का उल्लेख हुआ है। लगता है बनसाल का ही विकसित रुप वनहाल है। किन्तु लोक परम्परा के अनुसार यह कस्बा बारह हाल (गाँवों) में समायोजित है जिन के नाम हैं:- ज़ाचाहाल, जिनाहाल, हनीज़ा हाल, करालची, परहिन्दरहाल, चमहाल, तलाहाल, वरनेहाल, अखंड हाल, मितलहाल, ताजनीहाल तथा डग हाल। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार यह उपनगर वारह नालों के कारण वनहाल कहलाता है अर्थात् बारह नालों का क्षेत्र वनिहाल। ये बारह नाले हैं:- दनाड़ नाला, नोगाम नाला, ज़बनखार कोट नाला, लांवरनाला, जरेल नाला, अशर कोट नाला, करोधे जंजली नाला, डैलगाम बनकोट नाला, अंबकोट नाला, चंबलु-आस नाला, नील पर हिन्दर नाला, महुमंगत नाला, खरोश तरगाम नाला, सुबड़ रामसू नाला, मगरकोट- पोगल नालानालों के नाम पर डुग्गर में अंचलों के नाम रखने की परम्परा है, यथा वाईस नालों का क्षेत्र-विम्हाग।

तारीख तस्वीर डोडा के अनुसार- इस का प्राचीन नाम देबगोल था । यहाँ देव का आवासीय मकान था। गोल पहाड़ी बोली में घने जंगल को कहते

हैं। इस कारण इस स्थान का नाम देवगोल हो गया।

किन्तु देवगोल नाम कैसे मिटा और वनिहाल क्यों और कैसे प्रचलन में आया इस का यथार्थ विवरण इस पुस्तक में नहीं है। राज तरंगिणी का अनुशीलन करने से लगता है कि इस स्थान का नाम वनसाल था।

राजनैतिक पृष्ठ भूमिः- राज तरंगिणी का अनुशीलन करने से लगता है कि यह भूखंड खसों का घर रहा है। खसों के अधिपति का नाम टिक्क था और 'वाणशाल' नामक दुर्ग का वह अधिपति था। वनिहाल में यह दुर्ग कहाँ था उस की निशान देही अभी नहीं हो पाई है। टिक्क के दामाद का नाम प्रभु भागिक था जो श्रीनगर से भाग कर यहाँ आकर छुपा था। किट्ट के सैनिकों को राजतरंगिणी में 'गण' कहा गया है। राजतरंगिणी का अध्ययन करने से लगता है कि टिक्क का वध कश्मीर के सैनिकों ने इसी ग्राम में किया था। कश्मीर के इतिहास से पता चलता है कि वनिहाल का क्षेत्र बड़े लम्बे समय तक कश्मीर के शासकों के अधीन रहा और कश्मीरी सेना ने अनेक बार खसों के विद्रोह का दमन किया।

16वीं सदी के बाद जब चक्क कमज़ोर पड़ गए तो वनिहाल का क्षेत्र किश्तवाड़ के अधिकार में आ गया और यह तब तक उनके अधिकार में रहा जब तक किश्तवाड़ एक स्वायत राज्य रहा। सन् 1821 के बाद किश्तवाड सहित यह जम्मू का एक भाग बन गया। मुगल कालीन इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि मुँगल सम्राट अकबर ने बनिहाल को एक अलग परगना बनाया था और इसे कश्मीर के अधीन रखा था।

विदेशी पर्यटकों की दृष्टि मेंः-

वीट्स ने 'ए गज़ट आफ कश्मीर' में लिखा है यहः- एक आवादी वाला और कृषिप्रधान जिला है जो पंनसाल पहाड़ी सिलसिला के उतर में नौशहरा और किश्तवाड़ के मध्य में अवस्थित है। यह महु और बनिहाल की नदियों पर आधारित है जो बड़े-बडे पहाड़ों से घिरे हुए हैं। यहाँ के वाशिन्दों का एक बड़ा हिस्सा मुसलमान है जो पोशाक, शक्ल व सूरत और जवान के लिहाज़ से कश्मीरियों से मिलते जुलते हैं। वनिहाल का नाला पनसाल (पीर पंचाल) ढलानों से वैरी नाग के उतर-पश्चिम से निकलता है और उतर की

ओर बहते हुए नाचालाना के स्थान पर महु के साथ मिलकर विचलरी नदी को वजूद में लाता है जो चन्द्रभागा की सहायक नदी है।

जम्मू और कश्मीर का मार्ग इसी नाले के साथ-साथ जाता है। इस गाँव को 'अदल कोट ही का एक भाग माना जा सकता है जो यहाँ से चन्द ही गज़ की दूरी पर उतर में स्थित है। वारहदरी सुर्ख ईंटों की बनी हुई इमारत है जो इस गाँव के उतरी किनारे पर एक ऊँची जगह पर है। इस में 50 x 20 फुट का एक बड़ा कमरा है जो भीतर से तीन छोटे-छोटे कमरों से जुड़ा हुआ है। लोग लगभग सभी मुसलमान हैं। आवश्यक वस्तुएँ तथा मज़दूर उपलब्ध हैं।''

उपनगर की संरचना:- यह कस्बा 4.57 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार इस में कुल घरों की संख्या 325 थी जो अब बढ़ कर अनुमानत: छह सौ से ऊपर है। उपनगर के मध्य में राष्ट्रीय राज मार्ग है जिस के दोनों ओर बाज़ार है जो दूकानों से सजा हुआ है। इस में कुछ गलियाँ भी हैं । सन् 1981 में इस कस्बा की कुल जनसंख्या 1656 थी सन 2001 में यह बढ़कर 2,795 थी। यहाँ एक भव्य विस्तृत तथा दर्शनीय डाक बंगला है जो कई कक्षों पर आधारित है। पर्यटकों की सुविध ा के लिए अतिथि गृह और होटल भी उपलब्ध हैं। इस उपनगर को सुविध ा के लिए पाँच मुहल्लों में बांटा गया है जिन के नाम हैं:- देव गोल, खारपुरा, गंड, होलना और रल्लू।

सरकारी कार्यालय- बनिहाल को अब एक तहसील का दर्जा प्राप्त है। अत: तहसील का मुख्यालय बनिहाल में ही है। इसके अतिरिक्त यहाँ, सब जज, थाना, कोषालय, तहसील समाज कल्याण कार्यालय, तहसील वितरण अधिकारी, खंड चिकित्सा-अधिकारी, उच्च विद्यालय तथा कई अन्य छोटे-बड़े कार्यालय स्थापित हैं जो जनसेवा में कार्यरत हैं।

पर्यटन स्थल:- बनिहाल का प्राकृतिक परिदृश्य चिताकर्षक तथा अति रमणीक है। ग्रीष्म ऋतु में यहाँ का मौसम अति सुहावना होता है। पीरपंचाल पर्वत के लुभावने दृश्य, चरागाहें, प्राकृतिक निर्झर, कलरव मचाते नाले पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण हैं। पर्वतारोहियों के लिए भी बनिहाल एक उपयोगी स्थल है। यहाँ से पैदल वैरी नाग तक की यात्रा की जा सकती

है। सर्दियों में पर्यटक यहाँ हिमपात का आनन्द ले सकते हैं।

जनजीवन- खस संस्कृति का केन्द्र रहा बनिहाल और आस-पास का क्षेत्र अब कश्मीरी पहाड़ी संस्कृति का संगम है। । लोगों के घर पहाड़ी और कश्मीरी शैली में हैं। इन की जीवन शैली भी मिश्रित है। इन का खान पान और वेश-भूषा भी मिर्भित है। बनिहाल में जो हिन्दु परिवार हैं उनके घरों में डोगरा, पोगली और सिराजी समाज की झलक देखी जा सकती है। लोक देवताओं, जातराओं , हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति इन की श्रद्धा और आस्थापूवत है। विवाह शादियों, पर्व त्योहारों के अवसर पर ये लोग भी उतने ही उत्साहित लगते हैं जितने जम्मू के लोग लगते हैं। इन में सम्प्रदायिक सदभावना सराहनीय है। हिन्दुओं और मुसलमानों में जो भातृ-भाव है इसे देखकर लगता है कि इन लोगें ने अपनी परम्परागत विशेषताओं को सम्भाला हुआ है।

भाषा और साहित्य- बनिहाल की मुख्य भाषा कश्मीरी है किन्तु उर्दू, पहाड़ी और डोगरी का भी यहाँ प्रचलन है। कुछ लोग पोगली भी बोलते हैं। यहाँ पर्यटकों की बहुत बड़ी संख्या रुकती है, अतः बाज़ार में सरल हिन्दी का प्रचलन भी है। बनिहाल के लेखकों की एक लम्बी सूची है। साहित्यकारों में फारसी के शायर मौलाना अहमद बनिहाली और अब्दल-रहीम बनिहाली की पुस्तक 'गुलवदन' एक उच्चकोटि की रचना है। इसके शेयर फारसी में हैं और उन का कश्मीरी अनुवाद भी शायरी में है। उर्दू में मन्सूर बनिहाली, अब्दुल रहीम बनिहाली, मरगूव वनिहाली, के नाम उल्लेखनीय हैं। बनिहाल में ऐसे लेखकों की संख्या भी कम नहीं है जो कश्मीरी में लिखते है। कश्मीरी लेखकों में मरगूव बनिहाली का नाम बड़े आदर से लिया जा सकता है। इन के अतिरिक्त पीर मोहेलुद्दीन मही तथा अब्दुलरहीम अम्मा बनिहाली ने भी कश्मीरी साहित्य में अपना नाम उज्जवल किया है। अब वनिहाल के कई युवा कवि डोगरी में भी लिख रहे हैं।

साहित्य सृजन में बनिहाल के लेखकों का योगदान सराहनीय है।

रामवन (नासवन)

स्थिति- यह उपनगर चन्द्रभागा नदी के दोनों तटों के किनारों में

परिव्याप्त है। जम्मू से इसकी दूरी 148 कि.मी. श्रीनगर से 146 कि.मी. और डोडा से 82 कि.मी. है। यह कस्बा समुद्रतल से 3535 फुट की ऊँचाई पर बसा है। विश्व मान चित्र में इस की स्थिति भूमध्य रेखा से 33.14 अंश उतर में और प्रधान मध्याह्न रेखा से 75.17 अंश के मध्य में है। यह एक पर्वतीय नगर है।

नामकरण- जम्मू-कश्मीर के राजस्व विभाग की मसल हकीकत के अनुसार इस का आदि नाम नासवन था। महाराजा गुलाव सिंह को यह नाम पसंद नहीं था, अत: उन्होंने इस का नाम बदला और रामवन रखा।

एक मत यह भी है कि राजतरंगिणी में जिस 'विषलाटा' राज्य का उल्लेख हुआ है उस का मुख्य नगर यही था।

राजनैतिक परिप्रेक्ष्य- राजनैतिक दृष्टि से रामवन सिराज क्षेत्र में है। जनश्रुतियों के अध्ययन से लगता है कि यह क्षेत्र राणाओं के अधिकार में रहा। सम्भव है राजतरंगिणी में उल्लिखित देंग पाल ठाकुर इसी क्षेत्र का राणा रहा हो जिस की वेटी का विवाह कश्मीर के निर्वासित राजकुमार भिक्षाचारी से हुआ था।

मुगलकाल से बहुत पहले रामवन किश्तवाड़ राज्य का अंग बन चुका था और सन 1821 में जब किश्तवाड़ का विलय जम्मू में हुआ तो यह नगर भी खालसा राज्य के अधीन जम्मू का भाग बना और सन् 1846 में अमृतसर संधि के अन्तर्गत इसे जम्मू-कश्मीर राज्य में मिला लिया गया।

रामबन को विशेष महत्व तब मिला जब जम्मू-श्रीनगर सड़क का निर्माण हुआ। सड़क पर स्थित होने के कारण यहाँ चहल-पहल बढ़ी और यह रौनक का केन्द्र बना।

विदेशी पर्यटकों की दृष्टि में रामवन-

कैप्टन वीट्स ने रामवन को 'राम बंड' नाम से अभिहित करते हुए इसके विषय में लिखा है- रामबंड इसी नाम के ज़िला का एक गाँव है जो बनिहाल के दक्षिण में चन्द्रभागा नदी के दायीं ओर आवाद है। यह

जम्मू-कश्मीर राष्ट्रीय राजमार्ग पर बटोत और रामसू के मध्य एक मंजिल हैं और वटोत से लगभग सात मील पूर्व में और रामसू से अनुमानतः बारह मील दक्षिण उतर में है। यह गाँव और इस की जमीनें और बाग नदी के किनारे से थोड़ी ऊँचाई पर हैं। निवासी अधिकतर हिन्दू हैं। मुसलमानों के केवल एक दो घर हैं। गाँव से नीचे नदी के किनारे पर हिन्दुओं का एक छोटा मंदिर है। बारहदरी ईटों की बनी हुई है। एक बड़ी दुमंजली इमारत इस गाँव के पश्चिम की ओर है जिसके निकट ठहरने के लिए स्थान और छॉव भी है। आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध हैं। जल वावली या नदी से लाया जा सकता है जो हिम की भांति ठंडा है। लकड़ी का बना पुल जिससे चन्द्रभागा को पार किया जाता है, इस गाँव से लगभग तीन मील पश्चिम में है जो एक कोने से दूसरे कोने तक लगभग 190 फुट लम्बा है। रामवन और डोडा के मध्य दो सड़के हैं। एक ऊपर वाली दूसरी निचली। ऊपर वाली सड़क यदि लम्बी है किन्तु बताया जाता है कि वह सरल है। यहाँ से बरावरी दर्रा के उतर में स्थित बोकरान गाँव को भी मार्ग जाता है जो लगभग सोलह कोस दूर है और इसे तीन मंजिलों में बांटा गया है (एगज़ट आफ कश्मीर)

नगर की संरचना- रामवन 4.53 वर्ग किलोमीटर में फैला एक आकर्षक उपनगर है। सन् 1981 में यहाँ 494 घर थे और आवादी 2189 थी? किन्तु अब इस में बहुत बढ़ोतरी हुई है। घरों की संख्या बढ़ कर एक हज़ार से ऊपर है और जनसंख्या सात हज़ार के लगभग है। रामवन दो भागों में विभाजित है। चन्द्रभागा नदी के पार दक्षिणी तट के साथ जो बस्ती है उसे मैत्रेयाँ कहते हैं। यहाँ एक छोटा सा बाज़ार है जिस में पच्चास के लगभग दूकानें और डेढ़ सौ के करीब घर हैं। यहाँ यात्रियों की सुविधा के लिए कई भोजनालय, जलपान गृह तथा विश्रामालय हैं। मैत्रेयां समभूमि में बसा है और नदी के तट के साथ है अतः पहले बाढ़ का पानी नगर में आ जाता था किन्तु अब इसे रोकने की व्यवस्था कर ली गई है।

रामवन का दूसरा भाग चन्द्र भागा नदी के दायी ओर उतर में है। यहाँ आवादी घनी है। रामवन का मुख्य और प्राचीन बाज़ार इस भाग में है। रामवन का यह भाग ढलान में है अतः बाज़ार तथा घर सीढ़ी नुमां हैं। नई सड़क बनने से नये पुल से कुछ आगे से लेकर पुराने पुल से कुछ ऊपर एक नया बाज़ार बना है जिस में यात्रियों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए सभी सुविध एँ उपलब्ध कराई गई हैं। रामवन का बाज़ार और गलियाँ पक्की हैं और यह

एक स्वच्छ और रमणीक उपनगर लगता है।

वर्तमान रामवन उन्नीस मुहल्लों में विभाजित हैं जिन के नाम हैं- शैकतीगल मुहल्ला, मुहल्ला ज़रगरा, उषाई मुहल्ला, कहुबाग मुहल्ला, पटियारी मुहल्ला, निचला पटियारी मुहल्ला, बावली वाज़ार मुहल्ला, जामा मस्जिद मुहल्ला, रघुनाथ मंदिर मुहल्ला, मलवरी बाग मुहल्ला, सेहक-तीला देवी मुहल्ला, जियालाल मुहल्ला, मलवरी बाग मुहल्ला, डंगदारमोड़ मुहल्ला, बागवान मुहल्ला, शैवी मैत्रा मुहल्ला, गोविन्दपुरा मुहल्ला तथा मुहल्ला बख्शी नगर। समान मुहल्ला, सेटक तीला देवी मुहल्ला,तथा जियालाल मुहल्ला आदि

सरकारी कार्यालय- रामवन आज़ादी के बाद भी एक पिछड़ा तथा अविकसित कस्बा माना जाता था। किन्तु बाद में राज़नौतिक कारणों से इसे जो महत्व मिला उस कारण आज यहाँ अतिरिक्त जिलायुक्त, अतिरिक्त जिला तथा सेसन जज, अधीक्षक पुलीस विभाग, तहसीलदार, सब जज, एस.डी.पी, सड़क तथा भवन निर्माण विभाग, कोषालय, खंड चिकित्सा- अधिकारी, वन विभाग, जम्मू-कश्मीर बैंक, उप मंडल विकास अधिकारी, तहसील खाद्य वितरण अधिकारी, आदि के कार्यालयों के अतिरिक्त कई सरकारी शिक्षा केन्द्र भी हैं। जिन में लड़कों तथा लड़कियों की समुचित शिक्षा की व्यवस्था है। कई नये कार्यालय जो ज़मीन, बैंक और वन विकास से सम्बन्धित हैं वे भी यहाँ सुचारु रूप से काम कर रहे हैं। रामवन का जितना विकास स्वतन्त्रोपरान्त हुआ है उससे पहले कभी नहीं हुआ था। रामवन अब प्रगति के पथ पर तीव्र गति से अग्रसर है। इसे अब नये रामबन जिले का मुख्यालय बनाया जा रहा है।

जन-जीवन रामवन विशुद्ध रुप से एक डोगरा नगर है किन्तु इसके आसपास का वातावरण सिराजी है। लोगों की वेश-भूषा, खानपान, रहन सहन, रीति रिवाज सभी डोगरों जैसे हैं फिर भी सिराजी संस्कृति का थोड़ा-बहुत प्रभाव रामवन के जन जीवन में देखा जा सकता है। विवाह, जन्म, मृत्यु के संस्कार जम्मू की भाँति ही सम्पन्न होते हैं और इनके सम्बन्ध भी मुख्य रुप से डोगरों से हैं किन्तु किन्ही परिवारों में सिराजी परम्पराओं का पालन भी होता है। राजा शंख पाल इस क्षेत्र का मुख्य लोकदेवता है और इसके सम्मान में 'जातरा' उत्सवों का आयोजन भी होता है। 'शंखपाल' को नाग देवता माना जाता है अतः नाग परम्पराएँ जन-जीवन में आज भी जीवित हैं। जातराओं में

नृत्य का आयोजन उसी प्रकार होता है जैस अन्य पहाड़ी स्थानों में होता है।

लोगों की वेश भूषा डोगरा और पहाड़ी दोनों हैं। मूल निवासी लम्बा कुर्ता पायजामा, पट्टू का कोट और पगड़ी पहनना पसंद करते हैं किन्तु नई पीढ़ी नये रंग में रंगी है। युवा और युवतियाँ नए फैशन में दृष्टिगत होते हैं किन्तु इसे अब बुरा नहीं माना जाता। पहले लोगों के मिट्टी के बने कच्चे मकान होते थे जिन की छते समतल होती थी किन्तु अब नई शैली में भवन बन रहे हैं। इन भवनों में कुछेक कश्मीरी शैली में भी हैं। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि, व्यापार और नौकरी है। रामवन पहाड़ी वस्तुओं की जब से मंडी बना है इस का व्यापार बढ़ा है। नगर में धनी और निर्धन दोनों प्रकार के लोग हैं। आर्थिक दृष्टि से ये सामान्य कोटि में आते हैं।

नगर में एक रघुनाथ मंदिर है और इसके परिसर में पौराणिक देवी-देवताओं के लघु मंदिर भी हैं। मुसलमान भी इस नगर में अब एक अच्छी संख्या में आ बसे हैं, अतः उनकी भी मस्जिदें हैं। रामवन में शाह फरीद-उ-द्दीन की जो खानकाह है वह स्थानीय और बाहर के पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण है।

डोगरी, सिराजी, उर्दू, हिन्दी रामवन की मुख्य भाषा और बोलियाँ हैं। बाज़ार तथा घरों की भाषा डोगरी है।

बटोत

स्थितिः- डुग्गर का यह स्वास्थ्य बर्द्धक उपनगर जम्मू के पूर्वोतर में जम्मू से 201 कि.मी. श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व में 171 कि.मी. डोडा से 53 कि.मी. और रामवन से 29 कि.मी. दूर है। यह 33.1 रेखाश और 75.15 अक्षांश के मध्य में स्थित है। समुन्द्र तल से इस की ऊँचाई 5200 फुट है।

नाम करणः- वीट्स के अनुसार इस स्थान का पुराना नाम 'बेगम चन्द' था। यह क्षेत्र स्थानीय राणा वटु के अधिकार में जब आया तो उसने अपने आवास के लिए यहाँ अपना भवन बनाया। राजा बटु जवाल वंश से था। उसके बाद उसके वंश के भी कुछ लोग यहाँ आकर बस गए। इससे इस स्थान का नाम राणा वटु के नाम पर 'वटोत' प्रचलन में आया। किन्तु यदि

शब्दार्थ की दृष्टि से देखें तो लगता है कि यह नाम वट + ओट की संधि से बना है जिस का अर्थ है- वट की परछाईया या छाया। यह स्थल घने वृक्षों से आच्छादित है जिन की छाया से यह स्थान शीतल रहता है। अतः हमारे मत से इस स्थान का नाम करण वृक्षों की घनी छाया के कारण पड़ा है। वैसे भी वटु से वटोत शब्द भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है।

ऐतिहासक महत्व- वटोत का इतिहास स्पष्ट रुप से लिखित नहीं है। किश्तवाड़ के इतिहास लेखकों के मतानुसार बटोत, रामवन तथा वनिहाल सहित सारा क्षेत्र किश्तवाड़ राज्य का अंग रहा है। किन्तु चनैनी के विद्वानों के अनुसार वटोत हिमता राज्य का अंग था। कुछ भी हो इतना स्पष्ट है कि यह नगर किसी राज्य की राजधानी नहीं था। स्थानीय वटु जवाल राणा का सम्भव है यहाँ भवन रहा होगा। किन्तु इस स्थान को विशेष महत्व तब मिला जब जम्मू कश्मीर राष्ट्रीय मार्ग इस स्थान से गुजरा। महाराजा प्रतापसिंह की रानी चाड़की को यह स्थान बहुत प्रिय था। डोगरी लेखक धर्मचन्द प्रशांत के अनुसार रानी ने इस उपनगर में एक शिवमंदिर और एक सरोवर का निर्माण करवा कर इस की शोभा को बढ़ाया। इस नगर को सर्वाधिक ख्याति तब मिली जब राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी अगस्त 1947 मे श्रीनगर से लौटते हुए चनैनी के स्वतन्त्रता सेनानियों से यहाँ मिले। यह उपनगर कई राजनेताओंकी विश्रामस्थली भी बना जिनमें पूर्व सांसद मोती राम बैगड़ा का भी एक नाम है।

नगर की संरचनाः- वटोत उपनगर 6.58 वर्ग किलोमीटर में फैला है। सन् 1981 में यहाँ 523 घर थे जब कि अब इन की संख्या बढ़ कर लगभग एक हज़ार के करीव है। सन् 1981 में इस की जनसंख्या 2684 थी किन्तु 2001 में 3794 थी जिस में 2117 पुरूष और 1682 महिलाएँ थी।बटोत का बाज़ार राष्ट्रीय मार्ग के दोनों ओर स्थित है। यह लगभग एक किलोमीटर लम्बा है। अब डोडा सड़क के साथ भी बाज़ार उभर रहा है। सड़क के पश्चिम में घनी आवादी है। इसका ऊपरी भाग सीढ़ी नुमा है। इस भाग में छोटी-छोटी कई गलियाँ हैं जिनके दोनों ओर पत्थर, लकड़ी, मिट्टी और ईट के बने मकान हैं। इनमें कुछ मकान पहाड़ी शैली में हैं। अधिकांश मकान कश्मीरी शैली में हैं किन्तु अधिकांश मकानों की छतों पर लोहे की चादरें आवेष्टित हैं। जल की समुचित व्यवस्था है। कस्बे के ऊपरी भाग में कई कोठियाँ हैं जिससे यह उपनगर शोभा शाली लगता है।

महौर

जिला उधमपुर के अन्तर्गत चन्द्रभागा नदी के पार अरनास से 32 कि.मी. की दूरी पर एक पहाड़ी पर बसा महौर उपनगर तहसील महौर का मुख्यालय है। अब यह सड़क से जुड़ा है और यहाँ आने और जाने के लिए वाहन सुविधा उपलब्ध है।

महौर के नाम करण के विषय में दुविधा है। यदि यह मान लिया जाए कि यह महा + और के संयोजन से बना है तो इसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। शब्दार्थ की दृष्टि से हम इतना ही कह सकते हैं कि यह बड़ा कठिन क्षेत्र है।

महौर का इतिहास भी हमें ज्ञात नहीं है। यह समझा जाता है कि यह कभी वर्तुल का तो कभी राजनगरी के अधिकार क्षेत्र में रहा होगा। गुलाबसिंह जब रियासी का जागीरदार बना तो उसने मानकु द्रोड़ा को जो भरथल से था इस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया किन्तु वह यहाँ सफल नहीं रहा और थोरुपट्टियाँ में स्थानीय ठाकुरों से लड़ता हुआ मारा गया। बाद में गुलाब सिंह ने इस क्षेत्र को निमंत्रण में रखने के लिए कड़े पग उठाये और कई स्थानीय खस सरदा़रों को अपने पक्ष में किया। यह क्षेत्र लम्बे समय तक तहसील रियासी का एक हिस्सा रहा किन्तु आज़ादी के बहुत बाद इसे तहसील का मुख्यालय बनाया गया जिस कारण इसे विशेष महत्व मिला।

तहसील बनने के बाद महौर में कई सरकारी कार्यालय खुले और स्कूल का दर्जा भी बढ़ा जिस कारण इस पहाड़ी ग्राम का विकास बड़ी तीव्र गति से हुआ। इस गाँव में तहसील बनने से पूर्व यहाँ पहले केवल पन्द्रह-बीस दुकानें थी अब इन की संख्या बढ़ गई है और यह अब एक छोटा पहाड़ी उपनगर दिखने लगा है।

महौर में वर्फ पड़ती है, अतः यह ठंडा इलाका है। यहाँ की जीवन शैली पर कश्मीरी प्रभाव भी पड़ने लगा है। जो नये मकान बन रहे हैं उनके छत ढलवा है और आवासीय सुविधा की दृष्टि से ये पूर्ण हैं।

जन जीवनः- महौर में हिन्दू और मुसलमान दोनों बसते हैं। हिन्दुओं

में स्थानीय ठाकुर अधिक संख्या में हैं। इनकी भी कई शाखाएँ हैं, यथा- बजीर मत, पलोर, ठठुमत, सलमत, राय, गुनसीमत और गद्दी।

'राय' महौर के पुराने शासक हैं। जिन ठाकुर जातियों के नाम के साथ मत है वे खस भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त छजरु में टांडी हैं। इन लोगों के स्थानीय देवी देवता हैं जिन में मद्धर-देवी को यह बहुत पूजते हैं 'जोगन' इन लोगों के लिए एक 'भय' की देवी है। इनके अनाज और पशुओं के भी अलग-अलग देवता हैं। नारसिंह भी लोकदेवताओं में परिगणित है। कैंठी में भीमदेवता तथा ब्रेमू में बैलूयाम देवता के स्थान हैं। महौर में राजपूतों की एक अलग शाखा भी है जिसे 'त्यार' कहते हैं। कई इन्हें अछूत मानते हैं।

महौर के हिन्दुओं में केवल तीन ही मुख्य संस्कार हैं- जन्म, विवाह और मृत्यु विवाह कुछ ले देकर होता है किन्तु अब प्रथाएँ बदल रही हैं। इन का मुख्य व्यवसाय पशु पालन और ज़मीदारी है। पहनावा ऊनी है। यहाँ के गद्दियों में एक विशेष जाति है जिसे 'ननचोग' कहते हैं।

मुसलमानों में अधिक गुज्जर और बकरवाल हैं। कश्मीरियों की संख्या भी पर्याप्त है। आर्थिक दृष्टि से ये लोग निर्धन हैं। इन का शोषण युगों - युगों से होता रहा है। गुज्जरों में किल्ले और जंगल स्थानीय हैं।

स्थापत्य और पुरातत्व की दृष्टि से सलधार का स्थान महत्व पूर्ण है। वहाँ पत्थर पर उकेरी मानव-मूर्तियाँ हैं जो घोड़ों पर सवार हैं। इनके सिरों पर गद्दी शैली की टोपियाँ हैं। महौर क्षेत्र में कई ऐसी बावलियाँ हैं जिन में आदमकद मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं।

धर्मस्थलों की दृष्टि से महौर में एक मस्जिद और एक नव निर्मित मंदिर है। लोगों की वृति सादा और सरल है तथा इन की धार्मिक आस्थाओं में कोई आडम्बर नहीं है। महौर में भी किंचन देवता के मंदिर में जातर और कुड्ड नाच होता है। यह पहाड़ी क्षेत्र जो पहले शांत था अब कई कारणों से अशांत है।

गूल

डुग्गर का यह पहाड़ी उपनगर जिला उधमपुर के अन्तर्गत तहसील

महौर की उपतहसील का मुख्यालय है। यह सड़क से रामबन और महौर से जुड़ा हुआ है। रामवन से इसकी दूरी 42 कि.मी. है।

गूल शताब्दियों से एक ऐतिहासिक स्थान है। समझा जाता है कि यह वर्तुल देश की राजधानी था या उस राज्य का प्रमुख नगर था। वर्तुल का उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है। कश्मीर में जब राजा सुस्सल राज करता है तब बर्तुल का राजा सहजपाल था। उसकी लड़की जज्जला का विवाह सुस्सल से हुआ था। मुगल काल में जब सूफी संत फरीद-उ-द्दीन घूमते फिरते यहाँ आए तो वर्तुल के राजा लक्ष्मण राय ने अपनी वेटी का न केवल उन से विवाह किया अपितु इस्लाम धर्म में भी दीक्षा ली जिस कारण धीरे-धीरे गूल का क्षेत्र इस्लाम के दायरे में आ गया। किश्तवाढ़ के इतिहास से पता चलता है कि वर्तुल के राजा 16वीं सदी से किश्तवाड़ के अधीन रहे। महाराजा रंजीत देव और महाराजा गुलावसिंह के सन्दर्भ में भी इन राजाओं का उल्लेख 'राय' उपाधि से हुआ है। वर्तुल को बाद में 'डींग-वट्टल' के नाम से अभिहित किया गया। कई विद्वान डिंग वट्टल का मुख्यनगर संगलदान मानते हैं और कई छछुआ को तो कई ठठारका को मानते हैं। कुछ भी हो डिंग वट्टल का क्षेत्र यही था , इसमें शोध की आवश्यकता है।

गूल अब एक छोटा सा उपनगर है जिसमें एक बाजार है। बाज़ार में कई छोटी-बड़ी दुकाने हैं, यहाँ वस्तुएँ उपलब्ध हैं। यहाँ कई सरकारी कार्यालय हैं जिस कारण यह स्थान विकास की ओर बढ़ रहा है। यहाँ अधिक आवादी मुसलमानों की है जिन में कश्मीरी भी हैं। सन 2001 में गूल पंचायत में घरों की संख्या 1116 थी और आबादी 6716 थी जिस में पुरूष और महिलाएँ 3221 थी।

गूल में दर्शनीय स्थान घोड़ा गली है। यह बाज़ार के निकट ही है। यहाँ घोड़ों पर सवार सामंतों की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं जो स्थानीय कलाकारों की कृतियाँ लगती है।

गूल के निकट संगलदान में गर्म-पानी के चश्में हैं यहाँ सैकड़ों की संख्या में जोड़ों की दर्द से ग्रसित रोगी आते हैं।

देबल

यह माना जाता है कि 'देवल' डुग्गर के ऐतिहासिक नगरों में एक है।

यह स्थान गूल से पगडंडी से जुड़ा हुआ है। देवल जाने के लिए एक मार्ग महौर से भी जाता है। इस मांर्ग में पहले अगराला आता है उसके बाद नोहज है और अन्त में देवल है।

देवल इतिहास और पुरातत्व की दृष्टि से बहुत ही महत्त्व पूर्ण ग्राम है। जहाँगीर ने अपनी जीवनी में लिखा है कि दिल्ली के सुलतान फिरोजशाह तुगलक (1356-88) ने राजौरी पर अधिकार करने के बाद खस राजा रामचंद को हराया और उसके बाद उसने देवल पर हमला किया। उन दिनों देवल में किसी हिन्दू सामंत का शासन था। देवल से एक मार्ग कश्मीर को भी जाता था अत: कई आक्रमण कारियों का यह प्रस्थान-मार्ग भी रहा है।

लेखक अब्दुल रशीद ज़ोन के अनुसार कुछ बर्ष पूर्व देवल के लोग एक वाबली की सफाई कर रहे थे तो उन्हें मिट्टी के एक ढेर से तीरों के कई बंडल मिले जिन की लम्बाई एक फुट से डेढ़ फुट के बीच थी। देवल की मूर्तियों को भी देखकर लगता है कि यहाँ मूर्ति कला विकसित रुप में रही है।

देवल वैसे तो गुज्जर संस्कृति का केन्द्र है किन्तु यहाँ कश्मीरियों के भी कई घर हैं। यहाँ एक कवीला ऐसा भी है जिन के पुरुषों का ढील ढौल शेष लोगों से अलग है माना जाता है कि ये नाग प्रजाति हैं।

ये लोग हृष्ट-पुष्ट वलिष्ठ, ऊँची कद-काठी के हैं। यहाँ के गुज्जरों की भी कई जातियाँ हैं जिन में देद्धुड़, बोकड़ा, खटाना, पशुआल, खारी, बाणा, लेइवाल, बजाड़, मंदड़ आदि उल्लेखनीय हैं।

लोग शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हैं। मक्की और धान यहाँ की विशेष उपज हैं। लोगों का पहनावा मुख्य रुप से लम्बी कमीज़ और सलबार है। ये लोग परिश्रमी हैं और सर्दियों में काम की खोज में मैदानी क्षेत्रों में आते हैं। देवल पंचायत में घरों की संख्या 2001 में 490 थी और आबादी 3148 थी जिस में पुरूष 1690 और महिलाएँ 1458 थी।

वहराम गला

यह पर्वतीय गाँव भिम्बर से 112 कि.मी. और श्रीनगर के दक्षिण-पश्चिम

में 128 कि.मी. दूर है। यह गाँव रतन पीर पहाड़ के दर्रा के निकट स्थित है। इसी गाँव के नीचे यहाँ पुंछ और पुरनोई नदियों का संगम है वहीं यह गाँव आवाद है।

इस गाँव के नीचे चिट्टा नाला प्रवाहित है जो इसके सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है।

लोकपरम्परा के अनुसार इस गाँव को वहराम नामक एक सेना नायक ने तब बसाया जब उसने यहाँ सुरक्षा की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण किला निर्मित किया।

इस गाँव का पुराना नाम भैंरों गली था। किन्तु बहराम ने इसका नाम करण अपने नाम से किया तो यह नाम प्रचलन में आ गया। पुंछ के इतिहास का अनुशीलन करने से लगता है कि इस गाँव में जो किला बना है उस की नींव 1542 ई. में रखी गई थी। मुगल सेना इसी मार्ग से कश्मीर जाती थी।

बहराम गल्ला पुंछ से केवल 45 कि.मी. दूर है और समुद्रतल से इस की ऊँचाई 8,600 फुट है।

बहराम गला में तो मुख्य आवादी मुसलमानें की है किन्तु इस गाँव में निर्मित एक शिव मंदिर को देखकर इसलिए आश्चर्य होता है कि पुजारी न होते हुए भी यह बाहरी प्रभाव से मुक्त है।

बहराम गलां में अधिक गुज्जर आवादी बताई जाती है। गुज्जर-संस्कृति का प्रभाव होने के कारण इस क्षेत्र का सांस्कृतिक बातावरण शांतिमय है।

बहराम गला अब एक पर्यटन-स्थल के रुप में विकसित करने की आवश्यकता है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य, घने जंगल, प्रवाहित नाले अतिमोहक है। बहराम गला से एक मार्ग पुंछ की उन सात झीलों की ओर जाता है जिन का परिदृश्य मोहक है।

बहराम गला पुंछ जिले का अति सुन्दरतम स्थल है।

लोहरकोट (लोरन)

स्थिति:- डुग्गर का यह प्राचीनतम एवमं ऐतिहासिक नगर पुंछ के उतर में 34 कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है। अब यह चारों ओर से घने वन से घिरा है। पीरपंचाल पर्वत का परिदृश्य यहाँ से साफ दिखाई देता है।

नामकरण- इस ऐतिहासिक स्थल के नामकरण के विषय में विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। एक मत के अनुसार इस की नींव युनानी सेना नायक ने सामरिक दृष्टि से एक दुर्ग निर्माण के लिए रखी। दूसरा मत यह है कि पुंछ के नाग देवता लोहरा के नाम पर इस का नाम करण किया गया।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि:- लोहर कोट का उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी में कश्मीर की महारानी दिद्दा के संदर्भ में उस के पिता राजा संघराज के नाम से किया है। संघराज को इतिहासकार लोहर कोट का प्रथम राजा मानते हैं। कल्हण ने उसे खस नरेश लिखा है और उसकी तुलना इन्द्र से की है। संघराज ने लोहरकोट को अपनी राजधानी बनाया और सन् 950 से 958 तक राज्य किया। उसके बाद विग्रह राज, लोहर कोट का राजा बना। राजा विग्रहराज के शासनकाल में सन 1014 ई. में महमूद गजनवी ने कश्मीर पर विजय प्राप्त करने के लिए लोहर कोट की ओर प्रस्थान किया किन्तु वह पराजित होने के बाद इस क्षेत्र से भाग गया। 1021 में उसने पुनः आक्रमण किया किन्तु परास्त होकर चला गया। विग्रहराज के बाद कुश्तीराज, उपकृष्ण, सुस्सल, प्रस्मन, तथा मलार्जुन तथा हर्षित इस क्षेत्र के राजा बने। हर्षित ने 1132 से लेकर 1145 तक राज किया।

लोहर कोट 1452 ई. में सुलतान जैन-अल्ला-उ-द्दीन के अधिकार में आया। उसने अपने वेटे हाजी खान को लोहर कोट का शासक बनाया। उसके बाद हसनखान 1457 में लोहर कोट का प्रशासक नियुक्त हुआ। उसके बाद जहाँगीर मा़गरे और मलिक काजी ने यहाँ शासन किया। 1594 ई. में शाहज़ादा सलीम की अनुशंसा पर अकवर ने सिराज-उल-द्दीन को इस क्षेत्र का राजा बनाया तो उसने अपनी राजधानी पुंछ रखी जिस कारण लोहर कोट का वैभव लूट गया और यह नगर एक राजधानी से हट कर एक साधारण ग़ाँव रह गया।

नगर संरचना- लोहर कोट एक ऊँची पहाड़ी के ऊपर बसा था।

इसके ऊपरी सिरे में एक कोट शैली का किला था और किले के आस-पास कुछ हवेलियाँ थी जिन में राजा और उसके सामंत रहते थे। यहाँ पीने के पानी की प्राकृतिक व्यवस्था थी। यह नगर वर्ष में चार महीने बर्फ से ढका रहता था। नगर में जो घर थे वे ढलवान में थे। यह पूरा नगर एक दुर्ग प्रतीत होता था। आज भी यहाँ दुर्ग और हवेलियों के खंडहर बिखरे दिखाई देते हैं किन्तु घर बहुत कम रह गए हैं। जो घर बचे हैं वे कृषकों के हैं या उन में पशुचारक रहते हैं।

जन-जीवनः- लोरन अब एक पर्वतीय ग्राम मात्र रह गया है। इसमें इस समय जो घर हैं वे पहाड़ी शैली में वने हैं और कच्चे हैं। लोगों का जीवन स्तर निम्न है और वे निर्धनता का जीवन जी रहे हैं। पशुचारकों के कारण दूध , दही, घी उपलब्ध है। मक्की और धान की खेती भी होती है। कुछ फलदार वृक्ष भी उगे हैं किन्तु यहाँ न कोई चहल-पहल है और न किसी प्रकार का कोई कलरव। केवल प्रातः सायं पशुओं के बोलने की आवाज़े सुनाई देती हैं।

दर्शनीय स्थल-कश्मीर का प्रवेश द्वार कहलवाने वाला लोरन आज उजड़ा पड़ा है फिर भी इ़स में कई महत्व पूर्ण स्थल ऐसे हैं यहाँ आज भी सैकड़ों की संख्या में बाहर के लोग जाते हैं। इन में निम्न महत्वपूर्ण हैं:-

चन्दन शाह की जियारतः- मुस्लिम संत चन्दन शा की जियारत मुरीदों के लिए आस्था और श्रद्धा का केन्द्र है। चन्दन शाह के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने इस ग्राम में कई बर्ष तक खुदा की इबादत की और लोगों को खुदापरस्ती का पाठ पढ़ाया।

साई अल्लाह बख्शः- साई अल्लाह बख्श पुंछ के प्रसिद्ध सूफी संत थे। उनके पुंछ में कई स्थान हैं जिन में एक लोरन में भी है।

मंडीचूलः- यह डुग्गर का दूसरा नूरी छम्ब है जो लोहर कोट से केवल सात किलोमीटर दूर है। अब केवल पशुचारक ही इस प्राकृतिक प्रपात का आनन्द उठाते हैं।

लोरन डुग्गर का उजड़ा हुआ वह शहर है जिस ने पुंछ और कश्मीर की राजक्रांतियों का दमन सहा है।

राजपुरा मंडी

स्थितिः- डुग्गर का यह अनुपम सुन्दर पर्वतीय उपनगर पुंछ से 25 कि.मी. की दूरी पर लोरन उप नदी के तट पर पहाड़ की गोदी में बसा है।

नामकरणः- इस उपनगर के नाम करण पर कोई पुष्ट और ठोस सामग्री उपलब्ध नहीं है। बताया जाता है कि जिन दिनों लोहरकोट पुंछ की राजधानी थी उन दिनों लोहर कोट को इसी कस्बा से मार्ग जाता था। लोहर कोट ऊँची पहाड़ी पर अवस्थित था और सर्दियों में अति हिम वृष्टि की लपेट में आ जाता था, अतः सर्दियों में लोहरकोट का राज परिवार यहाँ आ जाता था, अतः इस स्थान का नाम राजपुरा पड़ा। बाद में जब यह नगर पुंछ में पहाड़ी माल की मंडी बना तो इसे राजपुरा मंडी कहा जाने लगा।

ऐतिहासिक पृष्ट भूमिः- राजपुरा जिला पुंछ का एक महत्वपूर्ण नगर है। यह पुंछ का सदैव से एक अंग रहा है। पुंछ से श्रीनगर-पैदलयात्रा करने वाले पर्यटकों के लिए यह पहला शिविर माना जाता रहा। मुहम्मद गजनवी से लेकर महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल तक यह सैनिकों के लिए एक पड़ाव भी रहा। इस का इतिहास पुंछ के इतिहास से जुड़ा है अतः इस का स्वतन्त्र रुप से कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है।

नगर की संरचना- यह कस्बा एक पहाड़ी के दामन में बसा है अतः थोड़ा ढलान में है। लोरन उप नदी का पुल पार करते ही इसका वाज़ार आरम्भ हो जाता है जो लगभग एक किलोमीटर लम्बा है। बाज़ार के दोनों ओर दुकानें है जिन में कुछ बड़ी शेष छोटी हैं। यहाँ लोरन से आया पहाड़ी माल तथा घी आदि उपलब्ध है अतः यहाँ पहाड़ी माल तथा घी आदि उपलब्ध है इसीलिए इसे पहाड़ी मंडी माना जाता है।यहाँ पर्यटकों के लिए भोजनालय तथा जलपान की दूकानें उपलब्ध हैं। बाज़ार के पीछे लोगों के घर हैं जिन में अधि कांश के छत ढलवां है। सर्दियों में राजपुरा मंडी वर्फ से आच्छादित रहता है, अतः लोग घरों के प्रांगण में लकड़ी के ढेर लगाये रखते हैं।

जन जीवन- राजपुरा मंडी मुस्लिम बहुल कस्बा है। पहाड़ी संस्कृति का इसे केन्द्र माना जा सकता है। अधिकांश लोग निर्धन हैं। वे कृषि, पशु पालन और वनों में काम करके अपनी आजीविका चला लेते हैं। यहाँ धान

की बढ़िया खेती होती है। राजपुरा का राजभाष, घी और चावल बहुत ही ऊमदा है। लोगों की वेश-भूषा पहाड़ी है और रीति-रिवाज़ परम्परागत हैं। यहाँ शिक्षा के दो-तीन केन्द्र हैं और कई सरकारी कार्यालय भी हैं जिन से इस कस्वा के लोगों की जीवन शैली में अन्तर आ रहा है।

रीति रविाजः-फलकड़ा- राजपुरा मंडी में कृषि सम्बन्धी एक अनुष्ठान को फलकड़ा का नाम दिया गया है। इसके अन्तर्गत किसान सामूहिक रुप में इकट्ठे होकर धान काटने से पहले बकरे की कुर्बानी देकर न्याज़ देते हैं ताकि उनका फसल को कोई क्षति न पहुँचे।

दर्शनीय स्थल-बुड्ढ़े अमर नाथ

राजपुरा मंडी का नाम 'वुड्ढे अमर नाथ' मंदिर के कारण भी प्रसिद्ध है। यह मंदिर राजपुरा पुल से 2 कि.मी. की दूरी पर लोरन नदी के तट पर एक समतल मैदान में अवस्थित है। मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से (नवनिर्मित मंदिर) कला का एक वेजोड़ नमूना है। मंदिर के भीतर खुली टोकरी के आकार में धवल रंग का जो शिवलिंग है उसी को बूढ़े अमर नाथ कहा जाता है। रक्षा बन्धन के दिन प्रति बर्ष हज़ारों की संख्या में श्रद्धालु बूड्ढ़े अमरनाथ की यात्रा पर आते हैं और शिवलिंग के दर्शन करके गदगद हो जाते हैं। इस मंदिर से जुड़ी कई जनश्रुतियाँ हैं जिन के अनुसार यह पावन स्थल बहुत प्राचीन है।

परनोत्स (पुंछ)

स्थितिः- यह ऐतिहासिक नगर पुंछ उप नदी और नाला बेतार के संगम स्थल के साथ बसा है। जम्मू से इस की दूरी 248 कि.मी. है। भौगोलिक दृष्टि से यह नगर 33.20 से 34^0 अक्षांश तथा 73.35 से $74^0.0$ अक्षाश में पड़ता है। इस नगर के उतर में जिला बारामूला, पूर्व में राजौरी तथा दक्षिण और दक्षिण पशिचम में युद्धविराम रेखा है।

नामकरण- परनोत्स के नामकरण पर विद्वान एक मत नहीं हैं। स्थानीय इतिहासकार खुशदेव मैनी का मत है कि इस नगर की संस्थापना कश्यप ऋषि के भाई 'पुलस्त्य' ऋषि ने की। उसी सक इसी नाम पुलस्त्य

पुलसत प्रोनस्त या प्रोनस विकसित हुआ। एक अन्य दन्त कथा के अनुसार कश्मीर के एक राजा पुरुषसेन ने इस नगर की स्थापना की। डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि इस का आदिनाम अभिसार प्रस्त था।, बाद में अभिसार तो लुप्त हो गया और जो प्रस्त बचा उस से प्रोनस और प्रोनस से पुंछ विकसित हुआ। एक दन्त कथा यह भी है कि लोहर कोट के किसी राजा ने 'पुंछा' नामक एक स्थानीय युवकी से विवाह किया और बाद में उसी रानी के नाम पर उसने पुंछ नगर बसाया।

उपरोक्त सभी मतों का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है इस नगर का आदि नाम परनोत्स या प्रोनस था। कश्मीरी में पुंछ को आज भी प्रोनस कहते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ट भूमि-पुंछ का इतिहास शताब्दियों पुराना है। आरीना के अनुसार सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व यह नगर अभिसार नाम से विख्यात था। इस का राजा सिकन्दर और पोरस के युद्ध में निष्पक्ष रहा। इतिहासकार बैले के शोध के अनुसार कुषाण काल में यह 'दार्वाभिसार' के नाम से प्रसिद्ध था और इसके राजा का नाम सेवासेन था। सातवीं सदी में चीनी यात्री हयुन्सांग इस क्षेत्र से गुजरा तो इस नगर का नाम पन अत सो (सम्भवत:) पनोत्स था। राज तरंगिणी के अनुसार 850 ई. में परनोत्स में घोड़ों के व्यापारी राजा नर का शासन था।

सन 858 ई. में संघराज ने लोहर कोट को अपनी राजधानी बनाया तो पुंछ का वैभव घट गया। संघराज के उतराधिकारियों तथा अन्य सामंतों ने 1594 तक लोहार कोट को ही अपनी राजधानी रखा। किन्तु सन् 1594 ई. में जब सिराज-उल-दीन परनोत्स का शासक बना तो उसने लोहार कोट की बजाय पुंछ को अपने राज्य की राजधानी बनाया। सिराज-उल-दीन के बाद राजा फतेह मुहम्मद खान (1646.1700 ई.).

(1747-1760) राजा रुस्तम खान (1760-1787) राजा शहाज़ खान (1787 - 1792 ई.) राजा खान बहादुर खान (1792-1798 ई.) राजा अमीर खान (1798-1804 ई.) और रुहौल्ला खान (1804-1819) पुंछ के शासक बने। सन् 1819 ई. में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर विजय का जब अभियान छेड़ा तो उन्होंने इस विजि क्षेत्र का अपने प्रधान

मंत्री राजा ध्यानसिंह को जागीर के रुप में प्रदान किया किन्तु मूल रूप से यह नगर सन् 1850 ई. तक खालसा शासन के अधीन रहा।

सन् 1850 में राजा ध्यान सिंह का पुत्र मोती सिंह जम्मू-कश्मीर के महाराजा के अधीन पुंछ का जागीरदार बना। राजा मोती सिंह (1850-1892ई.) के बाद राजा बलदेवसिंह (1892-1918 ई.) राजा सुखदेव सिंह (1922-1926) राजा जगत सिंह (1927- 1940 ई.) पुंछ का राजा बना। 2 जुलाई 1940 कि महाराजा हरिसिंह ने पुंछ को अपने अधीन रखा और पुंछ के अल्प-व्यस्क राजकुमार शिवदेव सिंह को 'राजा' की उपाधि तो प्रदान की किन्तु प्रशासन मंत्री भीम सेन को सौंपा। महाराजा हरिसिंह और पुंछ की राजमाता में मुकद्दमा वाजी हुई तो महाराजा ने रानी को नज़रवंद किया। नाराज़ रानी 1945 ई. में पुंछ छोड़ कर देहरादून चली गई और फिर वहीं बस गई।

सन 1947 में भारत विभाजन के बाद पुंछ को बूरे दिन देखने पड़े। पाकिस्तान कवाइलियों ने इसे तीनों ओर से घेर लिया। साठ हज़ार के लगभग शरणार्थी पुंछ के शिविरों ने जमा हुए। किन्तु भारत सरकार और राज्य सरकार ने स्थिति को सम्भाल लिया। अब स्थिति यह है कि युद्ध विराम रेखा पुंछ से केवल तीन किलोमीटर दूर है।

पुंछ पहले पुंछ राज्य की राजधानी थी किन्तु जम्मू कश्मीर राज्य ने जब नये जिलों का गठन किया तो पुंछ को भी एक जिला का दर्जा दिया। आज स्थिति यह है कि पुंछ नगर पुंछ जिला पुंछ का मुख्यालय है।

पर्यटकों की दृष्टि में पुंछ

आरीना के यात्रा-विवरण के अनुसार सिकन्दर के हमले के समय पुंछ में राजा अभिसार का राज्य था। चीनी यात्री तथा पर्यटक हयुन्साग के अनुसार 'पन-अत-सो' कश्मीर राज्य के अधीन था और उस ज़माना में यहाँ का अपना कोई राजा नहीं था। प्रसिद्ध अंग्रेज पर्यटक जी.टी. बिगनी के शब्दों में 'पुंछ शहर कोई दिलचस्प शहर नहीं था। यह शहर कस्बा राजौरी से छोटा और कोटली से बड़ा था। इस शहर में कोई ऐसी महत्वपूर्ण बात न थी जिस को लिपिबद्ध किया जाए।' बिगनी पुंछ में रुका नहीं और सुर्नकोट चला गया था।

जिला पुंछ नौ वादियों में विभाजित है जिन में महत्व पूर्ण वादी का नाम पुंछ की वादी है। यह वादी चंडक से सेहड़ा तक फैली है। इस की समुंद्र तल से ऊँचाइ 850 मीटर से लेकर 1225 मीटर तक है। इस वादी का प्रसिद्ध नगर पुंछ है जो असमतल भूमि पर खड़ा है। सन 2001 में इस नगर की आबादी 23978 थी जिस में 13741 पुरूष और 10237 महिलाएँ थी

नगर संरचना- पुंछ नगर पुंछ नदी के तट के साथ बसा है। पुंछ नदी से बस अड्डा तक समतल मैदान है। जम्मू पुंछ जाते हुए पुंछ नगर में प्रवेश से पहले एक प्रवेशद्वार आता है। यह उसी रुप में बना है जिस रुप में जम्मू का गुम्मट दरवाजा और जसरोटाका दिल्ली- दरवाजा है। बस अड्डा से ऊपर पुंछ का वाज़ार है जो अनुमानतः एक किलोमीटर लम्बा है। यह कहीं से तंग तो कहीं से चौड़ा है। यह विल्कुल सीधा भी नहीं है इस में कहीं-कहीं मोड़ और धुमाव भी हैं। बाज़ार के अन्त में खुला चौगान है जिसे 'परेड़' नाम से अभिहित किया जाता है। यह मैदान विस्तृत है। इसके दोनों ओर कई भवन और एक शीश महल है। पुंछ को नया रूप होने का श्रेय डोगरा बंश के प्रथम राजा मोतीसिंह को दिया जा सकता है। उसी ने पुंछ किले का नवनिर्माण करवाया। उसी के काल में बाग और ड्योढ़ी बनी। यहाँ मुगल शैली के फब्बारे लगे। मंडी हाल तथा न्यायालय परिसर का निर्माण हुआ। राजा बलदेव ने मोती महल, बलदेव महल शीश महल, पुंछ किला तथा सैकड़ों भवनों का निर्माण करवा कर पुंछ का रूप ही बदल दिया।

जन जीवन- पुंछ के इतिहासकार खुश देव मैनी के अनुसार यहाँ कई धर्मो एवम सम्प्रदायों के लोग एक साथ रहते हैं जिनमे हिन्दू भी हैं, मुस्लिम भी है सिक्ख भी है। इनमें कश्मीरी भी हैं, पहाड़ी गुर्जर और जाट भी है। यह सभी लोग अपनी जिन्दगी, अपनी संस्कृति, अपने धर्म अपने मेले त्योहार, बिना किसी भय अथवा संदेह के सदियों से इकट्ठे मनाते चले आ रहे हैं और अपने-अपने दिन त्योहार बड़ी श्रद्धा, धूमधाम तथा वैभव से मनाते हैं जिन में दूसरे धर्मों के लोग भी सम्मिलित होते हैं।

पर्व और त्योहार - 'मुसलमानों में ईद-मिलाद-उल-नवी का त्योहार बड़े उत्साह से मनाया जाता है। शहर और आस-पासके गाँवों से हज़ारों की संख्या मे लोग 'अल्ला-हू-अकबर'- के नारे लगाते ईद गाह में एकत्रित होते हैं फिर पंक्तियों में खड़े होकर नमाज़ पढ़ते हैं। नमाज़ के उपरान्त हिन्दू-सिक्ख

अपने मुस्लिम भाईयों को ईद मुवारक देते हैं। इस दिन शहर में चहल-पहल होती है। ईद मिलाद-उल-नवी के अतिरिक्त दूसरी ईदें भी बड़े आदर भाव से मनाई जाती है। इसी प्रकार सिख समुदाय से संबध रखने वाले लोग अपने गुरु साहिबान के जन्म दिन परंपरागत ढ़ग से मनाते हैं। इस दिन गुरुद्वारों में दीवान लगते हैं। संगतें इकट्ठी होते है। गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ होता है। शब्द कीर्तन होते हैं। लंगर जारी रहता है फिर शब्द गाते-गतका और तलवारों के करतब दिखाते हुए धार्मिक जुलूस बाज़ारों से गुजरते हैं। शाम को दीप माला भी होती है।

हिन्दुओं में जन्माष्टमी, दीपावली, लोहड़ी और रक्षा बन्धन के पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाए जाते हैं। बैसाखी का मेला दशनामी अखाड़ा पुंछ में और चेत की चौदह तारीख को रामकुंड में स्नान करने पुंछ के लोग जाते हैं। जन्माष्टमी पर गीता-भवन में एक बड़ा समागम होता है। दशहरे के दिन परेड ग्राऊंड में रावण, मेघनाद और कुंभकरण के बुत जलाये जाते हैं। इन ध ार्मिक त्योहारों के अतिरिक्त कुछ अन्य त्योहार भी पुंछ क्षेत्र में मनाए जाते हैं जैसे मेला सखीपीर, उर्स साई फकीर उल-दीन आदि।

रीति-रिवाजः पुछ के जन-साधारण के रीति-रिवाज एवम परम्पराएँ भी जिंदगी की विभिन्न दिशाओं तथा महत्वपूर्ण घटनाओं तथा स्थानों से संबद्ध हैं। इनका विश्लेषण निम्न ढंग से कर सकते हैं:-

धार्मिक अनुष्ठान- ये अनुष्ठान हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख अपने-अपने धर्म और मत के अनुसार आयोजित करते हैं। मुसलमानों में खतना हिन्दुओं में झंड (मूनन) तथा सिक्खों में जूड़ा का अनुष्ठान धार्मिक कृत्य माना जाता है। विवाह शादियों के अवसर पर वुगदर उठाना तथा पंजा लड़ाना शुभ माना जाता है। मरासी, भांड शुभ अवसरों पर गाने और नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। विवाहों में हिन्दू घरों में चावल पूड़ी, राजमाष, राजमा आलू तथा हल्वा परोसा जाता है और मुस्लिम घरों में बकरा आदि से पीर को न्याज़ दी जाती है। किन्तु परम्परागत भोज चावल घी और शक्कर है।

वर्षा न होने पर सभी मिलकर अल्लाह के नाम पर न्याज़ देते हैं।धान की फसल पकने पर सभी धर्मों के लोग मिल कर कटाई से पहले बकरे की बलि देते हैं। इस अनुष्ठान को 'फलकड़ा' नाम से अभिहित किया जाता है।

पुंछ में बुगदर उठाना, बीनी पकड़ना, भैसें, भेढ़े और मुर्गे को लड़ाना अच्छा माना जाता है। यहाँ शुभ अवसरों पर छिंजों (दंगल) का आयोजन भी होता है और अलगोजे की तान पर सैफ अलमलूक गाने की परम्परा भी है।

आर्थिक दशा।:- सदियों से पुंछ आर्थिक दृष्टि से एक पिछड़ा नगर रहा है। इस का कारण प्राकृतिक आपदाएँ, राजनैतिक उथल-पुथल और अस्थिरता का वातावरण है। सन 1947 में देश के विभाजन के बाद पाकिस्तान के आक्रमणों के कारण इस स्थान के घनाढ्य और व्यापारियों ने पलायन किया जिस से इस नगर की मंडी उजड़ गई। कृषि प्रधानता के कारण कम फसल के कारण किसानों की दशा शोकजनक रही। किन्तु भारत सरकार और राज्य सरकार के सामूहिक प्रयासों से सीमा वर्ती क्षेत्र की विकास योजनाओं के अन्तर्गत पुंछ पुनः समृद्धि की ओर लौटने लगा है। एक जिला का मुख्यालय होने के कारण यहाँ कई राजकीय कार्यालय, शिक्षा केन्द्र, उदयोग खुले हैं जिन में स्थानीय लोगों को नौकरी मिली है। इससे नौकरी पेशा लोगों की आर्थिक स्थिति में बहुत सुधार हुआ है। व्यापारियों तथा ठेकेदारों को भी काम मिला है जिससे उनमें आर्थिक सम्पन्नता आई है। कृषकों तथा मजदूरों की आर्थिक स्थिति में भी बहुत सुधार हुआ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पुंछ का समाज आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्वन की ओर बढ़ रहा है।

धार्मिक-स्थल- पुंछी समाज ईश्वर भीरू है। यहाँ के लोग अपने-अपने धर्मों के प्रति आस्था बद्ध हैं अतः इस नगर में धार्मिक-स्थलों की भी कमी नहीं है। पुंछ के धार्मिक स्थलों में निम्न उल्लेखनीय हैं:-

दशनामी अखाड़ा- पुंछ का यह पावन स्थल नगर के दक्षिण में फव्वारा बाग के पार पुंछ नदी के दायीं ओर स्थित है। इस स्थान का विकास पुंछ के मुस्लिम राजा रुस्तम खान द्वारा किया गया बताया जाता है। कहा जाता है कि इस स्थान पर घूना रमाये एक साधु ने रुस्तम खान को पुंछ का राजा बनने की भविष्य वाणी की थी। जब वह राजा बना तो उसने यहाँ मंदिर बनवाया और साधु को जागीर प्रदान की। डोगरा शासकों के शासनकाल में इस अखाड़ा के महन्त को राज गुरु का पद प्राप्त रहा। यह स्थान हिन्दूओं की सांस्कृतिक गतिविधियों का एक केन्द्र है। वैसाखी का पर्व तथा बूढ़े अमरनाथ यात्रा की पवित्र छड़ी के प्रस्थान का आयोजन यहीं से होता है।

इसके अतिरिक्त महारानी सिरमौर द्वारा निर्मित डंगस का कृष्ण मंदिर, खक्खा नावन का राममंदिर, जमेदार कन्हैया का शिव मंदिर, गीता-भवन पुंछ के पावन स्थल हैं।

गुरुद्वारा नगाली साहिब - यह बहुचर्चित गुरद्वारा पुंछ से छः कि.मी. पूर्व में नाला दरोगली के तट पर निर्मित है। इसके संस्थापक संत मेला सिंह थे। वे महाराजा रणजीत सिंह (सन् 1815) की सेना के साथ पुंछ में साधना करने के उद्देश्य से आए थे और फिर बाद में यहीं कुटिया बना कर रहने लगे। महाराजा ने उन्हें कुछ गाँव जागीर के रुप में दिये जिस की आय से यह गुरु द्वारा संचालित हुआ। महाराजा गुलाव सिंह ने भी इस गुरुद्वारा के नाम पाँचग्राम जागीर के रुप में दिए।

नगाली साहिब अब सिक्ख सम्प्रदाय का एक बड़ा धार्मिक स्थल है किन्तु इस के द्वार सभी धर्म और सम्प्रदायों के लोगों के लिए खुले हैं। यहाँ जो भवन निर्मित है वह तिमंजिला है और वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है। वैसाखी पर्व पर देहरी साहब में एक बड़े मेले का आयोजन होता है जिस में हज़ारों लोग सम्मिलित होते हैं। देहरी-साहब भी सिक्खों का स्थल है। यह द्रंगली के किनारे पर निर्मित है। यहाँ जो लंगर आयोजित होता है उसमें हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख एक ही पंक्ति में बैठ कर खाना खाते हैं।

इसके अतिरिक्त गुरुद्वारा पुरानी पुंछ, गुरुद्वारा सिंह सभा तथा गुरु निवास मंदिर दर्शनीय स्थल हैं।

मस्जिद बग्याला- यह मस्जिद परेड मैदान के साथ निर्मित है। इसके लिए भूमि फकीर उल्ला खान बग्याल ने प्रदान की थी अतः इसका नाम भी मस्जिद बग्याला पड़ गया। दुमंजली इस मस्जिद का पुर्न-उद्धार सन् 1982 में हुआ। पुंछ के आकर्षक भवनों में यह एक है। मस्जिद के साथ आवासीय विद्‌यालय भी है यहाँ धार्मिक शिक्षा का प्रावधान है।

मस्जिद दतु वजीरनी- इस मस्जिद का निर्माण राजा बलदेव सिंह के शासनकाल में दतु बजीरनी ने करवाया। यह आपता कार अहाते में परिसीमित है। मस्जिद एक ऊँचे टीले पर निर्मित है, अतः अति आकर्षक लगती है।

इनके अतिरिक्त नज़ामु-द्दीन की जामा मस्जिद, अल्लापीर तथा कादरिया गेलानियाँ की खानकाहें भी दर्शनीय हैं।

दर्शनीय स्थलः- पुंछ का किला

डुग्गर के ऐतिहासिक भवनों में पुंछ का किला देखने में अति सुन्दर और कलात्मक भवन है। यह शोभा शाली किला पुंछ के पश्चिम में एक ऊँचे टीले पर निर्मित है। कहते हैं कि इस किले की नींव पुंछ के राजा अब्दुल रज़ाक (सन् 1701-1747 ई.) ने रखी थी। 28 जून 1814 को महाराजा रणजीत सिंह ने इस किले पर अधिकार किया। सन 1850 में राजा मोती सिंह ने इसे अपना आवास बनाया और वह 450 लोगों के साथ इसी में रहा। राजा बलदेव सिंह के शासनकाल में कई नये भवन बने जिन को राजा ने अपना आवास बनाया किन्तु पुंछ के इतिहास का प्रहरी यह ऐतिहासिक किला आज भी अपना महत्व रखता है।

पर्यटन स्थलः- पुंछ का प्राकृतिक परिदृश्य इतना सुहाना है कि यह पर्यटकों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करता है। यहाँ का शीतल जल, अनुकूल और सुन्दर वातावरण, हरियाली, फलों से लद्दे वृक्ष, ऐतिहासिक और धार्मिक भवन पर्यटकों को सहजता से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। देसी और विदेशी पर्यटकों ने इस की तुलना कश्मीर से की है किन्तु यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाए तो यह कई बातों में कश्मीर से भी सुन्दर है। यहाँ 18^0 से 32^0 से. तक गर्मी पड़ती है और सर्दियों में हिमपात भी होता है। बर्षा ऋतु में भी इसके चारों ओर मखमली सी बिछ जाती है। इन स्थलों को देखकर आँखों को ज़ो सुख मिलता है वह अवर्णीय है।

भाषा बोलियां और साहित्य- पुंछ की स्थानीय बोली पुंछी है जिसे कई भाषा वैज्ञानिक पठोहारी बोली मानते हैं। स्थानीय साहित्यकार इसे 'पहाड़ी-भाषा' कहते हैं। इसका एक नाम चिभाली भी है। इस उप भाषा में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सम्बन्ध कारक की विभक्तियाँ ना, ने, नी का इस में प्रयोग होता है और कश्मीरी क्रियाएँ गच्छ, अच्छ का भी इसमें प्रचलन है। डोगरी की भाँति द्वितत्व की प्रवृति इस बोली में भी पाई जाती है।

पुंछी का लोक साहित्य अति समृद्ध है। इस में संस्कार गीतों के

अतिरिक्त चन्न टप्पा, विवाह, कैंची, ढोलना, ढोल, प्रसंग-गीत तथा वारें भी उपलब्ध हैं। पुंछी लोकगीतों में चन्न सबसे अधिक लोकप्रिय है। इस गीत के दो पद उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैं:-

चन्नम्हाड़ा चढ़ेआ ते जाई लग्गा पलंदरी,

चिट्टे-चिट्टे कप्पड़े ते दाग सीनै अंदरी।

(मेरा चाँद पलंदरी की ऊँची चोटियों से बाहर निकल आया है। चाँदकी चाँदनी में मेरे कपड़े तो सफेद दिखाई दे रहे हैं किन्तु अलगाव वाला यह दाग जो मेरे हृदय के भीतर है वह किसी को नहीं दिखता।)

इसी प्रकार कैंची गीत भी पुंछ में बहुत प्रसिद्ध हैं। ये विरह सम्बन्ध ी गीत हैं जो हृदय को हिलाकर रख देते हैं यथा:-

दरशी ने बनां बिच कम्पनी आं दस्ते।
गेआ मेरा मुन्शी ते भुल्त गे रस्ते।

(दरशी के वन में दस्ते काट रही हूँ। मेरा प्रेमी मुन्शी मुझ से दूर है, इसलिए में उस की याद में घर का रास्ता भी भूल गई हूँ)

पुंछ में गोजरी भाषा का भी प्रचलन है। गोजरी लोकगीतों में बैसाख, सपाई, डोलो माहियो, बनजारा तथा कैंची प्रसिद्ध हैं। गोजरी कैंची का एक रुप इस प्रकार है:-

दरशी गे बना बिच नीला-नीला रुख
गेइयो मेरो मुन्शी नस गिया सुख लगी कैंची दिलागी ....

पुंछ की भूमि लोकसंगीत से लयमयी लगती है। यह नगर गीत-संगीत के लिए डुग्गर के अन्य नगरों से कई दृष्टियों से अलग है।

मेंढर

स्थितिः- डुग्गर का यह वहुचर्चित उपनगर जिला पुंछ के अन्तर्गत है। इसे एक मार्ग कृष्णा घाटी से जाता है। कृष्णा घाटी प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से अनुपम है। इसमें घने जंगल हैं और इसका ऊपरी सिरा पुंछ से 24

कि.मी. है। मेंढर को दूसरा मार्ग भिम्बर गली से जाता है जो कई दृष्टियों से सुरक्षित है।

नाम करणः- डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल इतिहासकार सुखदेवसिंह चाड़क तथा लेखक खुशदेव मैनी का मत है कि 'मेंढर' की स्थापना यूनानी योद्धा और साकलकोट के राजा मेनाडेर ने की थी। बौद्ध साहित्य में इसी राजा को मिलिन्द नाम से भी अभिहित किया जाता है। माना जाता है कि मिलिन्द का शासन काल ई. पू पहली दूसरी सदी के बीच में रहा है। यदि इसे सत्य मान लिया जाए तो हमें स्वीकार करना होगा कि मेंढर दो हज़ार बर्ष से भी प्राचीन एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नगर है।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिः- मेंढर का जो इतिहास उपलब्ध है वह बहुत ही घुंधला है। डॉ. खुशदेव मैनी ने पुंछ के इतिहास के सन्दर्भ में इसकी चर्चा तो की है किन्तु इस पर अभी शोध की आवश्यकता है। यदि मेंढर को राजा मिलिन्द से जोड़ा जाए तो यह माना जा सकता है कि मेंढर सहित पुंछ का अधिकांश भाग उस के राज्य में सम्मिलित था। इतिहास कार मानते हैं कि कश्मीर का कुछ भाग भी उसके राज्य में शामिल था। कश्मीर से हो सकता है उनका अभिप्राय मेंढर पुंछ क्षेत्र से रहा हो। मेंढर के निकट सखी मैदान में प्राचीन काल के जो अवशेष विखरे पड़े हैं, इतिहासकार उन्हें मिलिन्द के महल या दुर्ग या मिलिन्द द्वारा निर्मित बौद्ध विहार मानते हैं। इन इतिहासकारों में प्रो. कौल और खुश देव मैनी का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। यह मान्य सत्य है कि बौद्ध-भिक्षु नागसेन की प्रेरणा से मिलिन्द भी बौद्ध हो गया था और यह सम्भव भी है कि उसने सखी मैदान में अपने नाम पर कोई बौद्ध विहार, संघाराम या किसी बौद्ध संत की स्मृति में कोई स्तूप बनवाया हो किन्तु इसे सही सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई ठोस प्रमाण नहीं हैं। मिलिन्द के नाम से जो सिक्के मिले हैं उन से भी ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता है।

मेंढर के प्राचीन पुरावशेषः- मेंढर से चार किलोमीटर की दूरी पर एक समतल चौड़ा और लम्बा मैदान है जिसे अब सखी मैदान के नाम से अभिहित किया जाता है। माना जाता है कि यही मैदान पुराना मेंढर था। इस मैदान में प्राचीन भवनों के कई पुरावशेष विखरे पड़े हैं। इस भवन की नींवे पच्चास मीटर से भी अधिक लम्बी है। उस की चौड़ाई भी अनुमानतः पैंतीस मीटर है। यहाँ ऊपर चढ़ने के लिए सोपान पथ भी बना है। भवन की प्रस्तर

शिलाएँ जिन में कई तक्षित और कई अतक्षित हैं इसके आगे-पीछे बिखरी पड़ी हैं। डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल का अभिमत है कि यह ध्वस्त भवन मिलिन्द-विहार है। डॉ. कौल ने ललितादित्य के सन्दर्भ में बात करते हुए लिखा है कि उसे भी इसी स्थान से भूमि की खुदाई से दो मूर्तियाँ मिली थीं जिन्हें वह श्रीनगर ले गया था। डॉ. कौल के अनुसार 632 ई. में कश्मीर से लौटते समय चीनी यात्री ने पुंछ के जिन विहारों को देखा था यह विहार भी उनमें से एक था।

यदि जनश्रुतियों और साक्षात्कारों को आधार माना जाए तो कहा जा सकता है कि यहाँ पहले कभी कोई स्मारक रहा होगा। स्थानीय लोगों के अनुसार यहाँ से पत्थर का एक सन्दूक मिला था जिस में किसी संत के अस्थि-अवशेष थे। यदि ऐसा था तो हो सकता है, यहाँ कोई स्तूप रहा हो। किन्तु जब तक इस स्थान की खुदाई नहीं की जाती, विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता।

सखी मैदान में ही इन पुरावशेषों से आधा कि.मी. दूर शेरुशाह की जियारत है जो स्थापत्य की दृष्टि से मुगल-कालीन लगती है। किन्तु सखी मैदान से आठ किलोमीटरकी दूरी पर रामकुंड में जो प्रस्तर शिलाओं से निर्मित मंदिर है वह 6वीं या 7वीं सदी का माना जा सकता है। उसका स्थापत्य नागसेनी के सियाद्रमण मंदिर से बहुत मिलता जुलता है।

यहाँ तक वर्तमान मेंडर कस्बा का सम्बन्ध है, यह बहुत छोटा उपनगर है जिस में एक बाज़ार है और तीन चारसौ घरों पर आधारित एक वस्ती है यह नगर पहाड़ी संस्कृति का केन्द्र है।

मीर पुर

स्थितिः- यह उपनगर एक ऊँचे पहाड़ी टीले पर समतल मैदान में आबाद था। इसके पूर्व में जम्मू, उतर में पुंछ, पश्चिम में रावलपिण्डी का क्षेत्र तथा दक्षिण में जेहलम नगर था। इस नगर को एक सड़क नौशहरा से जाती थी जो 80 कि.मी. लम्बी थी। पंजाब से मीर पुर पहुँचने के दो सरल मार्ग थे। एक मार्ग जेहलम नगर से और दूसरा रावल पिण्डी से आता था।

नामकरणः- डॉ. संसार चन्द्र के अनुसार इस शहर के पूर्व में मीर नाम का एक फकीर तथा पश्चिम में पुरी नाम का एक महात्मा निवास करता था। अतः इन दोनों के नाम पर इसका नाम मीर पुर पड़ा।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमिः- 'मीरपुर का इतिहास' लिखित रुप में उपलब्ध नहीं है। जनश्रुतियों तथा निकटवर्ती राज्यों के इतिहास का अनुशीलन करें तो ऐसा लगता है कि राज तरंगिणी में जिस 'नीलपुर' का उल्लेख हुआ है, वह यही नगर हो सकता है क्योंकि लोहर कोट तथा राजपुरी के यह निकट है। डुग्गर की विदुषी लेखिका डॉ. वेद कुमारी घेइ का मत है कि प्राचीन इतिहास में जिस टक्क देश का उल्लेख है वह यही क्षेत्र होगा जिसका मुख्य नगर रहा होगा। शेखा खोखर और दशरथ खोखर के समय में भी यह क्षेत्र चर्चा में रहा। ऐतिहासिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि दथरथ खोखर की राजधानी मंगलदेवी में थी। मंगलादेवी मीर पुर का ही एक भाग था। अतः खोखरों के समय में भी इसे विशेष महत्व प्राप्त रहा। स्थानीय इतिहास से पता चलता है कि भिम्बर-कोटली और मीर पुर सहित सारा क्षेत्र चिम्भाल कहलाता था। अतः मीरपुर चिम्भाल का भी एक अंग था। किन्तु यह नगर कब बसा और किसने बसाया इस का सही प्रमाण उपलब्ध नहीं है। नगर की संरचना से लगता था कि यह पाँच सौ से अधिक पुराना नहीं था।

नगर की संरचना- मीर पुर एक मध्यम आकार का नगर था। इसका एक ही बाज़ार था जो डेढ़ कि.मी. के लगभग लम्बा था। इसके दोनों सिरों पर नगर में प्रवेश के लिए डयोढ़ियाँ बनीं थीं जिन को हाथी दरवाजा कहते थे। नगर एक ऊँचे टीले पर था अतः ऊपर चढ़ने के लिए चारों ओर से पगडंडियँ बनी थी। नगर में जल की कोई सुनियोजित व्यवस्था नहीं थी। दो बड़े-बड़े तालाब थे जिन में एक पुरुषों के लिए और दूसरा महिलाओं के लिए था। नगर के नीचे ढक्कियों में पानी के कुएँ थे। नगर के पुरुष वहीं नहाते थे और घर के लिए पानी वहीं से लाते थे। घीवर भी घरों में पानी पहुँचाते थे। नगर में कई गलियाँ थी। जिन के दोनों ओर कच्चे-पक्के मकान थे। बाज़ार में रौनक रहती थी और जीवनोपयोगी वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध थी। सन् 1947 में इस नगर की आवादी बारह हज़ार के लगभग थी। यह मीरपुर जिला का मुख्यालय था।

जन-जीवनः- मीरपुर मुख्यतः हिन्दू नगर था। नव्वे प्रतिशत यहाँ

हिन्दू रहते थे जिन में अधिकाँश महाजन थे और जिन का व्यवसाय दूकानदारी था। महाजनों के अतिरिक्त क्षत्रिय, राजपूत, घीवर, मेघ, डूम तथा चमार आदि भी यहाँ के निवासी थे। देहात में मुसलमान बहुमत में थे जिनकी संख्या नब्बे प्रतिशत थी। ये लोग कृषि कर्म पर आश्रित थे। इन का दूसरा सर्वप्रिय पेशा सिपाह गिरी था। कुछ लोग सरकारी कर्मचारी भी थे। उनका समाज में सम्मान जनक स्थान था। डॉ. संसार चन्द के शब्दों में- मीरपुर के लोगों का जीवन निहायत सादा था। भोजन, लिवास, रहन-सहन सब में सादगी का आग्रह बना रहता था। संयुक्त परिवार का रिवाज़ था। छोटे-छोटे घरों में बड़े-बड़े परिवार इस सलीके से सिमट जाते थे कि कानों-कान खबर न होती थी। विवाह-शादी का सिलसिला भी शहर की चहार दीवारी तक ही सीमित रहता था। लोगों की रुचि गाने बजाने और शेरो- शायरी की ओर अधिक थी। हकीमों में मियाँ शाबान का नाम बहुत प्रसिद्ध था जो अपने युग का लुकमान समझा जाता था। इसी प्रकार मिंया मुहम्मद बख्श शायरों का सरताज था। उसने 'सैफल मलूक' की रचना करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। लोग ताश और शतरंज खेलने के शौकिन थे। यहाँ दंगलों का भी आयोजन होता था।

मेले पर्व और त्योहार- यहाँ विजय दशमी का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। यह मेला नगर के उतर की ओर फैले विशाल रेतीले भूखंड में आयोजित होता था। स्त्रियाँ घरों की छतों और चौवारों पर बैठ कर रावण दहन का दृश्य देखती थी। वैसाखी का मेला पंचमूर्ति मंदिर में, आषाढ़ी का पर्व पन्दी की ढक्की के नीचे, रक्षा बन्धन तथा भाई दूज के मेले टाहली वाली खूई के मैदान में और बसन्त का मेला ऋषि के तालाब पर लगता था। शिवरात्रि का मेला प्राचीन शिव मंदिर में और दुर्गाष्टमीं का मेला मंगला देवी के किले पर लगता था। मुसलमानों में ईद के दिन विशेष उत्साह दिखाई देता था। गुरु पर्व हिन्दू और सिक्ख पूरी आस्था और श्रद्धा से मनाते थे। होले का पर्व गुरुद्वारे में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था।

पावन स्थल- मीर पुर में सब से विशाल और अनुपम मंदिर रघुनाथ जी का था। यह डोगरा काल में बना था और स्थापत्य की दृष्टि से उच्चकोटि का माना जाता था। इसके अतिरिक्त एक शिव मंदिर, एक शिवमठ और एक महादुर्गा का मंदिर भी था। शहर के पूर्व में एक भव्य गुरुद्वारा भी था। जिसे दमदमा साहिव कहते थे। दूसरा गुरुद्वारा अलीवेग ग्राम में था। मीरपुर से कुछ दूर एक पहाड़ी पर प्राचीन शिव मंदिर था। मंगला देवी के किले में भगवती

का विशाल मंदिर था। शहर के पश्चिमी भाग में एक बड़ी मस्जिद भी थी जो मुगल वास्तुकला से प्रभावित थी।

मीर पुर का किला- यह किला वितस्ता और नील गोई नाला के संगम स्थल पर शिला खंडों से निर्मित था। मुगल काल में इस किले को डुग्गर का प्रवेश द्वार माना जाता था। यहीं से कश्मीर जाने के लिए पहाड़ों की श्रृंखला आरम्भ होती थी। डोगरा काल में इस किले का उपयोग एक सरकारी कार्यालय के रुप में होता था। बाद में इसे एक कैदखाना बनाया गया। विशेष रुप से राजद्रोहियों को इस किले में रखा जाता था। आकार में यह किला छोटा था। सन् 1870 ई. तक यह किला उपयोग में आता रहा किन्तु वाद में जीर्ण-शीर्ष होने के कारण इसका परित्याग किया गया जिस कारण यह ध राशायी हुआ। सन् 1947 में भारत के बटवारे के बाद अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में पाकिस्तान द्वारा प्रेषित कवायलियों ने मीरपुर पर अधिकार कर लिया और आज भी यह पाकिस्तान के अनाधिकार में है।

जल समाधिः- पाकिस्तान ने सबसे बड़ी नदी बांध परियोजना मंगला डैम आरम्भ की तो यह ऐतिहासिक नगर उसकी भेंट चढ़ गया। अब यहां चारों ओर जल ही जल है और इसी जल में मीर पुर नगर जल समाधि ले चुका है। अब मीरपुर के ऊँचे मंदिर के कलश की एक चोटी ही दिखाई देती है जो इस नगर के वजूद की कहानी सुनाती है। शेष सब जल मग्न है।

भाषा बोली और साहित्य- मीर पुर की बोली मीर पुरी कहलाती है। यह पुठोहारी के अति निकट है। इसमें सम्बन्ध कारक के लिए ना, ने, नी का प्रयोग होता है। अच्छना और गच्छना क्रिया रुप भी उपलब्ध हैं।

उसनां, जिसनां सर्वनाम इस में भी हैं। जासां, खासां पठसां, लिखसां देखसां आदि क्रिया रुप पुठोहारी जैसे ही हैं। फिर भी इस पर डोगरी का प्रभाव भी है। कई विद्वान चिम्भाली को डोगरी की उपभाषा मानते हैं। मीरपुरी में सैफल मलूक वारिस शाह की 'हीर' की भाँति लोकप्रिय है। इस रचना का एक अंश निम्न हैः-

बेकदरां दी यारी कोलों फल किसे नहीं पाया, किक्कर ते अंगूर चढ़ाओ हर दाना जख्माया। इसके अतिरिक्त मीर पुर ने कई हिन्दी के विद्वान

और साहित्य कार भी पैदा किए हैं जिन में डाक्टर संसार चन्द, का नाम उल्लेखनीय हैं।

डॉ. संसार चन्द्र के शब्दों में हम कह सकते हैं मीरपुर की संस्कृति भारतीय संस्कृति के मणिमौक्तिकमय छत्र में इन्द्रधनुषी आभा बिखेरने वाली वैदुर्यमणि है, जो अपने सक्रिय योगदान से भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता को चार चाँद लगा देती है।

कालिंजर (कोटली)

स्थितिः- चिम्भाल क्षेत्र का यह नगर जम्मू से अनुमानतः 180 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। इसके साथ पुंछ नदी प्रवाहमान है जिस कारण इसका प्राकृतिक परिदृश्य नयनाभिराम है। जेहलम, अनंती, रंगार तथा नील गोई नदियाँ भी इसके निकट वहती है जिससे यह सदैव हरा-भरा दिखाई देता है।

नामकरणः- कालिंजर का एक नाम कोटली भी है। सन् 1785 ई. में पुंछ के राजा अली गौहर ने कालिंजर का दुर्ग जीता और अपने नाम पर उसने इसका नाम कोटअली रखा। 'कोट-अली' का ही विकसित रुप कोटली है। किन्तु इस नगर का नाम कालिंजर क्यों पड़ा इस का कोई वृत नहीं मिलता। इसी नाम का एक नगर बाँदा जिले में भी है। इसे एक तीर्थ के रुप में जाना जाता है। दूसरा इस का एक अर्थ पर्वत विशेष भी है। लगता है कि पर्वत पर बसा होने के कारण ही इसका नाम कालिंजर पड़ा।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि- कालिंजर का उल्लेख राजतरंगिणी मं भी मिलता है। इस ग्रंथ की सातवी तरंग में इस नगर के राजा कल्ह तथा उसकी पुत्री मेघ मंजरी के विवाह का वर्णन है। आठवीं तरंग में इसके शासक का नाम पद्मरथ उल्लेखित है। कालिंजर का नाम मुगल इतिहास में कलंजर लिखित है। यह चिम्भाल क्षेत्र का महत्वपूर्ण नगर रहा है। अठारहवीं सदी में कालिंजर के निकट ही जो नया नगर वसाया गया उस का नाम कोटली रखा गया। कालिंजर और कोटली एक ही उपनगर के दो नाम है। कोटली के साथ ही जो प्राचीन दुर्ग और महलों के पुरा विशेष हैं उन्हीं को कालिंजर माना गया है। कालिंजर ने इतिहास में कई उतार चढ़ाव देखे हैं। कभी यह भिम्बर का

अंग बना तो कभी पुंछ के राजाओं ने इस पर अधिकार किया।

किन्तु यह क्षेत्र जब खालसा सरकार के अधीन आया तो सन् 1827 में महाराजा ने राजा ध्यानसिंह को यह जागीर में दिया। किन्तु उस का वेटा जवाहर सिंह इस पर नियंत्रण करने में असफल रहा तो जम्मू कश्मीर के महाराजा गुलाबसिंह ने पहले अप्रत्यक्ष रूप से और सन 1846 ई. में प्रत्यक्ष रुप से इसे जम्मू-कश्मीर राज्य का भाग बनाया। सन् 1947 में भारत बंटवारे के बाद यह पाकिस्तान के अनाधिकार में है।

लेखकों की दृष्टि में कोटली:- 'स्वतन्त्रता की बलिदेवी पर' पुस्तक में ओम प्रकाश गुप्ता कोटलवी के लिखा है:- यह शहर सतह समुद्र से ढाई हजार फुट की ऊँचाइ पर है। पुंछ नदी के ऊपर एक अमृत तुल्य जल का चश्मा है, जिसे 'नावन' नाम से पुकारते थे। यह चश्मा पानी पीने का मुख्य स्त्रोत था। पानी इतना सुस्वाद, जायकेदार, मसफशिरी और हाजमेंदार था, जितना भी भोजन खाया जाए, शीघ्र ही हज़म हो जाता था। साथ ही वहाँ नहाने के बड़े-बड़े कुंड थे, जहाँ पर औरतें और पुरुष अलग-अलग स्नान करते थे। साथ ही एक और चश्मा 20-25 गज पूर्व की तरफ था जहाँ से मुसलमान पानी लाते थे। नावनं के ऊपर पुराने समय का शिवालय था और वजरंग वली का मंदिर ढक्की के ऊपर था। एक और चश्मा नगर के दक्षिण की ओर एक मील की दूरी पर कल-कल आवाज में बहता था। उसके साथ ही बहुत ही सुन्दर और बड़े-बड़े बाग थे। जिस को मंडी नाम से पुकारा जाता था।

उन दिनों मंडी में पीर अकरम हुसैन शाह, पीर आफताव हुसैन शाह, बावा रक्खी शाह, बावा शेर शाह, बाबा करम शाह, बाबा फोजदार शाह, हफीज़ अमाम वख्श, मुन्शी नजामुदीन, ख्बाजा सुल्तान आलम, हाज़ी वका मुहम्मद तथा साई टेक चन्द आदि रहते थे जो संसार के दुःखों अग्नि में झुलसे हुए लोगों को अपनी कोमल वाणी से शीतल उपदेशों तथा आर्शीवादों द्वारा कल्याण करते थे।

शहर से नदी पार जाने के लिए कई ढक्कियाँ थी। चवूतरे की ढक्की विशेष प्रसिद्ध थी। नदी के कनारे साधु-महात्मा और मुसाफिरों के रहने के लिए दो कुटियाँ थीं साथ एक कुआं था। शाह हंस द्वान की खानकाह व बावली पर वैसाखी को मेला लगता था। भण्डी पीर में भी मेला लगता था।

मोटा नावन में चैत्र चौरस को मेला लगता था।

यहाँ आर्य-समाज, सनातन धर्म सभा, रघुनाथ मंदिर, दुर्गा मंदिर, हनुमान मंदिर, तीन ठाकुर द्वारे, तीन मस्जिदें तथा तीन गुरुद्वारे थे।

यहाँ के लोगों का पहनावा लम्बा कुर्ता पाजामा और सलवार कमीज़ था। समाज में देवियों को सम्मान दिया जाता था। सभी औरतें और अधिक संख्या में मर्द शाकाहारी थे।

बाजार के दोनों ओर कोटली शहर बसा हुआ था। एक चौक भी था यहाँ काफी चहल-पहल रहती थी। खेलने के लिए दो-तीन मैदान और परेड़ ग्राऊंड भी थी। नदी के पछवाड़े अखाड़े भी थे।

यहां बीनी और 'कुश्ती करना आम था। कुक्कड़ (मुर्गा)। और भेड़ों की भी आपसी कुश्तियाँ हुआ करती थी।

कोटली में दसवीं तक लड़कों का सरकारी स्कूल था। इसके अतिरिक्त यहाँ टाऊन एरिया कमेटी, सब जजी, तहसील, पुलीस थाना, डाक बंगला, डाक व तार घर, हस्पताल और अन्य कार्यालय थे।

त्योहार- कोटली के सुप्रसिद्ध त्योहार जैसे चेत्र चौदस, वैसाखी, ध र्मदेह, रक्षा बन्धन, जन्म-अष्टमी, नवरात्रे, विजय दशमी, दीपावली, टीका, लोहड़ी, अनन्त चतुदर्शी, मकर सक्रांति, शिवरात्रि, बसन्त पंचमी, होली, शबे बरात, ईद, गुरु पर्व इत्यादि थे। इन्हें सभी लोग मिलकर बड़ी श्रद्धा और हर्ष उल्लास से मनाते थे।

होली के दिनों में हर रोज़ स्वांग भैरों, हनुमान, राम लक्ष्मण सीता, सस्सी पुन्नु, हीर-रांझा इत्यादि के बनाये जाते थे। लोहड़ी के पर्व पर स्थान-स्थान में लकड़ियों के गट्ठे जलाते थे।

कोटली में मुसलमानों के घरों में हिन्दुओं के रीतिरिवाज़ों की तरह शादियाँ हुआ करती थीं। वे लोग भी पंडितों तथा मौलवियों से शुभ दिन पूछ कर काम शुरु करते थे।

फल:- कोटली में विशेष फल लोकाट, आम, केला, संगतरे, मिट्ठे अखरोट, दन्दलियाँ, कोमल फगवाड़े इत्यादि होते थे। यहाँ एक विशेष प्रकार का पेड़ था जिसे तर नाड़ी के नाम से पुकारते थे। इसके फूलों की महक सब को मोहित करती थी।

कोहली में एक किला भी था जो पुंछ नदी के ऊपर शहर के पास पहाड़ी पर था।

आबादी:- कोटली शहर की आवादी सन् 1911 में 1584, 1921 में 1563, 1931 में 1537 और 1941 में केवल 2761 थी। 1941 में हिन्दू 1293, सिक्ख 26, मुसलमान 217 और ईसाई एक था।

भाषा और बोली:- कोटली की बोली पोठोहारी (पहाड़ी) थी। जो प्यारी और मिठास से भरी हुई थी। कोटली की बोली के एक गीत का एक अंश देखिए:-

सस पुछनी जमाई मेरा केड़ा वे।
साली पुछनी भनोआ मेरा केड़ा वे।
हथ कंगन न ते सेहरे बालड़ा वे।

कोटली को यह श्रेय प्राप्त है कि अदीब कृष्ण चन्द्र, गायक कुंदन लाल सहगल तथा शायर कुदरत उल्ला शहाव ने इस नगर में भी अपनी कला का प्रदर्शन किया था।

भिंम्बर

स्थिति:- यह नगर गुजरात (पाकिस्तान) के उतर में 48 कि.मी. जेहलम से 45 कि.मी. स्याल कोट से 80 कि.मी. तथा श्रीनगर से 240 कि. मी. दूरी पर बसा है। सदियों से यह नगर राजनैतिक और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। इसकी भौगोलिक स्थिति 32.58 अक्षांत और 74.8 रेखांश है।

नामकरण:- चिम्भाल के इतिहास में उल्लेख मिलता है कि सोलहवीं सदी में राजा भूपचन्द ने अपने नाम पर 'भूपनगर' बसाया जो बाद में भिम्बर नाम से प्रचलन में आया। किन्तु भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह रुपान्तरण सही

नहीं लगता।

इतिहासः- इस नगर का संस्थापक राजा भूपचन्द बावर का समकालीन था। उसके पुत्र गनी खान ने इस्लाम कबूल किया अतः यह एक मुस्लिम राज्य के रुप में जाना जाने लगा। भिंबर के राजा मुगल दरबार के प्रति निष्ठावान थे। बाद में वे जम्मू के राजा रणजीत देव की अधीनता में आए। इस वंश का अन्तिम राजा सुलतान खान बहुत ही प्रतापी सिद्ध हुआ। उसने कई क्षेत्र जीत कर उन्हें अपने राज्य में सम्मिलित किया। उसका टकराव पंजाब नरेश रणजीत सिंह से हुआ। अन्ततः 1810 में उसने खालसा दरवार की अधीनता स्वीकार की। बाद में 1812 में उसने विद्रोह किया तो खालसा सेना ने उसे बंदी बना कर लहौर भेज दिया। 1819 में उसे मुक्ति तो मिली किन्तु 1825 में उसे गुलावसिंह ने जम्मू बुलवाया। उसने उसे अन्धा किया और कारावास में डाल दिया। यहाँ उस की मृत्यु हुई। 1827 में भिम्बर राजाध्यान सिंह को चिम्भाल सहित जागीर के रुप में मिला और 1846 में अमृतसर संधि के अन्तर्गत यह जम्मू कश्मीर राज्य का अंग बना। सन 1947 में कवाइलियों ने इस पर अधि कार किया। तब से यह पाकिस्तान के अनाधिकार में है।

विदेशी पर्यटकों की दृष्टि में भिम्बरः- विट्स ने लिखा हैः- 'यह नगर भिम्बर नदी में किनारे एक समतल मैदान में नदी के दायी ओर बसा है। भिम्बर नदी बजीरावाद के निकट चन्द्र भागा में मिलती है। यह कश्मीर जाने का मार्ग रहा है। यह पत्थर के मकानों से बना है। यहाँ एक पुरानी मुगल सराय है जो नगर के मध्य में है। एक छोटा सा किला नगर के उतर में है। यहाँ थाना और जिला-धिकारी का आवास है। नगर के दक्षिण में दो महल आकार के भवन हैं। यहाँ के राजा स्वतन्त्र रहे हैं। पुराने राज महल के अवशेष भिम्बर से कश्मीर के मार्ग में ढूढ़े जा सकते हैं।

पर्यटकों की दृष्टि में भिम्बरः- नूरजहाँ ने जब भिम्बर के पहाड़ और घाटियाँ, नदियों के मोड़, सुन्दर और आकर्षक दृश्य, बाग और बावलियाँ देखीं तों उसके मुँह से सहज ही निकलाः- वास्तव में यह स्थान राजधानी के योग्य है। जिस किसी ने भी इसे इसके लिए चुना उस की बुद्धि और दूरदर्शिता की प्रशंसा करती हूँ। सम्राट अकबर भी इस को देखकर अभिभूत हुआ। उसने इसका नाम अकवरावाद रखा किन्तु अकवर के जीवन के साथ ही उसकी दिया हुआ यह नाम भी मिट गया।

लेखकों की दृष्टि में भिम्बरः- देवा-वटाला के लेखक बलदेव सिंह के शब्दों में - भिम्बर वह नगर है जिस पर चिवों के पूर्वजनों ने कई पीढ़ियाँ तक शासन किया था। यह नगर उस इलाके की सैकड़ों बर्ष पुरानी संस्कृति का केन्द्र रहा है। ओम प्रकाश कोटलवी के अनुसार सन 1911 में भिम्बर की आवादी 1438, 1921 में 1709, 1931 में 2020 थी।

लेखक कोटलवी ने भिम्बर पर हुए पाकिस्तानी आक्रमण का विवरण देते हुए लिखा है- 15 अक्तूबर बुधवार को लुटेरे जो हज़ारों की संख्या में थे उन्होंने भिम्बर को घेरे में लिया। उस समय रियासती सेना के वहाँ 60 जवान थे। उनकी सहायता के लिए जम्मू से पाँच ट्रकों में सेना भेजी गई। भिम्बर का एक बंगला जो शत्रु के कब्जे में था, वहां दोनों ओर से जम कर लड़ाई हुई। 17 अक्तुवर शुक्रवार को फिर पहले सेभी अधिक टैंकों द्वारा दुश्मन ने बड़ा आक्रमण किया। इस वार उन के दिल की कामना पूरी हो गई और यह हरा-भरा सुन्दर शहर जो अंगूठी में नगीना था, दुश्मन के हाथों में चला गया।

बलदेव चिब ने लिखा है- उस संकट काल में परगोवाल निवासी कप्तान गंधर्वसिंह मन्हास, रुस्तमें जम्मू कश्मीर फैजू पहलवान और मनचले नौजवानों को साथ लेकर भिम्बर बचाने के लिए चल पड़े। उन्होंने भिम्बर नदी पार की और हाई स्कूल में ठहरे कवाइलियों पर हला बोल दिया। वे भिम्बर की रक्षा के लिए वीरता से लड़े और फिर लड़ते हुए वहीं शहीद हो गए। प्रो. रामनाथ शास्त्री ने भी भिम्बर में हुई इस लड़ाई का विवरण कप्तान गंधर्वसिंह की जीवनी में दिया है।

जन जीवन- भिम्बर का शहर चिबों का गढ़ माना गया है। चिब हिन्दू भी थे और मुसलमान भी थे किन्तु धर्म के कारण उन में सामाजिक विभेद विशेष नहीं था। मुसलमान चिब भी हिन्दू परम्पराओं का निर्वाह करते थे और उन के घरों में कुल पुरोहितों का विशिष्ट स्थान था।

उन दोनों के रीति-रिवाज भी सांझे थे। मुसलमान घरों में खुतना-निकाह की प्रथाएँ मनाई जाती थीं और ईद पर समारोह भी होता था किन्तु हिन्दू पर्व त्योहारों पर वैसी ही खुशी मनाई जाती जैसी हिन्दू मनाते थे। इनके अतिरिक्त यहाँ उबान, खतरी, जुलाहे, जज़्बा, जमवाल, तरखान, पठान, ब्राह्मण महाजन तथा मुगल भी बसते थे। मलिक और सैय्यदों को मुस्लिम

समाज़ आदर-सम्मान देता था। कुछ घर नरमास और मंगरालों के भी थे। ये अपने को सूर्य वंशी मानते थे।

लोगों का रहन-सहन और पहनावा डोगरों जैसा ही था। खाना-पीना-वेश-भूषा में भी डोगरापन ही झलकता था।

यहाँ के लोग कृषक और सैनिक का जीवन पसंद करते थे। महाजन व्यापार पसंद करते थे। उनका कथन था- जे चलै दुकानदारी केह करनी तहसीलदारी। गेहुँ मकई, जौ, मुंजी, बाजरा, रौंगी तथा मूंग भिम्बर की मुख्य फसलें थीं। यहाँ मोठ, कुल्थ, माश, तिल, तारा, मीरा, मसूर,तथा सरसों का उत्पादन होता था। खाद्यान्न की दृष्टि से ये स्बावलम्बी थे।

शिक्षा के लिए यहाँ हाई स्कूल तो था किन्तु पढ़े लिखे लोगों की संख्या अधिक नहीं थी। घरों में डोगरी बोली जाती थी कुछ लोग चम्भाली भी बोलते थे।

कर्मठता, परिश्रम तथा उत्साह इन लोगों के जीवन का मूल मंत्र था।

राजपुरी (राजौरी)

डुग्गर का यह विख्यात नगर जम्मू के पश्चिम उतर में जम्मू से 154 कि.मी. की दूरी पर राजौरी तवी नदी के तट के ऊपर एक विस्तृत असमतल मैदान में आवाद है। भौगोलिक दृष्टि से इसकी स्थिति 32.58 - 33.35 अक्षांश और 70^0 - 74.4^0 देशान्तर है। यह डुग्गर का अति रमणीक तथा आकर्षक पहाड़ी नगर है।

नामकरणः- ऐतिहासिक, साहित्यिक और योग सम्बन्धी पुस्तकों में राजपुरी का उल्लेख भिन्न-भिन्न नामों से हुआ है। पंतजलि ने योग शास्त्र में इसे राजपुरी अथवा राजापुरी लिखा है। चीनी यात्री हयुन्साग ने अपने यात्रा वृत में इस का उल्लेख राजपुरी नाम से किया है। राजतरंगिणी में राजपुरी का प्रथम वार उल्लेख कश्मीर के राजा अभिमन्यु (958-972) के सन्दर्भ में हुआ है। इतिहासकार अलवरुनी ने 'इंडिका' में इस नगर का नाम 'राजावरी' लिखा है। अल्वरुनी सन 1036 में यहाँ आया था। श्रीवर ने भी अपनी राजतरंगिणी में

इसे राजावरी ही लिखा है। प्रजा वट्ट के समय में भी इसे राजावरी नाम से ही अभिहित किया जाता था। प्रजा वट्ट का समय 16वीं सदी है। मिर्जा ज़फरुल्ला खान की तारीख राजगान-ए राजौर के अनुसार इस शहर को 'राजावर' कहा जाता था और बाद में राजावर से बिगड़ता-बिगड़ता राजौरी नाम पड़ा।

एक मत यह है कि राजौरी राजौर शब्द का विकसित रुप है। राजौर का शब्दार्थ है - किला या सलतनत। राजौरी में किला था अत: इसे 'राजौर' कहते थे। कुछ भी हो किन्तु इतना माना जा सकताहै कि यह नगर अति प्राचीन है और शायद पाँचवीं सदी से भी पहले का है।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि- राजापुरी के इतिहास के संकेत हमें राज तरंगिणी में मिलते है। राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर की रानी दिद्दां के शासन काल में राजपुरी के शासक का नाम पृथ्वीपाल था। वह एक वीर योद्धा था। उसके शासन काल में कश्मीर की सेना ने राज पुरी पर दो बार आक्रमण किया। तुंग ने तो राजपुरी को अग्नि की भेंट किया जिस कारण राजपुरी राख का ढेर बन गई।

कश्मीर के राजा कलश (1063-1089 ई.) के शासन काल में राजपुरी का शासक सहजपाल था और उसके बाद उसका पुत्र संग्रामपाल इस राज्य का राजा बना। उसे मदन पाल ने तंग किया तो हर्ष ने मदन पाल का दमन करके संग्राम पाल को पुन: गद्दी पर बैठा दिया। राज तरंगिणी में राजा सहजपाल के कश्मीर जाने और राजा हर्ष को उपहार भेंट करने का उल्लेख भी हुआ है। किन्तु बाद में राजा सहजपाल ने जब हर्ष के विरुद्ध दो बार विद्रोह किया तो कश्मीर की सेना ने पुन: राजापुरी में तवाही मचाई जिससे इस ऐतिहासिक नगर को अपूर्व क्षति पहुँची। कश्मीर के राजा उक्कल के शासनकाल में राजपुरी का शासक सोमपाल था । उसे उक्कल ने अपना दामाद बनाया। उक्कल की पुत्री का नाम सौभाग्य वती था। कश्मीर के राजा जयसिंह ने भी अपनी पुत्री अम्ब पुत्रिका का विवाह सोमपाल से करके राजपुरी के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ़ किए। कल्हण ने राजपुरी के राजाओं को खस राजा लिखा है। लगता है कि राजपुरी खसों का गढ़ रहा है।

इतिहास की पुस्तकों में राजपुरी के पालवंशीय राजाओं के जो नाम

मिलते हैं बे हैं:- पृथ्वीपाल (1000-35) सहजपाल (1035-63) संग्राम पाल (1063-1101) सोमपाल (1101-1113) बाहुपाल (1113-941) और अमना पाल। अमनापाल का वध उसके मंत्री नूर-उ-द्दीन ने किया और वह स्वयं राजपुरी का शासक बना। नूर-उ-द्दीन जराल था अत: उसके वंशजों को जराल कहा गया। राजौरी में जिन जराल राजाओं ने शासन किया उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:-

राजा नूर-उ-द्दीन (1194) राजा अनवर खान (1252) राजा सरदार खान (1289) राजा शाह-उ-द्दीन (1412) राजा मस्तवली खान (1565) राजा ताज-उ-द्दीन (1604) राजा अनायत उल्लाह खान (1648) राजा अज़्मत अल्लाह खान (1683) राजा इज्जत-अल्लाह खान (1762) राजा कर्म-उल्लाह खान (1767) राजा अग्गर उल्लाह खान (1808) राजा रहीम उल्लाह खान। रहीम उल्लाह जराल वंश का अन्तिम राजा था। इस वंश ने 21 अक्तूबर 1846 ई. तक राज्य किया।

अमृतसर संधि के अन्तर्गत राजपुरी सन् 1846 में जम्मू कश्मीर राज्य का एक अंग बन गई और राजवंश के लोग राजपुरी छोड़ कर पहले रेहलु गए किन्तु बाद में उन्होंनें बजीरावाद के अन्तर्गत समन भुर्ज को अपना आवास बनाया।

डोगरा राजाओं ने राजपुरी का नाम बदलकर रामपुर किया किन्तु यह नाम सरकारी पत्रों में तो चला किन्तु जन साधारण में इस का प्रचलन न हो सका। इसका नाम 'राजौरी' नाम लोगों को सहज लगा। राजौरी कई बर्षों तक डोगरा शासन काल में जिला रियासी की तहसील रही किन्तु आज़ादी के बाद जब नये जिले गठित हुए तो 'राजौरी' को जिला बनाया गया। आज यह नगर जिला का मुख्यालय है।

विदेशी पर्यटक और राजपुरी- राजपुरी को देश-विदेश के कई पर्यटकों ने देखा और उसका उल्लेख अपने यात्रावृतों में किया। राजपुरी देखने वाले पहले विदेशी पर्यटक चीन के बौद्ध भिक्षु हयुन्साग थे जो सन् 633 के करीब पुंछ से होते हुए इस नगर में आए। किन्तु उन्होंने इस नगर का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। सन् 1036 ई. में अल्वरुनी ने सुलतान महमूद के पुत्र सुलतान मसूद के साथ इस नगर की यात्रा की थी। अल्वरुनी ने इसका

उल्लेख 'इंडिका' में किया है। सत्तारहवीं सदी में अंग्रेज पर्यटक सर रिचर्ड टेम्बल ने राजौरी को देखा तो इस का किला जीर्णावस्था में था। सन् 1888 ई. में अंग्रेज यात्री बोगल भी राजौरी आया। उसने डंनीधार के किले के विषय में लिखा कि वह बन कर तैयार हो चुका था। सन 1870 में वीट्स ने राजौरी का किला देखा तो वह निर्माणाधीन था। इनके अतिरिक्त मुस्लिम इतिहास में भी राजौरी का विस्तृत वर्णन हुआ है।

नगर की सरंचना:- राजपुर नगर कई बार आवाद हुआ कई बार उजड़ा और कई बार आग की भेंट चढ़ा। पुरावेताओं का मत है कि पुराना राजपुर मलवे के ढेर के नीचे है और जो अब दिखाई दे रहा है वह बाद का है। मुस्लिम कालीन इतिहास का अध्ययन करें तो पता चलता है कि राजौरी की संरचना एक दुर्गनगर के रुप में की गई थी। नगर तवी नदी के पश्चिमी तट पर टीले पर बसा था जो नदी तट से अनुमानत: 75 मीटर ऊँचा था। नगर की सुरक्षा के लिए प्रस्तर शिलाओं से निर्मित एक दीवार थी। नगर में प्रवेशार्थ पाँच डयोढ़ियाँ थी जिन में सबसे बड़ी और मुख्य डयोढ़ी इन्द्रकोट थी। इसे नगर का सिंह द्वार माना जाता था। अन्य डयोढ़ियों के नाम अलमोट तथा नावन आदि थे। एक डयोढी वर्तमान बस अड्डा के निकट और एक पुरानी सराय के निकट थी। नगर में जराल राजाओं के पाँच महल थे जिन में खूनी महल के पुरावशेष आज भी देखे जा सकते हैं। अन्य महल मलवे का ढेर बन चुके हैं। कहते हैं कि कुछ महल मुगल-सम्राटों के लिए बने थे। वे जब कश्मीर जाते तो कुछ दिन राजौरी भी रूकते। राजौरी में एक सुदृढ़ किला भी था जो अब ढेर है।

नया राजौरी नगर सन् 1846 की देन है। अब यह एक विकसित नगर के रुप में द्रष्टव्य है। बस अड्डा से लेकर बलिदान भवन तक एक किलो मीटर लम्बा बाज़ार है जिसके दोनों ओर सजी धज्जी दूकानें है। बाज़ार के साथ-साथ गलियाँ हैं जिनके दोनों ओर आकर्षक मकान हैं। राजौरी अब कई मुहल्लों में विभाजित है।

जन-जीवन:- राजपुर जो पहले खस नगर कहलाता था और खस संस्कृति का केन्द्र था अब बहुत बदल गया है। पाल वंशीय राजाओं के शासनकाल में यहाँ एक समन्वित संस्कृति विकसित हुई उनके बाद जराल आए। जराल पहले हिन्दू थे बाद में इस्लाम में आए थे। अत: उनके घरों में

हिन्दू और मुस्लिम दोनों परम्पराओं को निभाया जाता था। राजाओं का एक नाम हिन्दू और दूसरा मुस्लिम होता था, अत: दोनों सम्प्रदायों के लोग उन्हें अपना समझते थे। हिन्दू और मुसलमानों में रोटी और वेटी के सम्बन्ध थे। हिन्दूओं की लड़कियाँ मुसलमानों के घर जाती थी और मुस्लिम परिवारों की वेटियाँ हिन्दू परिवारों में पहले की भाँति व्याही जाती थी। इनके रीति-रिवाज सांझे थे। पर्व और त्योहार सांझे थे। कुल-पुरोहित, कुल देवता को वैसा ही दोनों ही पूजते थे और मुस्लिम रानियों से मिलने की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता थी। जहाँगीर 1620 ई. में राजौरी आया। उसने तुज़क-ए-जहाँगीरी में लिखा:- 'यहाँ का राजा चाहे मुसलमान है किन्तु उसके वंश की परम्पराएँ हिन्दुओं जैसी हैं।' जहाँगीर ने यह भी लिखा है कि हिन्दुओं और मुसलमानों में जो रोटी-बेटी का सम्बन्ध था, उसे उसने अपने फरमान से बंद करवा दिया। किन्तु फरमान के बावजूद भी यह बन्द न हुआ और समन्वित संस्कृति का प्रचलन बना ही रहा।

राजौरी ध्यान सिंह तथा इच्छा कुमार के लेख राम पुर राजौरी ते जन जीवन के अनुसार- 'राजौरी गुज्जरों का देश है। यहाँ भी वही गुज्जर बसते हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि वे राजपुताना तथा गुजरात से आकर बसे थे। इनके देश को गोजर देश कहा जाता था। राजस्थान सिन्ध, गुजरात, इनका देश माना गया है। इनकों महाभारत काल से ही उतरी तथा पश्चिमी पहाड़ों में शरण लेना पड़ी। ये गुज्जर यादव जाति से सम्बन्ध रखते हैं। इन में कोई चौहान है कोई परमार है। इन्होंने गुज्जर संस्कृति और सम्यता को सम्भाल कर रखा है। इन का खान-पान तथा लिवास डुग्गर के अन्य गुज्जरों से मिलता जुलता है। ये पशु यथा भेड़-वकरियों को पालते हैं तथा कृषि कर्म भी करते हैं। ये सुन्दर, मोहक तथा परिश्रमी हैं। गुज्जरों के अतिरिक्त यहाँ डमाल, माले, ठक्कर, मगराल, मनराल, मलक, जराल राथर, मन्हास, चिब्ब बसते हैं। इनका रहन-सहन डोगरों जैसा है। इन पर कश्मीरियों का प्रभाव कम है। ये लोग तहमत, शलवार तथा छोटे पौहचे वाला पाजामा पहनते हैं। कुरता उसके ऊपर वास्काट तथा सिर पर पगड़ी बांधते हैं। टोडा-साग तथा लस्सी इन की खुराक है। चाय देसी नमकीन पीते हैं। पीरों-फकीरों तथा मंत्र-तंत्र में इन का विश्वास है। ये मांसाहारी हैं तथा नसवार का नशा करते हैं। इनका आम जीवन सीध ा सादा तथा निष्कपट है। काम में व्यस्त रहते हैं और मैले-कुचैले वस्त्र पहनते हैं। विवाह में ढोल आगे-आगे बजाते हैं। दुल्हा को घोड़े पर चढ़ाते हैं और बाराती पैदल चलते हैं। इनका विवाह सादा होता है।

किन्तु राजौरी में कई बाहरी लोग भी अब आ बसे हैं। इनमें ब्राह्मण क्षत्रिय तथा महाजन सभी हैं। जराल राजाओं ने गुजरात, बजीरावाद, ऐमनावाद तथा कश्मीर से व्यापारी, शिल्पकार भी बुला कर बसाये। जराल राजाओं के बजीर हिन्दू थे जिन में मेहता अजब सिंह, महता सुलतान सिंह तथा शेर सिंह प्रसिद्ध हुए हैं। जमीन के लगान की उगराही मोदी करते थे जो अब राजौरी में ही बसते हैं। राजौरी का चावल बहुत ही स्वादिष्ट होता है, अतः यहाँ ध ाान की खेती की जाती है। घी का प्रयोग बहुत होता है किन्तु राजौरी में अब जो नई संस्कृति का दौर आरम्भ हुआ है उससे सभी प्रभावित हैं। मकानों का स्थापत्य, कपड़ों का फैशन, खान-पीन तथा घर का सामान सभी बदला है। शहरी जीवन में बहुत बड़ा अन्तर देखा जा रहा है।

सझांली तथा लेत्री- ये कृषि कर्म सम्बन्धी सामूहिक काम हैं जिन्हें हिन्दू मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के लोग मिलकर करते हैं। धान की खेती की बुहाई तथा लगाई करते संझाली प्रथा का निर्वाह किया जाता है। लोग खेतों में आ जाते हैं, ढोल बजते हैं और सामूहिक रुप से खेती का काम आरम्भ हो जाता है। इस अवसर पर गीत गाने की प्रथा भी है। मक्की फसल की गुडाई में भी संझाली प्रथा का निर्वाह किया जाता है।

घास की कटाई को त्रेली कहते हैं। सर्दियों में पशुओं के लिए घास इकट्ठा करने लोग समूह में घास काटते हैं और गीत गाते हैं। ढोल इस अवसर पर भी बजाया जाता है। सायंकाल को घर का स्वामी अपने साथियों को भोज पर आमंत्रित करता है और उन्हें खाने में चावल, टोडा, घी और शक्कर परोसता है।

राजौरी नगर में अधिकांश घर चाहे हिन्दुओं के हैं किन्तु वहाँ सांझी संस्कृति का प्रचलन आज तक है। सन 2001 की जन गणना के अनुसार राजौरी की जनसंख्या 33655 भी जिस में 19388 पुरूष और 14267 महिलाँए थीं।

भाषा-बोली और साहित्य-

राजौरी में मुख्य रुप से तीन ही भाषा वोलियों का प्रचलन है और वे हैं - पहाड़ी, गोजरी और डोगरी। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, पुंछी का भी प्रयोग होता

है। राजौरी की पहाड़ी पुंछी पहाड़ी से कुछ भिन्न इसलिए है कि पुंछी पर लहँदा का प्रभाव है जबकि राजौरी की पहाड़ी पर डोगरी का प्रभाव अधिक है। इसके अतिरिक्त यहाँ गोजरी को भी विशेष महत्व प्राप्त है।

राजौरी की पहाड़ी का लोक साहित्य बहुत ही समृद्ध है। इसमें चन्न, टप्पा, विरहगीत, संस्कार गीत, कुंजो, कैंची, ढोलना तथा श्रमगीतों की भरमार है। इसी प्रकार गोजरी में सपाई, डोली, वेसाख, कैंची, माहियो तथा बनजारो का प्रचलन है।

राजौरी पहाड़ी का एक गीत उदाहरण के रुप में प्रस्तुत है:-

1. मैं जुलेआं नौकरी माड़ी अम्बड़िए।
   नूंह दा रक्खीं ख्याल
   भला मुख लपड़िए
   नूंह दा रक्खी ख्याल
2. बारां बरेआं मुड़ेआ नी साहड़ीए अम्बड़िए
   नूहँ तां दिसदी नाहीं
   भला मुख लपड़िए
   नूंह तां दिसदी नाहीं।
3. पिछली कोठड़ी में बड़ियां माहड़िए अम्बड़िए
   रत काहदी पेइ
   भला मुख लपड़िए
   रत काहदी पेइ।
4. तुं कियां गच्छे माहड़िया बचड़ेया
   देसेह होर करां
   भला मुख लपड़िए
   देसेह होर करां।

राजौरी में पहाड़ी, गोजरी, उर्दू और कश्मीरी में लिखने वाले लेखकों की एक लम्बी पंक्ति है जिस में शाहवाज़ राजौरवी, इकवाल मलिक, नसीम अख्तर, परवीन अख्तर , गुलाम हुसैन रफीक , हुसैन खान, मीरमुनीर हुसैन, मिर्जा अब्दुल रशीद, मुहम्मद द्दीन भांडे, सरदार मज़ीद अहमद खान, नज़ीर मसूदी, नसार हुसैन खान, शब्बीर अहमद खान, सलीम मलिक के नाम उल्लेखनीय हैं। पहाड़ी साहित्य के विकास के लिए पीर पंचाल कल्चरल

फोरम तथा जे.एंड.के पहाड़ी कल्चरल फोरम सेवारत हैं।

राजपुरी के दर्शनीय स्थल- राजौरी इतिहास में एक चर्चित नगर रहा है, अत: यहाँ कई दर्शनीय स्थल हैं जिन में निम्न उल्लेखनीय हैं:-

डंनीधार का किला- यह किला राजौरी के पूर्वोतर में तीन किलोमीटर की दूरी पर सैलानी नाला के तट से सौ मीटर की ऊँचाई पर डंनीधार की पहाड़ी ढलान में निर्मित है। यह किला चारों ओर से पत्थर की दीवार से घिरा है। इस का प्रवेश द्वार किले की पूर्वी दीवार में है। किले के अन्दर पत्थर के दोमंजिले निवास कक्ष बने हैं जिन के आगे खुले और विशाल बरामदे हैं। इस का शस्त्रागार विशाल और भव्य है। किले के बुर्जों के शिखर पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ हैं। मुगल शैली में बना यह किला राजौरी का गौरव है।

जामा मस्जिद तथा अन्धेर कोट की मस्जिदें:-

मुस्लिम वास्तुकला का जो सुधरा हुआ रुप राजपुरी में इन मस्जिदों में देखा जा सकता है वह इस क्षेत्र में अन्य कहीं द्रष्टव्य नहीं है। जामा मस्जिद मुगल कालीन है और जहाँगीर के राजपुर में आगमन के उपलक्ष्य में बनाई गई थी। यह मुगल वास्तुकला का सुन्दर नमूना है। यह मस्जिद भीतर से तीन भागों में विभाजित है और प्रत्येक का गुंबद आकर्षक है। अन्धेर कोट की मस्जिद का बरामदा 290 फुट लम्बा और 15 फुट चौड़ा है। यह एक दर्शनीय भवन है।

राधाकृष्ण मंदिर- यह विलक्षण और अद्‌भुत मंदिर सैलानी नाला के साथ एक ऊँचे टीले पर बना है जो दूर-दूर से दिखाई देता है। मंदिर नागर शैली में है और इसका कलश बहुत ही आकर्षक लगता है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार है और इसमें एक सिंहासन पर राधाकृष्ण की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इस मंदिर का निर्माण महाराजा गुलाब सिंह के दासी पुत्र मिंया हट्‌ठु सिंह ने सन् 1854 ई. में करवाया।

बलिदान-भवन- यह गौरवमय भवन राजौरी के उन बलिदानी पुरुष नारियों और बच्चों की स्मृति में बनाया गया है जिन्होंनें पाकिस्तानी लुटेरों और बर्बरों का बन्दी बनने की अपेक्षा उनसे लड़ कर आत्म बलिदान का संकल्प

लिया था। इस भवन में दीपावली और वैसाखी के पर्वों पर समारोह आयोजित होते हैं और शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है।

थन्ना मंडी

स्थिति:- राजौरी का पर्यटन स्थल तथा ऐतिहासिक उपनगर थन्ना मंडी राजौरी से केवल 24 कि.मी. की दूरी पर उतर में अवस्थित है। यह अति सुन्दर और रमणीक स्थान है।

नाम करण:- थन्ना मंडी के नामकरण पर विद्वान एक मत नहीं है। कई लेखकों तथा इतिहासकारों का मत है कि थन्ना मंडी राजौरी राज्य के अन्तर्गत एक छोटा राज्य था। इस राज्य की जो राजधानी थी वह थन्ना मंडी की पहाड़ी के ऊपर थी। उस पहाड़ी को आज भी राजधानी कहते हैं। वहाँ प्राचीन भवनों के पुरावशेष विखरे पड़े हैं। जनश्रुति है कि मल्लिका नूर जहाँ ने इस राज्य के सरदार को थन्ना मंडी में इसलिए मरवाया कि वह इरान से आई उसकी एक दासी के प्रेम में बंधा था। इस घटना के बाद मुगलों ने इस स्थान पर एक थाना स्थापित किया। यह स्थान पहले से ही व्यापार की मंडी था, अतः इस का नाम थन्ना मंडी प्रचलन में आया। एक मत यह है कि थाना से अभिप्राय ठहरने का स्थान है। कश्मीर जाने वाले यात्री राजौरी से चलकर रात को यहाँ ठहरते थे। अतः ठहरने का स्थान होने के कारण इसका नाम पहले थाना पड़ा। यहाँ छोटी-मोटी मंडी भी थी अतः इसे थाना मंडी कहा जाने लगा। थाना मंडी से ही थन्ना मंडी विकसित हुआ जो आज भी प्रचलन में है। एक मत यह है कि मुगलों की सुरक्षा के लिए यहाँ एक 'थाना' था अतः इसे थाना या 'थन्ना' कहा गया।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि:- मुगलों से पूर्व थन्नामंडी का इतिहास ज्ञात नहीं है। जो थोड़ा-बहुत ऐतिहासिक वृत मिलता है वह जनश्रुतियों और दन्त कथाओं पर आधारित है। मुगल काल में इस स्थान को महत्व तब मिला जब मुगल राज वंश के लोगों के विश्रामार्थ यहाँ एक बड़ी सराय बनाई गई। इस सराय में राज परिवार के लोगों की सुविधा का ध्यान भी रखा गया। वैसे थन्ना मंडी राजनैतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से राजौरी का ही एक अंग है। आज इसकी स्थिति यह है कि यह जिला राजौरी की तहसील है और तहसील का मुख्यालय होने के कारण यहाँ कई राजकीय कार्यालय खुले हैं जिन के कारण

इस का विकास हो रहा है।

जन-जीवन- थन्ना मंडी मुख्य रुप से पहाड़ी संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहाँ गुज्जरों के भी कई घर हैं अतः गोजरी परम्पराओं का प्रचलन भी देखा जा सकता है। यह उपनगर पहाड़ी ढलान में है, अतः सीढ़ा नुमां लगता है। लोगों के कुछ घर कश्मीरी शैली में और कुछ पहाड़ी शैली में हैं। खान-पान तथा वेश-भूषा पहाड़ी तथा गोजरी है। सिर पर पठानी पगड़ी लम्बा कुता और सलवार पहने स्थानीय निवासियों को देखा जा सकता है। पुरुषों में दाढ़ी रखने का रिवाज है। थन्ना मण्डी का चावल बहुत बढ़िया माना जाता है, अतः इस का निर्यात भी होता है। दालों में राजमाष अधिक होता है। मक्की की फसल आशानुकूल होती है। थन्ना मंडी के साथ ही एक नाला प्रवाह मान है, अतः खेतों में सिंचाई भी की जाती है। जन संख्याः- सन 2001 में थना मंडी की आबादी 3475 थी जिस में 1841 पुरूष और 1634 महिलाएँ थी।

लेत्रीः- थन्ना मंडी के लोक-समाज में सझांली तथा लेत्री की प्रथा का प्रचलन आज भी है। लोगों में परस्पर सहयोग की भावना है अतः वे इकट्ठे मिलकर खेतों की सिचाई करते हैं, धान लगाते हैं और घास काटते हैं। गुड़, शक्कर, घी चावल को ये बहुत पसंद करते हैं। लेत्री में रात्रि-भोज में सहयोग देने वालों को भोज दिया जाता है।

पर्यटन स्थल- थन्ना मंडी को एक पर्यटन स्थल माना जाता है। यह अति सुहाना उपनगर है। यहाँ के खेत, नालों में बहता पानी, स्वच्छ तथा सुस्वादु पानी, ठंडी वायु के झोंके, पर्वतों के मन मोहक दृश्य पर्यटकों को सहज ही अपनी ओर खींचते हैं। इस स्थान का तापमान गर्मियों में भी 32 डिग्री सेलसियस से अधिक नहीं होता अतः यह उपनगर पर्यटकों को बरबस अपनी ओर आकर्षित करता है। यहाँ पर्यटकों के लिए जो सरकारी डाक बंगला है वह साफ-सुथरा और आधुनिक सुविधाओं से युक्त है।

भाषा, बोली और साहित्य-थन्ना मंडी की मुख्य दो ही बोलियाँ हैं- पहाड़ी और गोजरी। स्थानीय साहित्यकारों ने इन में लिखना भी आरम्भ किया है। गोजरी में यह विशेषता है कि इसमें अकारान्त को ओकारान्त में बदला जाता है। सम्बन्ध कारक में गा, गे गी का प्रयोग होता है।

थन्ना मंडी में साहित्य तथा संस्कृति के विकास के लिए एक संस्था गठित की गई है जिस का नाम पीर पंचाल कल्चरल फोरम थन्ना मंडी है। शाहवाज़ रजौरवी थन्ना मंडी के लोकप्रिय कवि माने जाते हैं। इन की कविता का एक अंश निम्न है:-

खावां नी कुलियाँ सड़न फिर साह्लसो कदूं।
फुल्लां नि सोल सोच तुस हुन पालसो कदूं।
अपने सफर ने राही ओ कुश जागने रवो
नसनी रुतां ना काफला हुन बाह्लसो कदूँ।

दर्शनीय स्थलः- मुगलों ने कश्मीर जाने के लिए मुगल मार्ग में जिन सरायों का निर्माण किया उन में उल्लेखनीय हैं- चिंगस सराय। फतह पुर सराय, सराय चंडी मढ़, सराय पौशाना और सराय थन्ना मंडी। इन में सराय थन्ना मंडी अब भी अपने मूलरुप में खड़ी है। मुगल वास्तु कला का यह सराय अति सुन्दर नमूना है। पूर्वोन्मुख इस सराय के भीतर कई कक्ष हैं और उनके सामने एक खुला आयताकार प्रांगण है। इस में गुसल के लिए ठंडे तथा गर्म पानी की व्यवस्था थी। अव इस सराय में शिक्षा केन्द्र हैं।

शाहदरा शरीफ- संत बावा गुलाम शाह की एक दरगाह थन्ना मंडी से छह कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह जिला राजौरी का सब से बड़ा धार्मिक पर्यटन स्थल माना जाता है। यहाँ सभी धर्मों के लोग बड़ी श्रद्धा और आस्था से आते हैं और कहते हैं कि उनके मन की मुरादें बावा पूरी करते हैं। शाहदरा शरीफ में यात्रियों के ठहरने के लिए कई कक्षों पर आधारित आधुनिक शैली में बने विश्रामालय हैं। किन्तु खानकाह केवल एक कक्ष पर ही आधारित है जिसके मध्य में बावा की कब्र है। बावा के विषय में कहा जाता है कि वह सैय्यद परिवार से थे। उनका जन्मस्थान सैदियाँ रावलपिंडी में हुआ था। वे खुदा की इवादत में राजौरी के पहाड़ों की ओर आए। इन स्थान में उन्होंने कई वर्षों तक सच्ची इवादत की जिस कारण उन में कई शक्तियों का संचार हुआ जिस का उपयोग उन्होंने मानव सेवा के लिए किया। उन केनाम पर अब एक विश्व विद्यालय संस्थापित है।

इसके अतिरिक्त एक शिव मंदिर और साई बलीदाद की भटियाँ में स्थित दरगाह इस उपनगर के पावन स्थल हैं।

थन्ना मंडी एक तहसील का मुख्यालय होने के कारण अब हर प्रकार से विकासोन्मुख है।

वाद्दिवास (बुद्दल)

राजौरी से 56 कि.मी. उतर में बसा यह पहाड़ी उपनगर ऐतिहासिक पुस्तकों में चर्चित रहा है। राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर की रानी दिद्दां का सेनापति तुंग वाद्दिवास का था। इस स्थान का उल्लेख मुगल इतिहास, खालसा इतिहास तथा डोगरा इतिहास में भिन्न-भिन्न प्रसंगों में हुआ है।

वाद्दिवास को आज बुद्दल नाम से अभिहित किया जाता है। कई विद्वानों का मत है कि बुद्दल नाम से यह आभास मिलता है कि यहाँ कभी कोई बौद्ध स्मारक रहा होगा।

बुद्दल राजतरंगिणी के अनुसार खस जाति का केन्द्र था। तुंग स्वयं भी खस था, अतः इस नगर को खस संस्कृति से जोड़ना किसी भी दृष्टि से अनुपयुक्त नहीं है।

किन्तु वर्तमान स्थिति यह है कि बुद्दल अब गुज्जर संस्कृति का मर्कज़ है। यहाँ उन मुसलमानों की संख्या भी पर्याप्त है जिन्होंने धर्म परिवर्तन तो किया किन्तु हिन्दू परम्पराओं का परित्याग नहीं किया। इन्हें स्थानीय लोग 'बौद्दले' कहते हैं। पहले ये ठक्कर राजपूत थे और मुगलकाल में मुसलमान बने। इनकी शारीरिक सरंचना खसो से मिलती जुलती है, अतः लगता है कि ये यहाँ के खसों के वंशज रहे होंगे। इनकी भाषा भी अलग है जिसे 'बौद्दली' कहते हैं। बौद्दली पहाड़ी भाषा से कुछ भिन्न है और इसकी सहायक क्रियाएँ भिन्न हैं।

बुद्दल एक समतल मैदान में बसा है। इसके चारों ओर धान के खेत हैं जिस से इसका प्राकृतिक परिवेश अति सुन्दर है।

बुद्दल का एक नाम 'राज नगर' भी है। सम्भवतः पहले यहाँ कोई अलग राज्य रहा हो।

बुद्दल में दो सौ के लगभग घर तीस के करीब दुकानें हैं। यहाँ एक किला, एक शिव मंदिर और एक गुरुद्वारा महाराजा रणजीत सिंह के समय का बताया जाता है। बुद्दल के किला का वर्णन वीट्स ने ए गज़ट आफ कश्मीर में किया है। बुद्दल अब जिला राजौरी के अनर्तगत एक तहसील का मुख्यालय है। यहाँ कई सरकारी कार्यालय और शिक्षाकेन्द्र हैं जिस कारण इस उपनगर में चहल पहल रहती है।

नौशहरा

यह उपनगर राजौरी तवी के दायीं ओर एक समतल मैदान में बसा है। इसकी भौगोलिक स्थिति अक्षांश 33.15 और रेखांश 74^0.18 है। यह नगर राजौरी के पूर्व दक्षिण में 21. कि.मी. की दूरी पर है।

नौशहरा राजौरी राज्य का एक भाग रहा है, अतः राजौरी का इतिहास ही नौशहरा का इतिहास है। नौशहरा का विशेष महत्व यह रहा है कि यहीं से कोटली और मीरपुर को मार्ग जाता था, अतः यह पर्यटकों, यात्रियों तथा सेना का भी एक पड़ाव था। सांस्कृतिक दृष्टि से यह डुग्गर संस्कृति का एक अंग है निः सन्देह पठोहारी का आंशिक प्रभाव इसकी बोली में है।

जन संख्याः- सन 2001 में इस कस्बा की जनसंख्या 4512 भी जिस में 2403 पुरूष और 2109 महिलाएँ थी।

नौशहरा जिला राजौरी की एक तहसील का मुख्यालय है। यहाँ कई सरकारी कार्यालय हैं जिस से इस नगर का वैभव बढ़ा है। लोगों का जीवनस्वर सामान्य है। बेश-भूषा, खान पीन, रीतिरिवाज की दृष्टि से यह नगर सुंदरवनी की टक्कर का है। यहाँ की जन संख्या भी अच्छी है। मुसलमानों के नगर में घर कम हैं। नौशहरा में कई हिन्दू मंदिर हैं, गुरुद्वारा और मस्जिद भी है। नौशहरा से 10 कि.मी. की दूरी पर ऐतिहासिक कलसिया मंदिर और तेरह कि.मी. की दूरी पर मंगला माता की गुफा है जिस के दर्शन करने हज़ारों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं।

नौशहरा का ऐतिहासिक भवन-दुर्गनुमा सराय

यह सराय नौशहरा के दक्षिण पूर्व में तवी नदी के दायें किनारे पर

निर्मित है। इसका स्थापत्य मुगल शैली से प्रभावित है। इसके निर्माण में पक्की ईंटों का प्रयोग हुआ है। इसकी डयोढ़ी मेहरावी है। वीट्स के अनुसार इस की दीवारों के अन्दर मेहरावी खिड़कियाँ हैं जो मध्य एशिया की वास्तुकला की ओर ध्यान दिलाती हैं। यह सराय पहले मुगल-बादशाहों के कश्मीर जाने का एक पड़ाव थी। डोगरा शासनकाल में यह सराय नौशहरा के प्रशासक का कार्यालय बनी। इस सराय के अन्दर राजा ध्यान सिंह के पुत्र मिंया जवाहर सिंह का महल था जो अब ध्वस्त है। यह सराय लगभग डेढ़ एकड़ भूमि में परिसीमित है। इस के अन्दर तीन महत्व पूर्ण भवन थे- कोषालय, थाना और वारुद खाना। किन्तु अव यह ऐतिहासिक भवन रुग्णा वस्था में है। नौशहरा का मौसम राजौरी से गर्म है।

भजवाल (सुंदरवनी)

स्थिति:- यह उपनगर जम्मू के पश्चिम-दक्षिण में जम्मू से 60 किलोमीटर की दूरी पर एक समतल मैदान में बसा है। जम्मू-पुंछ सड़क इससे होकर गुजरती है, अत: यह अब एक महत्वपूर्ण पढ़ाव बन गया है।

नामकरण:- जनश्रुतियों के अनुसार इस का संस्थापक भज्जो नामक कोई स्थानीय ज़मीदार था। उसी ने अपने नाम पर इस का नाम भजवाल रखा। भजवाल एक छोटा सा राज्य भी था। इस राज्य की पहली राजधानी नगर या नगरी थी जो कालीधार में थी। सन् 1947 में कवाईलियों के आक्रमण से यह नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया। सन् 1947 से बहुत पहले भजवाल राजाओं ने नगरी से अपनी राजधानी यहाँ स्थानान्तरित कर ली थी। अत: यह नगर बहुत पहले से इस राज्य या जागीर का केन्द्र था।

सन् 1947 के बाद कोटली, मीरपुर और भिम्बर आदि से जो शरणार्थी भजवाल में आए उन्हें शिविरों में भजवाल की 'सुंदरां वाई' के निकट ठहराया गया। इसी शिविर के कारण इस स्थान का नाम सुंदरवनी प्रचलित हुआ। सुंदरा बावली के विषय में प्रचलित है कि इसका निर्माण राजा सालवान की पत्नी तथा पूर्णभक्त की माँ सुन्दरां ने करवाया था। एक मत यह है कि इस बावली का निर्माण 'सुन्दर' नामक एक सरकारी अधिकारी ने 18वीं सदी में करवाया। बावली के निकट एक वन्य स्थली उगी जिस कारण इस स्थान का नाम 'सुंदरवनी' पड़ा। यह मत अधिक तर्क संगत तथा स्वीकार्य लगता है

क्योंकि बावली के स्थापत्य से लगता है कि उसका निर्माण अधिक से अधि
क दो-सौ वर्ष पहले हुआ होगा।

इतिहासिक पृष्ट भूमिः- भजवाल के शासक 'राय' उपाधि धारी थे। उनकी वशावली तो प्राप्त नहीं हो सकी किन्तु बताया जाता है कि उनका सम्बन्ध जराल कबीले से था। भजवाल का अन्तिम राजा राय गुलाम हुसैन था। वह जम्मू-कश्मीर प्रजा-सभा का सद्स्य भी था। सन् 1947 में भारत विभाजन के बाद वह पाकिस्तान चला गया।

उसके शासन काल में भजवाल का जिला मीरपुर और तहसील भिम्बर थी। स्वतन्त्रता के बाद जब नये जिलों का गठन हुआ तो सुन्दरवनी को जिला राजौरी के अन्तर्गत तहसील का दर्जा दिया गया। आज सुन्दरवनी तहसील का मुख्यालय है।

लेखकों की दृष्टि में सुन्दरवनी- डोगरी के प्रसिद्ध लेखक बालकराम बराल के शब्दों में- 'भजवाल के इलाके की विशेष बातें कुछ इस प्रकार थीं वे बढ़िया नसल की घोड़ियों की सवारी करते थे। दंगल तथा बैसाखी के मेले में सम्मिलित होते थे। भांगड़ा उनका प्रिय नृत्य था। गट्टी, मुदगर उठाना, बीनी पकड़ना, जोड़ी बजाना इनको प्रिय था। भजवालियों की मूँछ और पगड़ी सारे इलाके में प्रसिद्ध थी। इनसे देवी और बटाला के चिब भी डरते थे। इस इलाके के कवित, वारे तथा कारिकाएँ बहुत प्रसिद्ध थी। मरासी बहुत प्रसिद्ध थे जो सभी के कुर्सी नामे जानते थे। भजवाल में जरालों की आवादी भी थी।

लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही दयनीय थी। जन साधारण जागीरदारी तथा सरमायादारी शासन के नीचे दबे हुए थे। कोई भी सामान्य व्यक्ति पगड़ी बांधकर घोड़ी पर सवार होकर 'राय' के आगे से नहीं गुजर सकता था। बाँसुरी तथा जोड़ी भी नहीं बजा सकता था।

नगर की संरचनाः- सन 1947 ई0 में राय गुलाम हुसैन पाकिस्तान भाग गया तो भजवाल उजड़ गया और उसके स्थान पर उसके साथ ही एक नया नगर उभरा जिस को नाम दिया गया सुन्दरबनी। यहाँ पहले नन्द कुमार ने 1947 में पहला मकान बनाया और उनके बाद देखते ही देखते यहाँ बहुत बड़ी बस्ती आवाद हो गई। एक छोटा बाजार भी बजूद में आया जिसके दोनों

ओर दूकाने हैं। बाजार लगभग पौने किलोमीटर लम्बा है। आवादी बढ़ी तो गलियाँ भी बनी और नगर मुहल्लों में विभाजित हुआ। सरकारी कार्यालय खुले तो इसका रुप और स्वरूप ही बदल गया। आज स्थिति यह है कि सुन्दरवनी तहसील का सबसे बड़ा नगर है। नगर में चार मंदिर एक हायर सैकंड्री स्कूल एक गर्लज़ स्कूल हस्पताल और डाक बंगला है।

जनसंख्या :- इस उप नगर की सन 2001 में कुल आबादी 4088 थी।

जन-जीवन- 'बराल' के अनुसार इस क्षेत्र में अनेक जातियों के लोग बसते हैं तथा उनकी अपनी अपनी कुल रीति-रिवाज़ है। अपने-अपने कुल देवता हैं। बावा मई मल्ल, बावा नारसिंह, वावा मसान, काली डब्ब आदि स्थानीय देवते हैं।

बैसाखी का मेला सुंदरवनी तथा कांगड़ी स्थान में लगता है। नराते भी मनाये जाते हैं और राम लीला भी होती है। चौदह पौष को शहीदों का दिवस मनाया जाता है। प्रसिद्ध लोकनाच भाँगड़ा है। जातर भी होती है। गुग्गा नवमीं को 'गुह्गैल' चढ़ती है। लोहड़ी का पर्व भी मनाया जाता है।

विवाह शादियों, गमी-खुशी, मेलो पर्वो और त्योहारों पर धी तथा दामाद को खाना खिलाया जाता है।

सुंदरवनी में कुछ अन्ध विश्वास भी प्रचलित हैं- यथा बिल्ली का रास्ता काटना, कार्यारम्भ करते नींछ आना, सायंकाल के समय मुर्गा का बोलना, कुत्ते का रोना, घर की छत के ऊपर उल्लू बोलना, काम पर जाते किसी का नंगे सिर दिखाई देना आदि।

रेशम उत्पादनः- रेशम उत्पादन में सुंदरवनी का प्रथम स्थान है। जम्मू कश्मीर में सुंदरवनी के निवासी रेशम के कीड़े बेच कर इतना धन कमा लेते हैं जिससे इनकी आजीविका चल सकती है।

डुग्गर का छोटा केरलः- शिक्षा के क्षेत्र में सुंदरवनी बहुत आगे बढ़ गया है और साक्षरता की दृष्टि से राजौरी क्षेत्र में इसका पहला स्थान है। इसी कारण इसे डुग्गर का केरल भी कहते हैं। यहाँ एक डिग्री कॉलेज, एक वी.

एड कॉलेज एक संस्कृत काँलेज तथा दर्जनों की संख्या में अन्य शिक्षा केन्द्र हैं।

भाषा और साहित्यः- सुन्दरबनी में डोगरी बोली जाती है। डोगरी भाषा और साहित्य के विकास के लिए स्थानीय साहित्य कारों ने एक संस्था का गठन भी किया है।

सुंदरबनी में जो साधक साहित्य सृजन में साधनारत हैं उन में बालकराम बराल तथा ओमप्रकाश भजवाली का नाम अग्रणी है।

ज्योड़ियाँ

स्थितिः- यह उपनगर चन्द्र भागा नदी के पश्चिमी तट से तीन कि.मी. की दूरी पर एक समतल मैदान में बसा है। अखनूर से इसकी दूरी 17 कि.मी. है। यह खौड़ पलांवाला और छम्ब क्षेत्र में सबसे बड़ा उपनगर है।

नामकरणः- इस स्थान का आदि नाम 'रक्ख टोक' था। इसके निकट पाँच कि.मी. की दूरी पर ढोक खालसा था जिस में गुज्जर रहते थे। यह स्थान खाली था। गुज्जर मवेशी चराने आते थे। महाराजा प्रतापसिंह के शासन काल में प्रताप नहर बनी तो इस वीरान भूमि का भी मूल्य बढ़ा। लोगों ने ज़मीन खरीदी और मकान बनाये। यहाँ पलां के दो जुड़वा वृक्ष भी थे। वे बहुत ही पुराने थे। लोग उस स्थान को जोड़वा कहते थे। सतगुर प्रकाश वाली के अनुसार जोड़वां से ज्योड़ियाँ शब्द विकसित हुआ।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमिः- इस क्षेत्र में बहुत पहले 'विक्रम' नामके राणा का राज्य था। उसी ने वक़ौल ग्राम बसाया। ज्योड़ियाँ का शासक भी वही था। बाद में अखनूरिये इस क्षेत्र के शासक बने। डोगरा शासन काल में एक मुस्लिम परिवार उभरा। उसी परिवार का गुलाम मुस्तफा सफेदपोश इस क्षेत्र का संरक्षक बना। वह प्रजा सभा का सद्स्य भी था। सन 1947 में बटवारे के बाद ज्योड़िया के मुसलमान जो बहुमत में थे पाकिस्तान चले गए और चिम्भाल के शरणार्थी हज़ारों की संख्या में इस क्षेत्र में आ बसे इससे ज्योड़ियाँ का बहुत विकास हुआ। कलीठ के शाहुकारों के इस नगर में बसने से इसका कायाकल्प हुआ। सन् 1947, 1962 और 1971 में इसे क्षति भी पहुँची।

जन संख्या :- सन 2001 में इस कस्बा की जनसंख्या 3630 थी। जिस में 1840 पुरूष और 1790 महिलाएँ थी।

जन-जीवन- यहाँ चिब, ब्राह्मण, हरिजन, सिक्ख और अन्य जातियों के लोग बसते हैं। लोगों का मुख्य वयवसाय कृषि, व्यापार, नौकरी और सिपाही गिरी है। यहाँ चार मंदिर और एक मस्जिद है। साईं बाबा का एक मज़ार भी है। इन्द्री बकौल इस क्षेत्र का सबसे बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र है। सन् 1953 में प्रजा परिषद आन्दोलन में शहीद हुए लोगों का स्मारक भी है। भाषा और साहित्य-ज्योड़ियां के लोग शुद्ध डोगरी भाषा बोलते हैं। डोगरी के प्रसिद्ध कवि गोगाराम 'साथी' देवी- वटाला से यहीं आकर बसे। इनकी पुस्तक 'दिक्खने आती अक्खनेइ' बहुचर्चित रही है। इन्दू-भूषण वाली और यश इस उप नगर के उदीयमान कवि हैं।

अखनूर

डुग्गर का यह पुरातत्व महत्व का उपनगर जम्मू के उतर-पश्चिम में 22 कि.मी. की दूरी पर चन्द्रभागा के पश्चिमी तट पर बसा है। यह नगर जम्मू-पुंछ राष्ट्रीय पथ पर स्थित होने के कारण बरौनक है।

नामकरण- डोगरी लेखक जगदीश चन्द्र साठे के अनुसार यह नगर यूनानी सेना नायक पाइथान ने अपने पिता अगेनोर के नाम पर बसाया। बाद में अगेनोर से बिगड़ता-बिगड़ता यह अखनूर कहलाया। स्थानीय विद्वान ध्यान सिंह के कथनानुसार मुस्लिम इतिहास में इसका उल्लेख हुआ है। एक जनश्रुति यह है कि जहाँगीर की मल्लिका नूरजहाँ ने जब चन्द्रभागा नदी के तट पर बसे इस कस्बे के प्राकृतिक परिदृश्य को देखा तो वह आश्चर्य और उल्लास से चिल्ला पड़ी-आँखों का नूर। बस तभी से इसे 'आँखों का नूर' कहा जाने लगा जो बाद में अखनूर कहलाया।

पुरातत्वः- पुरातत्व की दृष्टि से अखनूर डुग्गर का एक अति प्राचीन स्थल है। इस नगर के निकटवर्ती ग्रामों यथा मांडा, पम्बारायण, माल पुर से खुदाई में जो पुरातत्व महत्व की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनके अनुशीलन से लगता है कि यह स्थान कृषाणकाल से भी पुराना है। किन्तु अम्बारायण के निकट खुदाई में जो बौद्धस्तूप, मिट्टी के बने नर मस्तक, मूर्तियाँ, शिलाएँ

आदि मिली हैं उनके अध्ययन से लगता है कि सातवीं सदी के आस-पास अखनूर एक समृद्ध नगर रहा होगा।

इतिहास तत्व:- दन्तकथाओं के अनुसार अखनूर महा-भारत युग में 'विराट नगरी' के नाम से प्रिसिद्ध था। पांडवों ने एक बर्ष का अज्ञातवास विराट सम्राट की सेवा में वेश बदल कर काटा था। किन्तु ऐसी दन्त कथाओं को प्रमाण नहीं माना जा सकता। इतिहासकार की दृष्टि से यदि इस नगर का अध्ययन करें तो लगता है कि अखनुर टक्क देश के अन्तर्गत एक नगर था। ऐसा इसलिए माना जा सकता है क्योंकि डुग्गर क्षेत्र में अखनूर ही एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ टक्काई जाति के लोग बसते हैं। इन लोगों के अनुसार वे टक्क देश वासी हैं और टक्क ही अखनूर है।

राजदर्शनी के अनुसार राजा जसवन्त देव का वेटा चन्दन देव जब रामगढ़ का राजा बना तो उसने चन्द्र भागा नदी को पार करके अपना पहला शिविर नदी के पार मण्डी में लगाया यहाँ पुराना मंदिर था। किन्तु उस की राजधानी रामगढ़ थी, अतः वह रामगढ़ से अखनूर का शासन चलाता था। उसके वंशजों ने बाद में अपनी राजधानी रामगढ़ से बदली और वे सोहल के निकट गढ़ में चले गए। तारीख डोगरा देश में उल्लिखित है कि जम्मू नरेश महाराजा रंजीत देव के शासन काल में गढ़ के राजा तेगसिंह ने अखनूर में एक विशाल किले का निर्माण करवाया और फिर इसीनगर को सन् 1762ई. में अपनी राजधानी बनाया। सन् 1776 के लगभग आलमसिंह अखनूर का राजा बना। इस राजा के शासन काल में 1807 ई. में महाराजा रणजीत सिंह ने अपने भाई साहब सिंह को अखनूर पर अधिकार करने के लिए भेजा। उसने राजा आलमसिंह को गद्दी से उतार कर अखनूर का विलय खालसा राज्य में क़िया। महाराजा ने आलमसिंह को गुजारे के लिए सोलह ग्रामों पर आधारित एक छोटी सी जागीर दी। किन्तु जम्मू में मिया डोडो और अखनूर में मिंया दीवानू की विद्रोहात्मक गतिविधियों से जब खालसा सेना तंग आ गई तो महाराज रणजीत सिंह ने मिंया गुलाब सिंह को सन् 1822 में जम्मू का राजा घोषित करके उसका राजतिलक अखनूर में किया। इस प्रकार सन् 1822 में अखनूर का विलय जम्मू राज्यमें हुआ। महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल में प्रशासन को चुस्त और दरुस्त बनाने के लिए नये जिलों का गठन किया तो अखनूर को जिला जम्मू की तहसील बनाया गया। अब अखनूर की स्थिति यह है कि यह तहसील अखनूर का मुख्यालय है।

आबादी:- सन 2001 में अखनूर की जसंख्या 10898 थी।

नगर संरचना- अखनूर को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। सन् 1947 से पहले का अखनूर और सन् 1947 के बाद का अखनूर। सन् 1947 से पहले का अखनूर एक छोटे नगरोटा के रुप में था। एक तंग और छोटा बाज़ार था जो ढलान में था। यह बाज़ार अब भी है। इसी बाज़ार से कई गलियाँ जुड़ी हुई थीं जो कहीं ढलाई में तो कहीं ऊँचाई में थी। गलियों में पहले पत्थर भी लगे थे। कुछ मकान पक्के थे जो नानकी ईंटों से बने थे। अधिकांश मकान कच्चे थे। वे लकड़ी और मिट्टी के थे। बाज़ार में अधिकांश दूकान भी कच्ची थी। किन्तु सन् 1947 में भारत-विभाजन के बाद जब जम्मू पुंछ मार्ग विकसित हुआ तो अखनूर का भी विकास हुआ। विभाजन के बाद यहाँ कई शरणार्थियों ने शरण ली। कई नये घर और मुहल्ले बने। मकानों का आकार प्रकार बदला। कच्चे मकानों के स्थान पर नये मकान बने। पहले यहाँ अखनूर में एक ही बाज़ार था, बाद में तीन बाज़ार बने। कामेश्वर मंदिर से लेकर ज्योड़ियाँ मोड़ तक डेढ़ किलोमीटर लम्बा एक नया बाज़ार वजूद में आया जिस में जीवनोपयोगी सभी बस्तुए तथा आधुनिक घरेलु सामान उपलब्ध है। एक नया बाज़ार बस अड्डा के मोड से पलांवाला मोड़ तक बना है। सुन्दरवनी सड़क के किनारे भी दूकानों की लम्बी- कतारें दिखाई देने लगी हैं।

जन-जीवन-अखनूर का जन-जीवन आम डोगरा जीवन जैसा ही है। यहाँ कई जातियों के लोग रहते हैं जिन में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, हरिजन, सिक्ख, मुसलमान सभी सम्मिलित हैं। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि कर्म ही रहा है किन्तु अब कई लोग ठेकेदारी, दुकानदारी तथा नौकरी को भी पसंद करने लगे हैं। आस-पास के लोग सैनिक जीवन पसंद करते हैं। लोग लोक देवताओं, साधु-संतों और पीरों फकीरों में आस्था रखते हैं। यहाँ गेहूँ का उत्पादन अधिक होता है अत: गेहूँ की रोटी पसंद करते हैं। राजपूतों में पगड़ी बांधने की प्रथा है, वे इसे अपनी परम्परा भी मानते हैं। ब्राह्मण धोती, कुर्ता और सिरपर सफेद साफा पहनते हैं। नारियों की वेशभूषा परम्परित ही है। किन्तु नई पीढ़ी में नया परिवर्तन देखा जा रहा है। वे नये रंग में रंजित है और आधुनिक परिधानों का प्रयोग करते हैं। लोग अन्ध-विश्वासी हैं और रीति-रिवाजों के साथ बंधे हुए हैं।

भाषा-बोली और साहित्य-अखनूर डोगरी-भाषी नगर है। यहाँ के लोग डोगरी बोलना और डोगरी के साथ जुड़ना पसंद करते हैं। अखनूर को यह श्रेय प्राप्त है कि इस छोटे से नगर ने डोगरी के मूर्द्धन्य लेखक और कवि पैदा किए हैं जिन में 'सोंचें दा खलार' के लेखक कुंवर वियोगी , कुंवर शक्ति सिंह और मॉ. ध्यानसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अखनूर के दर्शनीय स्थल

अखनूर का किला: यह डुग्गर का सुन्दरतम किला है। यह चन्द्रभागा के पश्चिमी तट के साथ एक ऊँचे टीले पर बना है। इसका निर्माण मुगल शैली में हुआ है। इसका भूविन्यास वर्गाकार है और लम्बाई दो सौ मीटर के करीब है। इस किले के भीतर जो दुमंजिला महल है, वास्तुकला की दृष्टि से वह एक सुदृढ़ भवन है। इस दुर्ग का निर्माण राजा तेजसिंह ने सन् 1750 ई. में करवाया था। यह किला अब टूट फूट गया है किन्तु भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधिकार में आ जाने के बाद इसका पुर्न-उद्दार किया जा रहा है।

जयपोता:- डुग्गर का यह ऐतिहासिक स्मारक चन्द्र भागा नदी के तट पर अवस्थित है। यह स्मारक एक त्रिकोणात्मक थड़े के रुप में किले के नीचे जियोपोता के वृक्ष के नीचे एक कठोर पत्थर की चट्टान के ऊपर निर्मित है। इस स्मारक के दो भाग हैं। पहला भाग भूमितल से पैंतीस से.मी. ऊँचा है। इस का मुख भाग केवल 2.10 मी. लम्बा और 1.60 मी. चौड़ा है। इस भाग में एक छोटा सा चबूतरा है। जिसका फर्श काले रंग के पत्थर से मंडित है। यह ऊपर से त्रिकोणात्मक है। इस का दायां-वायां कोण केवल 1 मी. 25 से. मी. लम्बा है। चबूतरे के निकट जयपोता वृक्ष के निकट दीवार में एक शिलालेख है जिस में निम्नशब्द उत्कीर्ण हैं:-

"सामने के थड़े पर जिया पोता के वृक्ष तले महाराजा रंजीत सिंह ने अपने कर कमलों द्वारा गुलाबसिंह को राजतिलक देकर जम्मू का महाराजा बनाया। जून 16, 1822 ई0

कामेश्वर मंदिर:- अखनूर में कामेश्वर मंदिर इस क्षेत्र का एक सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। जनश्रुतियों के अनुसार यह पावन स्थल महाभारत कालीन है। किन्तु वर्तमान मंदिर दो-सौ वर्ष से पुराना नहीं लगता। मंदिर के भीतर जो शिव लिंग है उसका अवलोकन करने से लगता है कि वह प्राचीन

है। कामेश्वर मंदिर नागर शैली में है और इस मंदिर परिसर में कई और मंदिर तथा स्मारक हैं जिन से यह शोभा युक्त लगता है। इसका तोरण दक्षिणोन्मुख है और यज्ञशाला एक ऊँचे टीले पर है।

इसके अतिरिक्त अखनूर में पुराना नृसिंह मंदिर, पांडव गुफा, नव निर्मित सुन्दर सिंह का गुरुद्वारा, राम मंदिर, शक्ति मंदिर नव निर्मित परशुराम मंदिर , ईशान मठ, सामंतों की प्राचीन हवेलियाँ तथा मंडी का पुराना शिव मंदिर दर्शनीय हैं। सामंतों की पुरानी हवेलियाँ अखनूर की वास्तुकला का सुन्दर नमूना हैं।

अम्बारायण (अम्बरां)

यह ऐतिहासिक स्थल अखनूर के उतरपूर्व में सात किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। इस नगर की स्थापना ग्यारहवीं सदी में जगदेव पवार ने की। जगदेव के विषय में कहा जाता है कि वह मुस्लिमकाल में पूना से पलायन कर के इस पहाड़ी क्षेत्र में सुरक्षित स्थल की खोज में आया था। उसने स्थानीय राणाओं को पराजित किया और एक छोटे राज्य की स्थापना की जिसे 'गढ़ अम्बारायण' नाम दिया।

नामकरणः- अम्बारायण का अर्थ है- अम्बा का घर। इस राज्य की स्थापना जगदेव ने अपनी कुल देवी अम्बा के नाम से की थी, अतः उसने इसका नाम गढ़अम्बारायण रखा। जब उसके वंशज़ों ने यहाँ एक दुर्ग का निर्माण किया तो इसे 'गढ़ अम्बारायण नाम से अभिहित किया जाने लगा। इसका एक नाम पंवारायण भी है जिसका अर्थ है- पंवारों का घर।

इतिहासः- इस राज्य का इतिहास सन् 1094 ई. में तब आरम्भ होता है जब जगदेव ने इस नगर को अपने राज्य की राजधानी बनाया। उसके वंशजों ने 39 पीढ़ी तक यहाँ राज्य किया। यह राज्य लगभग पच्चीस किलोमीटर लम्बा तथा दस से बारह कि.मी. चौथा था। यह छह तालुंकों में विभाजित था जिनके नाम थेः- सोहल, बरदाल, गंडारवां, सुंगल, मांडा तथा पियाना। इस राज्य की पूर्वी सीमा चन्द्र भागा नदी थी, पश्चिमी में मवाली खड्ड थी और उतर में पौनी थी। इस राज्य में बताया जाता है कि पच्चासी ग्राम थे। इस वंश का अंतिम राजा विजय पाल (1740.55) था। उसी के शासन काल में

रामगढ़ के राजा जयसिंह ने अम्बारायण पर तीव्र आक्रमण किया परिणाम स्वरुप विजय पाल परास्त होने के बाद भाग गया किन्तु बाद में अम्बारायण के सैनिकों ने राजा जय सिंह और उसके भाई विजय सिंह को लड़ाई में मार डाला। नगर सरचना:- किले से महि प्रकाश बुदि सिंह ने पंवारों पर कई हमले किए और अन्ततः उन्हें यहाँ से भगा दिया।पंवरों ने जयसिंह के पुत्र महि प्रकाश को गढ़ अम्बारायण में अधिक समय तक टिकने नहीं दिया। वह इस दुर्ग को खाली करके पहले रामगढ़ और बाद में सोहल के दुर्ग गढ़ में चला गया। पंवारों ने उसे भी लड़ाई में मार डाला। महि प्रकाश के पुत्र वुयिक्ति घोड़े पर सवार होकर इस डयोढ़ी के नीचे से नहीं जा सकता। प्रवेश द्वार के से दो सौ मीटर की दूरी पर एक विशाल सरोवर है और सरोवर के साथ ही दुर्ग और महलों के पुरावशेष एक ढेर के रुप में देखे जा सकते हैं। सरोवर के साथ ही नव निर्मित अम्बरां ग्राम है जिसमें साठ घर राजपूतों के तथा दस अन्य जातियों के हैं। तालाव के साथ ही बुआ तृप्ता की समाधि है जो इक्कीस ग्रामों की कुलदेवी है। लोगों का जन जीवन अखनूर के लोगों से मिलता जुलता है।

इस ग्राम में तीन ऊँचे-ऊँचे चबूतरे हैं जिन पर राजा और सामंत बैठते थे। इनमें एक चबूतरा पर एक शिलालेख जड़ित है जिस की लिपि अज्ञात है।

इस ग्राम के कुल पंडित कृष्ण लाल टकाइया के अनुसार-अम्बरां के पंवारों की गर्दनें कुछ ढेढ़ी होती हैं। वे स्वभाव से वीर हैं और लड़ने-मरने में पीछे नहीं हटते। यहाँ के इष्टदेव महादेव हैं और लोकदेवता कालीवीर और राजा मंडलीक हैं। माता मल्ल और बुआ तृप्ता लोक देवियाँ हैं। वर्तमान ग्राम में 60 घर हैं जिन में 50 घर राजपूतों के 5 ब्राह्मणों के एक हरिजन एक लुहार का तथा तीन घर गुज्जरों के हैं। लोक विशेष पढ़े लिखे नहीं हैं। यहाँ महादेव की एक गुफा है जो चन्द्र भागा के तट के साथ है और एक मंदिर राणकी में है।

दर्शनीय स्थल-बौद्धस्तूप के पुरावशेष- अम्बरां के निकट भमड़वा में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने भूमि की खुदाई करके एक प्राचीन बौद्धस्तूप के पुरावशेष दूढ निकाले हैं जिन का निरीक्षण करने से लगता है कि अम्बरा में सातवीं सदी या उससे भी पहले बौद्ध विहार, संघाराम तथा स्तूप थे। अधिकारियों को खुदाई से एक कलश भी मिला जिस की बनावट से

लगता था कि वह तीसरी से पाँचवी सदी का है। चार्लस फावरी ने यहाँ से प्राप्त महात्मा बुद्ध तथा उनके अनुयायियों की बीस मूर्तियों का निरीक्षण करके राय दी थी कि यहाँ की मूर्तियाँ यूनानी तथा रुमी मूर्तियों से बहुत मिलती जुलती हैं। यहाँ से गुप्तकालीन जो तीन ताँवे के सिक्के मिले हैं वे 5वीं सदी के हैं। लगता है अम्बरां कोई प्राचीन नगर था। जिसका इतिहास अज्ञात है।

रामगढ़:- डुग्गर का यह प्राचीनतम नगर चन्द्रभागा के तट पर अखनूर से तेरह कि.मी. दूरी पर बसा था। अब यह पूरा नगर चन्द्रभागा की बाढ़ों की भेंट चढ़ चुका है। अब इस का वजूद एक 'मिथ' के रुप में ही है।

राजदर्शनी के अनुसार इस उपनगर का संस्थापक जम्मू के राजा विजय सिंह के पुत्र देव गुप्त का पुत्र राम गुप्त था। इस ग्रंथ के अनुसार यह नगर अखनूर के पास था। चन्द्र भागा के तट पर था। यहाँ एक दुर्ग भी था जो अब [illegible] चुका है। राजदर्शनी को यदि सही माना जाए तो यह मानना पड़ेगा कि यह नगर दो हज़ार वर्ष से भी पुराना था क्योंकि राम गुप्त का दादा विजय सिंह सिकन्दर की समकालीन था।

डुग्गर के इतिहास का अनुशीलन करने से पता चलता है कि जम्मू के राजा कपूर देव ने अपने छटे पुत्र भोजदेव को 1590 ई. में रामगढ़ का क्षेत्र एक जागीर के रुप में प्रदान किया। राजा भोज देव और उसके उतराधिकारियों ने रामगढ़ में महल बनवाये और इसके विकास के लिए यथा शक्ति प्रयास किए। उन्होंने एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण भी करवाया। भोजदेव के बाद प्रताप देव और विश्वम्भर देव रामगढ़ के राजा बने। राजा विश्वम्भर देव के शासनकाल में महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि उसके वेटों ने एक ब्राहमण को इतना आतंकित किया कि उसने सपरिवार आत्मदाह किया। इससे लोग राजा और उसके वेटों के विरुद्ध भड़क उठे। इसका परिणाम यह निकला कि विश्वम्भरदेव के तीनों वेटों को रामगढ़ छोड़ना पड़ा और वे बाहु चले गए। विश्वम्भर देव के बाद मिंया समदु रामगढ़ का राजा बना। उसके दोनों वेटे जयसिंह और विजय सिंह अम्बरां से लड़ाई लड़ते मर गए। विजय सिंह के बाद मिंया महि प्रकाश रामगढ़ का राजा बना। किन्तु अम्बरां से उसका टकराव इतना बढ़ा कि वह रामगढ़ खाली करके सोहल के गढ़ में चला गया। इस प्रकार रामगढ़ उजड़ गया। इस उजड़े नगर पर मिंया चन्दन देव ने महाराजा रंजीत देव (1731-80 ई.) के शासन काल में अधिकार किया किन्तु उसने

अपनी राजधानी गढ़ ही रखी उसने भोजदेव के वंशज राजा वुद्धिसिंह को अपने क्षेत्र से भगा दिया। राजा चन्दन देव के वंशज अखनूरिये और भोजदेव के वंशज रामगढ़िये कहलाए। रामगढ़ अखनूर क्षेत्र में ही था अतः इस नगर के लोगों की जीवन शैली वैसी ही थी जैसी अखनूर के लोगों की थी।

सूरगढ़- यह गुमसुम ऐतिहासिक स्थल अखनूर के उतर में स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए नौर से भी मार्ग जाता है। नौर से सूरगढ़ छः किलोमीटर के लगभग दूर है। यहाँ एक समतल मैदान है उसी में बसा है डुग्गर का एक गाँव, नाम है गसानु। इसी गाँव के निकट जम्मू के राजा कपूरदेव के पुत्र मिंया लालदेव ने एक नगर बसाया जिस का उसने नाम रखा सूरगढ़। यह नगर चन्द्र भागा नदी के दक्षिणी तट के साथ डेरा बावा बन्दा बहादुर के विल्कुल सामने आवाद था। इसमें मिंया लाल देव ने अपने आवास के लिए महल बनवाया और अपनी सुरक्षा के लिए पत्थरों का एक किला बनवाया। उसने कई लोगों को सूरगढ बुलाया। उन्हें जगह दी और घर बनाने के लिए सहायता दी। देखते ही देखते सूरगढ़ एक छोटा सा उपनगर बन गया।

उन्हीं दिनों मुगल सम्राट अकबर लहौर आया। उसके दरबार में नज़राना पेश करने पहाड़ों के कई राजा और सामंत लहौर गए। किन्तु जम्मू का मिंया मान्ना, और सूरगढ़ का लाल देव उस के दरबार में नहीं गए। परिणाम स्वरूप मुगल से ना से सूरगढ़ पर हमला करके इसे नष्ट कर दिया।

सोहलः-

यह छोटा सा उपनगर जो अब एक गाँव में परिवर्तित है, अखनूर से 17 कि.मी. दक्षिण पश्चिम में बसा हैं। इस उपनगर को विशेष महत्व सन् 1807 ई. को तब मिला जब पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह के भाई साहिब सिंह ने अखनूर का किला जीता और अखनूर के राजा आलम सिंह को सोलह गांवों पर आधारित सोहल की जागीर दी। राजा आलम सिंह ने अखनूर छोड़ने के बाद सोहल को अपनी राजधानी बनाया। सोहल से तीन कि.मी. की दूरी पर गढ़ नामक स्थान में रामगढ़ियों द्वारा निर्मित एक किला था और महल था। आलमसिंह उसी में रहने लगा। आलमसिंह के बाद सोहल का राजा इतवार सिंह और इतवार सिंह के बाद राजा निहाल सिंह राजगद्दी पर बैठा राजा निहाल सिंह महाराजा रंजीत सिंह का विश्वास पात्र बना रहा। उसी के हाथों

गुलाबसिंह का राज तिलक हुआ। महाराजा रंजीत सिंह भी उस पर प्रसन्न था अतः उसने उसे सात ग्राम और दे दिए इससे उसकी जागीर के गाँवों की संख्या तेईस तक हो गई। सन् 1846 ई. के बाद सोहल की जागीर का विलय जम्मू कश्मीर राज्य में हुआ जिस कारण यह फलता फूलता उपनगर एक ग्राम में परिवर्तित हुआ।

अब सोहल से गढ़ तक का पूरा क्षेत्र जो तीन किलोमीटर में परिव्याप्त है, ऐतिहासिक और सोस्कृतिक स्मारकों से भरपूर हैं। सोहल में तक साढ़े तीन सौ के लगभग घर हैं जिन में राजपूत, बाह्मण , महाजन, लुहार,धीवर, नाई इत्यादि रहते हैं। लोगों का व्यवसाय कृषि कर्म के अतिरिक्त सिपाही गिरी और व्यापार हैं। लोग पढ़ लिख गए हैं, अतः सरकारी नौकरियाँ भी करते हैं, उनमें से कई उच्च पदों पर भी प्रतिष्ठित रहे हैं। सोहल के जज करतार सिंह महाराजा हरिसिंह के मंत्री मंडल में मंत्री भी रहे हैं। सोहल गाँव तो सड़क के किनारे है, अतः फलफूल रहा है किन्तु गढ़ उजड़ता जा रहा है। गढ़ का दुर्ग ध्वस्त है इस की भग्न दीवारें इस की गौरव गाथा सुनाती हैं। राज महल, सामंतों की हवेलियाँ सब या तो धराशायी है या खंडहर बन गई हैं। सोहल और गढ़ के मध्य एक विशाल सरोवर भी है यदि इसे विकासित किया जाए तो यह गाँव डुग्गर का पर्यटन स्थल बन सकता है। इस गाँव के लोगों की आस्था धर्म कर्म में है, अतः ये मंदिरों में जाते हैं। और पर्व त्योहार उत्साह और श्रद्धा से मनाते हैं।

कलीठः- डुग्गर का यह उजड़ा हुआ उपनगर अखनूर के पश्चिम दक्षिण में अखनूर से 19 कि.मी. की दूरी पर बसा है। कलीठ को भाऊ कबीले का केन्द्र भी माना जाता है। इसी कबीले के एक सामंत जबरदेव नें मनावर तवी के आसपास का कुछ क्षेत्र जीत कर कलीठ राज्य की स्थापना की। उसने कलीठ में एक सुदृढ़ और सुरक्षित दुर्ग बनाया और इसी में अपने महल बना कर रहने लगा। उसने इसी स्थल को अपनी राजधानी बनाया। कहा जाता है कि कलीठ का राज्य तेरहवीं सदी में स्थापित हुआ और यह सतारहवीं सदी के अन्त तक चला। कलीठ के राजाओं की उपाधि राय थी। अकबर के समय में कलीठ के राजा बागी हो गए थे, अतः भाऊ कबीले के लोगों ने मुगल सेना का डट कर मुकाबला किया किन्तु अन्ततः वेहार गए। मुगलों ने कलीठ का किला तोड़ दिया और कलीठ उपनगर में आग लगा दी जिस कारण यह भव्य और समृद्ध नगर राख का ढेर बन गया किन्तु यह नगर एक

बार फिर बसा, इसमें समृद्धि और ऐश्वर्य का दौर भी आया। कलीठ के शाहुकारों ने इसे एक मण्डी के रुप में उभारा और बजीरावाद, स्यालकोट और जेहलम के नगरों के व्यापारी यहाँ आने लगे जिस कारण कलीठ का विकास चहुँ मुखी हुआ। कई नये परिवार भी आए जिससे नगर बढ़ता और फलता फूलता गया। किन्तु बाद में पंजाब नरेश महाराजा रंजीत सिंह की सेना ने नगर को बहुत क्षति पहुँचायी। यह नगर खालसा राज्य का हिस्सा भी रहा। सन् 1822 में जम्मू का राजा बनने के बाद गुलाब सिंह ने इस नगर को अपने अधिकार में तो लिया किन्तु इस नगर का विकास नहीं किया। व्यापारी, दुकानदार तथा शाहूकार नगर छोड़कर भाग गए। महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में भाऊ वंश के ही एक सेना अधिकारी शिवराम सिंह ने यह किला 365 रुपये में खरीदा और वह 1929 में अपना परिवार लेकर यहाँ रहने आ गया। इससे यह उपनगर उजड़ते उजड़ते एक बार फिर बच गया। किन्तु 1947 में पाकिस्तानी लुटेरों के कारण यह फिर उज़डा और उजड़ता ही गया। अब जो नया कलीठ बसा है वह किले के नीचे है। इस में 85 घर हैं आवादी 700 के करीब है। कुछ दूकानें भी हैं और सरकारी स्कूल हैं। किन्तु इस का अब वह गौरव नहीं है ज़ो 1947 से पहले था।

भारख

यह ऐतिहासिक महत्व का उपनगर पौनी की पहाड़ियों की गोदी में एक पहाड़ी टिले पर आवाद था जो अब विरान तथा नष्ट-भ्रष्ट है। अब यहाँ एक नगर के खंडहर इधर-उधर बिखरे दिखाई देते हैं। दूकानों, मकानों, महलों की दीवारें तो खड़ी हैं किन्तु वहाँ अब रहता कोई नहीं है।

डुग्गर का यह उजड़ा हुआ नगर तहसील रियासी के अन्तर्गत पौनी से रणसू जाने वाली सड़क के उतर में एक पहाड़ी पर बसा था। भारख का यह सुनसान नगर रियासी के पश्चिमोतर में कोई 37 कि.मी. और पौनी के उतर में बारह किलोमीटर की दूरी पर है। इस नगर के नीचे से नाला शेर गढ़ी प्रवाह मान है। जिस पहाड़ी पर यह नगर बसा है उसके दायीं और वायीं ओर प्राकृतिक नाले हैं और उतर में ऊँचा खड़ा पहाड़ है। अतः प्रतिरक्षा की दृष्टि से यह एक सुरक्षित स्थल है।

नगर तक पहुँचने के लिए शेर गढ़ी नाला से एक सोपान पथ बना

है जो कहीं टेढ़ा मेढ़ा तो कहीं सीधा है। आधा किलोमीटर से भी कम चढ़ाई चढ़ने के बाद इस नगर की सीमा आरम्भ हो जाती है। सब से पहले नगर का बाज़ार प्रारम्भ होता है। बाज़ार तो अब उजड़ चुका है किन्तु दूकानों की वे दीवारें खड़ी हैं जो पत्थर की शिलाओं से निर्मित हैं। बाज़ार की चौड़ाई कहीं अढ़ाई तो कहीं तीन मीटर है। बाज़ार के पार्श्व में घरों और हवेलियों के खंडहर हैं। ये खंडहर अब गलियों में भी फैल गए हैं जिससे नगर को पूरी तरह देखना हो तो चलने में कठि नाई आती है। बाज़ार यहाँ समाप्त होता है् राजमहल वहीं से आरम्भ होता है।

बाज़ार की लम्बाई अनुमानतः डेढ़ किलोमीटर है। राजमहल क्षेत्र में सबसे पहले मस्जिद दृष्टिगत है जो आयताकार है। इसका प्रवेश द्वार डेढ़ मीटर ऊँचा और पौने मीटर चोड़ा है। इसका छत ईंटों का है। मस्जिद के साथ ही एक सरोवर है जो 15 मी. लम्बा और 12 मी. चौड़ा है। इसमें सात पक्की अट्टारिकाएँ हैं। तालाब से 50 मीटर की दूरी पर किला नुमा महल है जो कई कक्षों पर आधारित है। यह महल दुमंजिला है। इसका स्थापत्य मुस्लिम है और इसमें पुष्प बल्लरियाँ बनी हैं। महल के कक्षों के आगे खुले बरामदे हैं जिन में प्रवेशार्थ तीन-तीन महरावी द्वार हैं। इस महल की दीवारों की ऊँचाई दस मीटर के लगभग है। इससे थोड़ी दूरी पर एक नया महल है जिसमें दीवान खाना भी हैं। इसमें बड़े-बड़े कक्ष हैं। शायद भारख के राजा का निजी सचिवालय इसी महल में रहा होगा। इस महल के नीचे दर्जनों कोठरियों के अवशेष हैं। सम्भवतः ये कोठरियाँ दास-दासियों के लिए निर्मित की गई होंगी।

तारीख डोगरा देश के अनुसार राजौरी के राजा शाह जुमान खान ने सन् 1387 के लगभग पौनी और भारख गाँव बसाये। भारख एक जागीर भी थी जिस में तेरह ग्राम थें। मुहम्मद सुकालसी पहला जागीरदार था जिसे महाराजा गुलाबसिंह ने भारख की जागीर प्रदान की। उसी ने भारख को नया रंग-रुप दिया। उसके बाद लाल मुहम्मद लालसी यहाँ का जागीर दार बना। यहाँ का अंतिम जागीरदार राय मुहम्मद इकवाल था। सन् 1950 तक यह नगर आवाद था किन्तु बाद में पुंछ से जो शरणार्थी आए उन्हें इस पहाड़ी के नीचे बसाया गया। अब पुराना भारख सूनेपन का अहसास दिलाता है। नया भारख एक आधुनिक गाँव लगता है जिस में अधिक संख्या सिक्ख शरणार्थियों की है। इनके अतिरिक्त जराल, ब्राह्मण, खत्री, हरिजन आदि भी बड़ी संख्या में इस गाँव में रहते हैं। यहाँ कई मंदिर और एक गुरुद्वारा है। निकट ही गोदर

शाह की जियारत है। गुज्जरों के भी आस-पास कई घर हैं। लोग कर्मठ और परिश्रमी हैं। शिव खोड़ी के यात्रियों के कारण भारख में चहल पहल बढी है। इससे भारख का व्यापार चमका है।नये भारख में अब 373 मकान हैं और आबादी 2118 है यह नगर अब फल–फूल रहा है।

शालकोट

डुग्गर का एक और उजड़ा और विरान नगर शालकोट है जिसे सानाल कोट के नाम से भी अभिहित किया जाता है। यह खंडहरों का शहर रियासी से 15 किलोमीटर उतर-पश्चिम में और पौनी से सात किलोमीटर उतर पूर्व में है। जिस स्थान पर यह शहर बसा था उसे आज ठंडा पानी कहते हैं। ठंडा पानी में गुज्जरों के घरों से कुछ आगे एक छोटा सा नाला प्रवाह मान है। इसके पश्चिमी तट पर शिलाओं से निर्मित एक ऊँचा चबूतरा है, इसे राजगद्दी कहते हैं। सम्भव है कि इस नगर के शासक का सिंहासन इसी चबूतरा के ऊपर रखा जाता होगा और राजा लोगों की प्रार्थनाएँ यहीं बैठ कर सुनता होगा। नाला के पार सीढ़ी नुमां खेतों के मध्य में एक मध्ययुगीन मंदिर है। मंदिर के साथ ही पुरावशेषों के ढेर हैं। लगता है कि कभी यहाँ घर, भवन, हवेलियाँ अथवा महल रहे होंगे जो आज धराशायी हैं। इन भवनों की दीवारों के निशान कुछ बर्ष पूर्व स्पष्ट दिखते थे किन्तु बाद में यह भूमि जिसे आवंटित की गई उसने भूमि को समतल करवाने के लिए जो यत्न किये उन का परिणाम यह निकाला कि पुरावशेषों के ढेर बिछ गए। किन्तु इस ऐतिहासिक स्थल की यदि खुदाई करवाई जाए तो सम्भव है कि धरती के नीचे से इस स्थान का इतिहास बोल पड़े। अब यहाँ नगर के नाम पर केवल एक मंदिर और कुछ पुरावशेष ही द्रष्टव्य हैं।

इस नगर का एक दुर्ग भी है जो इस नगर की ऊपरी पहाड़ी पर निर्मित है। यह राजधानी से छह कि.मी. दूर है। इस किले तक पहुँचने के लिए पहले तीन किलोमीटर के करीब टेढ़ी- मेढ़ी पगडंडी चढ़ना पड़ती है। आगे किले का आधार दिखता है जिस की दीबारें काले पत्थर की हैं। इससे दो कि.मी. दूर तवेला स्थान है। यहाँ कई मकानों के पुरावशेष बिखरे मिलते हैं। तवेला से सीधी चढ़ाई चढ़ने के बाद पहाड़ी के एक टीले के ऊपर एक मंदिर है जिस का शिल्प निचले मंदिर के ही समान है। इस मंदिर का पुर्न-उद्धार हुआ है और इसे नागर शैली में बनाया गया है। इस मंदिर के

गर्भगृह में नीले रंग के पत्थर से बनी कालक देव की भग्न मूर्ति है। इस मंदिर से आधा किलोमीटर ऊपर कोट शैली में बना एक किला है जिस की उतरी दीबार काले पत्थर की है जो बीस मीटर के लगभग लम्बी और तीन मीटर ऊँची है। यहीं पत्थर का बना एक असला खाना है जिस का द्वार संकीर्ण है। भीतर से यह खाली है। असला खाना के सामने एक खुला मैदान है जिस की एक ओर भवनों की नीवों के चिह्न हैं। इस स्थान को परोल नाम से अभिहित किया जाता है जो किले का पर्यायवाची है।

यह नगर और किला शताब्दियों से एक रहस्य बना है। राजदर्शनी के अनुसार यह किला और नगर राजा सालबाहन द्वारा निर्मित है जो स्याल कोट का राजा था। उसे किसी कारण स्याल कोट से भागना पड़ा। इतिहासकारों के अनुसार राजा साहलवान ने 979 से लेकर 997 तक शासन किया। यदि यह सही है तो माना जा सकता है कि यह किला और नगर एक हज़ार बर्ष पुराना है।

डुग्गर में पीरों की जो कारिकाएँ प्रचलित हैं उनमें कहा गया है कि राजा साल वाहन ने स्यालकोट में दुर्ग निर्माण करवाते समय एक ब्राह्मण बालक की दुर्ग की नींव के नीचे वलि दी। उस बालक की माँ ने सब ओर से निराश होकर पीरों से फरियाद की। पीरों ने राजा पर आक्रमण किया और राजा भाग कर इन पहाड़ियों में आ छुपा। उसने अपने छुपने के लिए यह किला और महल बनवाये। आज किला विरान है। महल विरान हैँ। नगर विरान है किन्तु इस नगर से जुड़ा इतिहास जिन्दा है।

इस नगर के विषय में एक मत यह भी है कि यह नगर यक्षभानु की राजधानी था। यक्ष-भानु का उल्लेख राजदर्शनी में हुआ है। इसके अनुसार यक्ष-भानु जम्मू के राजा राज बल्लभ का चाचा था। जब त्रिकोट के राजा मंगल चंद ने राजबल्लभ को युद्ध में मार डाला तो यक्ष भानु यह नगर और किला छोड़कर उजड़ गया। किन्तु इतना कहना और लिखना पर्याप्त नहीं है, इस नगर पर और चला गया जिस कारण यह नगर शोध भी आवश्यकता है।

रियासी

स्थितिः- डुग्गर का यह मोहक तथा आकर्षक नगर जम्मू के

उतर-पश्चिम में जम्मू से 81 कि.मी. की दूरी पर एक कम ढलान वाले मैदान में बसा है। इसके उतर-पश्चिम में पहाड़ों की श्रृंखला है तथा पूर्व में अंजस और पश्चिम में चन्द्र भागा नदी प्रवाह मान है। इसके दक्षिण में छोटी पहाड़ियों के नीचे-नीचे अंजस प्रवाह मान है जो कुछ दूर नीचे चन्द्र-भागा में विलीन हो जाती है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई 2500-2700 फुट के बीच है। रियासी डोगरा काल में जिला का मुख्यालय थी किन्तु आज़ादी के बाद यह एक तहसील बना दी गई किन्तु अब इसे पुनः मिला बनाया जा रहा है।

नाम करणः- रियासी का प्राचीन नाम भीमगढ़ था जो रियासी के ग्राम देवता 'भीम' के नाम पर रखा गया । किन्तु अब केबल रियासी के किले को भीम गढ़ कहा जाता है। किले में भीम देवता का मंदिर है जिस में देवता की आदम कद मूर्ति स्थगपित है। किन्तु बन्दोवस्त में रियासी का नाम सेर है। कहा जाता है कि माड़ी, ग्रां, सुकेतर तथा सुला से पाव-पाव अर्थात् एक-एक चौथाई ज़मीन लेकर रियासी की स्थापना की गई। शिव दोवलिया के अनुसार रियासी के लोग पहले सेपर में रहते थे जो नम्बल और विजयपुर के मध्य मे है किन्तु पुरानी रियासी के खंडहर लेखक ने 1962 में महादेव मंदिर और बारादरी के मध्य फैले मैदान में देखे थे। सेर, सुकेतर, सैपर से रियासी कैसे विकसित हुआ, यह बताना कठिन है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से तो ऐसा सम्भव नहीं है। एक मत यह है कि मेवाड़ के एक राणा रसपाल ने अपने नाम पर इस गाँव की स्थापना की। कई इतिहासकारों ने रसपाल का समय बारहवीं सदी माना है जो स्वीकार्य नहीं। रियासी के शासक रसियाल कहलवाये। रसपाल या रछपाल या ऋृषिपाल के वंशज़ो का तो विवरण नहीं मिलता किन्तु बताया जाता है कि उन के राज्य की राजधानी यहीं-कहीं थी।

इतिहासः- रियासी का क्रमवद्ध इतिहास जम्मू के राजा हरिदेव (1652-92) से आरम्भ होता है। राजा हरिदेव ने रियासी पर आक्रमण किया और स्थानीय रसियाल राणा को पराजित करके रियासी पर अधिकार कर लिया। रसियाल राणा रियासी छोड़ कर कहीं दूर चला गया। राजा हरिदेव ने रियासी तथा अखनूर का क्षेत्र अपने तीसरे पुत्र जसबन्त देव को जागीर के रुप में दिया। जसबन्त की मृत्यु सन् 1723 ई. के लगभग हुई। उसके दो पुत्र थे चन्दनदेव और रत्न देव। चन्दन देव को बिलादरी ने अखनूर का और रत्नदेव को रियासी का जागीर दार बनाया। रत्नदेव एक साहसी और पराक्रमी सामंत था। जम्मू नरेश महाराजा रणजीत देव ने उसे अपना सेनापति बनाया। वह अपने

बाप की भाँति जम्मू में ही रहता था। रियासी का प्रबन्ध उसके अधिकारी चलाते थे। मियां रत्नदेव के बाद मिंया मानसिंह और उसके बाद मिंया जंगबहादुर रियासी के जागीरदार बने। उनके बाद मिंया दीवान सिंह रियासी का जागीर दार बना। दीवान सिंह का निवास जम्मू में ही था। किन्तु यदा-कदा वह रियासी भी आता रहता था। उसने रानी बन्दराली से मिल कर मिंया मोटा के विरुद्ध एक षटयंत्र रचा और सन् 1813 में उसकी हत्या करवा दी। मिंया मोटा गुलाब सिंह का चाचा था। उसका भाई ध्यानसिंह महाराजा रंजीत सिंह का प्रधान मंत्री था। उसने महाराजा रंजीतसिंह को मिंया दीवान सिंह को दंड देने के लिए कहा तो महाराजा ने दीवान सिंह को लहौर बुलाया और उसे बन्दी बना लिया। सन् 1817 ई. में महाराजा रंजीत सिंह ने रियासी की जागीर दीवान सिंह से छीन ली और मिंया गुलाब सिंह को रियासी का जागीर दार नियुक्त किया। गुलाब सिंह ने रियासी का जागीर दार बनने के बाद रियासी का किला बनवाया जिस की रक्षा का भार उसने जोरावर सिंह कल्हुरिया को सौंपा। दीवानसिंह के पुत्र भूपसिंह ने गुलाब सिंह के विरुद्ध विद्रोह किया किन्तु जोरावर सिंह ने उसके आक्रमण और विद्रोह को असफल कर दिया। इस प्रकार रियासी पर गुलाब सिंह का पूर्ण नियंत्रण हो गया। सन् 1846 में जब रियासत जम्मू-व-कश्मीर का गठन हुआ तो रियासी का पूर्ण विलय इस राज्य में हुआ और इसकी स्वायतता समाप्त हो गई। महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल में रियासी को जिला का दर्जा मिला जिससे इस नगर का चहुमुखी विकास हुआ किन्तु 1947 में यहाँ सम्प्रदायिक दंगे भी हुए जिससे इस नगर का पूर्व गौरव घट गया। किन्तु केन्द्रीय सरकार ने जब सलाल परियोजना का शुभारम्भ किया तो इस नगर को नया जीवन दान मिला और आज यह नगर विकासोन्मुख है।

लेखकों की दृष्टि में रियासी- शिवदोवलिया ने अपने लेख रियासी एक सांस्कृतिक परिचयं में लिखा है:- रियासी के लोग बड़े श्रद्धालु, भक्त और दयालु प्रवृति के हैं। इनके कुल देवता-मल्ल देवी, काली माता, कालीवीर, बाबा भैड़, बाबा विड्डा, भीमसेन तथा अर्जुन हैं। ये लोग खिलका कुर्ता, चूड़ीदार पायज़ामां, बास्कट, लम्बा कोट पगड़ी तथा सफेद चादर का उपयोग करते हैं। औरतें सुत्थन लम्बी कमीज़ और सिर पर दुपट्टा लेती हैं। पुराने ज़माने में घूंघट का रिवाज़ था। विवाह छोटी ऊमर में कर दिया जाता था। दोहरी का बड़ा रिवाज़ था।

रियासी के लोग लोहड़ी, होली, रक्षाबन्धन, टिक्का, दीवाली, दंगल, दशहरा, जन्माष्ठमीं, बसंत पंचमी, वैसाखी बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं। छिंज पर लोग बहुत पैसा खर्च करते हैं। दूर-दूर से पहलवानों को बुलाया जाता है। रक्षा बन्धन पर पंडित पुरोहित अपने यजमानों को राखी बांधते हैं।' डॉ. चम्पा शर्मा ने रियासी के विषय में लिखा है- 'रियासी के लोगों की आर्थिक दशा में सुधार लाने के लिए विशेष रुप से कृषकों की दशा में आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए महाराजा ने रियासी में रेशम तथा चाय की पैदावार बढ़ाने के लिए कई यत्न किए। रणवीरसिंह के शासनकाल में सन् 1872-73 में रियासी में 127 मन चाय पैदा हुई। रियासी में चाय की काश्त के लिए लगवाये गए बागों का क्षेत्रफल 80 एकड़ था।'

रियासी नगर की संरचनाः- स्थापना काल से ही रियासी एक सुन्दर नगर माना गया है। प्रारम्भ में यह नगर चन्द्र भागा के तट पर एक विस्तृत मैदान में बसा था। उस नगर में डेढ़-दो सौ घर थे। गलियाँ और मुहल्ले थे। शायद एक किला भी था जिस की एक दीवार नदी तट के साथ 'ढगाला' में आज भी देखी जा सक़ती है। यह दीवार लम्बी और पक्की है। रसियालों की यहाँ बस्ती थी। इसके खंडहर तो हैं किन्तु यह उजड़ा कब क्यों और कैस इसके विषय में कई जन श्रुतियाँ प्रचलित हैं जिन में एक में कहा गया है कि सगेतर ग्राम के एक ब्राह्मण की हत्या के बाद यह नगर उजड़ा और सैपर में आवाद हुआ। उन दिनों महादेव मंदिर का क्षेत्र ही रियासी का केन्द्र माना जाता था। कहते हैं कि रसियाल राजाओं के महल भी वहीं कहीं थे।

किन्तु सन् 1817 के बाद जब यह नगर गुलावसिंह की जागीर का मुख्यालय बना तो गुलावसिंह ने इस नगर का विकास एक डोगरा नगर के रुप में करवाया। इस नगर में सबसे पहले एक पहाड़ी टीले के ऊपर किला बनवाया। उसके सामने कई एकड भूखंड में फैला एक विस्तृत और चौड़ा मैदान साफ करवाया और उसे परेड का नाम दिया। परेड के पश्चिम में महाराजा ने राज परिवार के निवास के लिए महल बनवाये। महल के नीचे दक्षिण में एक बाज़ार बना जो बढ़ते-बढ़ते एक किलोमीटर तक लम्बा हो गया। बाज़ार के दोनों और दुकानें बनीं जिन में कई छोटी-कई बड़ी कई मंझली थीं। इन दुकानों से ही महौर के इलाके में सामान भेजा जाता था। बाजार में आरम्भ से ही चहल-पहल रही और आज भी है। यहाँ मुख्य बाजार

खत्म होता है वहीं से एक और बाज़ार पश्चिम में आरम्भ होता है। यह बाज़ार कम चौड़ा है। इस बाज़ार में हिन्दू और मुसलमानों की सांझी दूकानें थी। किन्तु अब यह बाज़ार उजड़ गया है और बहुत थोड़ी दूकानें रह गई हैं। अब एक नया छोटा बाज़ार मुख्य बाजार के नीचे विकसित हुआ है। रियासी में कई गलियाँ हैं और उनके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। इसी प्रकार रियासी में कई मुहल्ले हैं जिन में मण्डी मुहल्ला घना आबाद है। रियासी में अब कई नई बस्तियाँ बस गई हैं और कई बस भी रही हैं इससे रियासी का विकास बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। **जन संख्या :-** सन 2001 से रियासी की जन संख्या 20255 थी।

धार्मिक जीवनः- रियासी में सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं वे अपने-अपने ढ़ग से धार्मिक जीवन जीते हैं। हिन्दुओं के रियासी में छोटे बड़े ग्यारह मंदिर हैं जिन में काली माता का मंदिर, गणेश मंदिर, रघुनाथ मंदिर, पुराना शिव मंदिर, महादेव मंदिर, राधा कृष्ण मंदिर, नृसिंह मंदिर, शीतला मंदिर, हनुमान मंदिर, भारत माता का मंदिर तथा शिव मंदिर उल्लेखनीय हैं। महादेव मंदिर सबसे प्राचीन है। लोग बैसाखी पर्व पर यहीं इकट्ठे होते हैं। यहीं मेला आयोजित होता है। काली मंदिर में नवरात्रों और मंगलबार को भारी भीड़ रहती है। लोग इन दिनों कन्या पूजन करते हैं। शिव रात्रि, रामनवमीं और जन्माष्ठमी बड़ी धूम-धाम से मनाई जाती है। पुरुष और महिलाएँ नत-ब्रत में विश्वास रखते हैं। दान-दक्षिणा तथा पर्वों पर नदी स्नान भी करते हैं। मुसलमानों के लिए दो मस्जिदें हैं। ईद का त्योहार जोश से मनाया जाता है। जुमें की नमाज़ में भी बहुत लोग सम्मिलित होते हैं। कबीर, रविदास की जयन्तियां और गुरूपर्व भी मनाये जाते हैं।

आर्थिक जीवनः-

रियासी, शिव दोवलिया के शब्दों में पहाड़ी वस्तुओं की एक मंडी थी। उस समय रियासी में डेढ़-दो सौ दुकानों का एक बड़ा बाज़ार था जिसे पहाड़ी बाज़ार कहते थे। यहाँ गुल-वनफशां वर्ग, बन फशां हरतालिका, धूप, लकड़, धूप संगल, बाल तंग, कौड़, पतरीस, बाला, चोक (एरबी) सुरमाँ, शहद, राजमाष, घी, बहीदाना, अखरोट, गुच्छियाँ, सेब, नासपाती, खुमानियाँ; अनारदाना, विकता तथा खरीदा जाता था। रियासी में मुसलमान- राज मिस्त्री, मरासी, बहुरूपिये, कुम्हार, लोहार, धोबी, वर्तन बनाने वालों के अतिरिक्त

दुकानदार भी थे। कई लोगों का व्यवसाय पंडिताई या पुरोहिताई, का भी था। वे यजमानों के घरों में पूजा-पाठ करवाने जाते, और वहाँ से जो मिलता, जीवन निर्वाह करते। आज रियासी के लोगों का मुख्य व्यवसाय व्यापार और नौकरी है। इनका जीवन स्तर ऊंचा है और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता है।

साहित्यिक एवम् कलात्मक जीवन- रियासी को साहित्य और कला का केन्द्र माना जाता है। लोगों की मुख्य भाषा डोगरी है और रियासी ने डोगरी के कई लेखक, कवि तथा विद्वान पैदा किए हैं जिन में उल्लेखनीय नाम हैं:- सोमदत सुगम, अब्दुल रशीद ज़ोन, ईशरदास चंचल, राजराही, राजेश अज़नबी तथा कुलदीप मैंगी इत्यादि। डोगरी-साहित्य सभा रियासी के तत्वावध ान में कवि गोष्ठियों, कहानी गोष्ठियों का आयोजन होता रहता है। अब कई नई संस्थाएँ भी बनी हैं जो साहित्य के विकास में सक्रिय योगदान दे रही हैं। ब्रह्मदत तथा बंसीलाल केरणी सामाजिक विषयों पर लिखते हैं। चित्र कला के क्षेत्र में अकरम खान और ईशरदास ने बहुत नाम कमाया है। रत्न केसर, अब्दुल रशीद ज़ोन तथा राजेश अज़नवी रंगमंच के क्षेत्र में चर्चित रहे हैं। रियासी से एक समाचार पत्र भी प्रकाशित होता रहा है।

शिक्षा क्षेत्र :- रियासी के लोग पढ़े लिखे तथा जागरुक हैं। इनमें आगे बढ़ने की प्रवृति है। ये लोग कई ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन रहे हैं। रियासी में साक्षरों की संख्या साठ प्रतिशत से भी अधिक बताई जाती है। अब यहाँ एक राजकीय महा विद्यालय एक बी.एड काँलेज और कई उच्च विद्यालय तथा शिक्षा केन्द्र हैं। पढ़ने लिखने में इनकी रुचि है और शिक्षा आन्दोलनों में भी यह भाग लेते हैं। जम्मू विश्व विद्यालय के पूर्व उपकुलपति रामरत्न शर्मा रियासी के हैं।

दर्शनीय स्थल:- रियासी में कई दर्शनीय स्थल हैं जिन में निम्न उल्लेखनीय हैं:-

भीमगढ़ का किला:- डॉ. चम्पा शर्मा के शब्दों में - 'रियासी के दर्शनीय स्थलों में इस किले का विशेष महत्व है। यह किला रियासी नगर के दक्षिण में एक कोणदार तथा चट्टानी पहाड़ी के ऊपर बना है। इसकी दीवारें पत्थर की हैं और बहुत ऊँची हैं। सन् 1925-26 में नबाव खुसरो जंग ने इसकी एलबम देखकर कहा था कि यह चितौड़ के 24 किलों का एक नमूना

है। वैक फिल्ड ने इसे तुड़वा दिया था किन्तु जगमोहन जब सन 1990 में राज्य के राज्यपाल थे तो उनके आदेश से इस का पुर्न-उद्धार हुआ। अब यहाँ एक सुन्दर वाटिका विकसित की गई है और रात्रि को प्रकाश का प्रबन्ध है।

सूहल का बागः- रियासी बस अड्डा से तीन कि.मी. अंजस नदी के पूर्वी तट पर सूहल चश्मा के आस-पास जो आधुनिक शैली में एक बाग विकसित किया गया है वह पर्यटन की दृष्टि से अति उपयुक्त स्थान है। इस बाग में स्नान के लिए सुन्दर जल कुंड बना है और बैठने के लिए छायादार वृक्षों के नीचे मखमली घास है। बाग में टहलने के लिए जो पथ वने हैं वे अति सुन्दर हैं। यहाँ एक गुफा भी है जो दर्शनीय है।

जोरावर सिंह का महल- यह दुमंजिला महल रियासी के दक्षिण में तीन कि.मी. दूर विजय पुर गाँव में है। महल देखने में तो छोटा है किन्तु इस का ऐतिहासिक महत्व अत्याधिक है। लद्दाख विजेता जोरावर सिंह का यही निवास था। इस महल से चन्द्र भागा नदी का सुन्दर परिदृश्य देखा जा सकता है।

जल प्रपात स्याड़ाः- यह हृदया कर्षक स्थल रियासी से तीन किलोमीटर दूर तलवाड़ा में है। यहाँ पच्चास मीटर की ऊँचाई से पहाड़ी के ऊपर से एक जल धारा नीचे एक जलकुंड में गिरती है। यहां का दृश्य अति लुभावना और आकर्षक है। चर्मरोगी यहाँ स्नान करने आते हैं। लोक विश्वास है कि यहाँ नहाने से चर्मरोग ठीक होता है।

इसके अतिरिक्त यहा काली मंदिर, रघुनाथ मंदिर, कृष्ण मंदिर वारादरी, परेड तथा जामा मस्जिद के दर्शनीय स्थल हैं। रघुनाथ मंदिर का कुआँ भी देखने योग्य है क्योंकि यह बहुत ही गहरा है।

कटड़ा (वैष्णो देवी)

कटड़ा (वैष्णो देवी), श्री माता वैष्णों देवी की यात्रा का आधार शिविर है। यह जम्मू से 45 कि.मी. उतर में स्थित है। जगदीश चन्द्र शास्त्री के अनुसार कटड़ा शब्द कटक का विकसित रुप है जिस का एक अर्थ है- पहाड़ों से घिरी वादी। कटड़ा चारों ओर से पहाड़ों से घिरा है, अतः इसका नाम

कटक या कटड़ा उपयुक्त है। शास्त्री जी के अनुसार श्री कृष्ण ने अर्जुन से 'जम्बू-कटक चेत्येषु' कहा था जिस का अर्थ है- जम्मू के निकट कटड़ा। कटड़ा जम्मू के निकट है, अतः यह महाभारत कालीन स्थान है। किन्तु कई विद्वान शास्त्री जी के मत से सहमत नहीं हैं। स्थानीय विद्वानों के अनुसार कटड़ा डोगरी शब्द है जिस का अर्थ है- 'कट-अड़ा' अड़ा से कटा हुआ। अर्थात् न उपजाऊ भूमियों से काट कर बनाया गया स्थल। यह मत मन-गढत लगता है। 'कटड़ा' पंजाबी भाषा और हिन्दी में भी अलग-अलग अर्थ में प्रयोग में आता है। पंजाबी में यह मण्डी और हिन्दी में पंडवा के अर्थ प्रयुक्त होता है। लगता है कि कटड़ा का नाम करण पंजावी भाषाईओं द्वारा किया गया है।

कटड़ा की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि धुंधली है। जनश्रुतियों के अनुसार कटड़ा में वाणगंगा के साथ जो पहाड़ी टीला है वहाँ धार कोट नाम से समसालों का एक किला था।अब जहाँ निर्माणाधीन शंकराचार्य का मंदिर है उस पहाड़ी पर बंजाल कबीला का और महाकाली पहाड़ी के ऊपर शायद द्रोड़ा कबीला का कच्चा किला या कोट था। त्रिकूट पहाड़ के अन्तर्गत नूरकार की गुफा के निकट 'घोड़ा सुम्ब' स्थान से थोड़ी दूर एक स्थान है जिस का नाम है- 'पोल सलाल'। 'पोल' राजस्थानी में किले के द्वार को कहते हैं, लगता है यहाँ भी कोई किला था। इस किला-स्थल के पास ही एक स्तम्भाकार खड़ा पत्थर है। इसे तता थम्म कहते हैं। लगता है यहाँ भी कोई कबीला रहता होगा। जनश्रुतियों के अध्ययन से पता चलता है कि समसालों और बंजालों के मध्य लड़ाईयाँ चलती रहती थीं, अतः माता वैष्णों देवी के यात्रियों ने कटड़ा के मार्ग की अपेक्षा रसायनी गुफा मार्ग को सुरक्षित मान कर अपना मार्ग बदल लिया था। बाहु के राजा कृपाल देव (1660-1675 ई.) ने इन कबीलों का दमन करके कटड़ा-बैष्णों देवी मार्ग चलाया। द्रोढों के पास जो लिखित है उस में इस क्षेत्र के कुछ लोगों में कराये गए समझौतों का विवरण भी मिलता है।

यदि जनश्रतियों पर विश्वास किया जाए तो यह माना जा सकता है कि आधुनिक कटड़ा के निर्माण में महाराजा गुलाब सिंह और द्रोड़ा कबीला के दायों का बहुत बड़ा हाथ है। महाराजा गुलाब सिंह ने अपने युवराज रणवीर सिंह के साथ जब वैष्णों माता की यात्रा की तो उसे कटड़ा की घाटी बहुत पसंद आई और उसने यहाँ एक नगर बसाने का आदेश दिया। बाद में जब द्रोड़ा परिवार के कुछ लोग राज परिवार के साथ जुड़े तो उन्होंनें भी कटड़ा

के विकास में महत्व पूर्ण योगदान दिया। इस नये नगर में आरम्भ में बहुत थोड़े से घर थे। किन्तु धीरे धीरे इसका विकास होता गया और आज स्थिति यह है इस छोटे से उपनगर में 1752 घर हैं। अतिथि शालाओं की संख्या 1168 है। यहाँ 173 होटल, 99 सरायें , राजकीय आवास भवन पाँच और ध र्मशालाएँ 122 हैं। अभी इसमें दिन प्रति दिन बृद्धि ही होती जा रही है। कटड़ा में पहले थोड़ी सी दुकानें थीं जो तीन महीने यात्रा के दौरान खुलती थीं। यह स्थिति 1965 तक थी। किन्तु अब स्थिति यह है कि कटड़ा के चारों ओर बाज़ार ही बाज़ार हैं। एक मुख्य बाज़ार जो श्री माता वैष्णो-देवी स्थापना बोर्ड से आरम्भ होता है वह दर्शनी दरवाजा तक चलता है और डेढ़ कि.मी. लम्बा है। दूसरा बाज़ार बस अड्डा से वाण-गंगा के तटीय पठार के साथ-साथ बना है और डाक बंगला तक जाता है। तीसरा बाज़ार बस अड्डा से आरम्भ होता है और पैंथल सड़क के साथ-साथ आगे बढ़ता है। यह बाज़ार एक कि.मी. के करीब लम्बा है।

कटड़ा में आठ दर्शनीय मंदिर हैं जिन में रघुनाथ मंदिर, हनुमान-मंदिर, शिव मंदिर, लक्ष्मी मंदिर और देवी द्वारा दर्शनीय है। कटड़ा में श्रीधर सभा, चालाधाम-सभा आदि उल्लेखनीय भवन हैं। एक पर्यटक स्थल होने के कारण कटड़ा में कई राज्यों की बसें आती और जाती हैं। प्रतिबर्ष यात्रियों की संख्या 65 लाख के लगभग है। कटड़ा के समाज-सेवियों में हेमराज पुजारी तथा ऋषि केश आचार्य का नाम शीर्ष पर है। उनके बाद अब भी कई सामाजिक कार्यकर्ता ऐसे हैं जो अपनी पहचान बनानें में सफल हैं। सन 2001 में कटड़ा की कुल जनसंख्या

पंचस्थल (पैंथल)

डुग्गर का यह सांस्कृतिक ग्राम कटड़ा बैष्णोदेवी से केवल साता कि. मी. पूर्व में झज्झर उपनदी के तटीय पठार में त्रिकूट पहाड़ के दामन में बसा है। यह चारों ओर से पर्वतश्रृंखलाओं से परिवेष्टित है, अतः इसका प्राकृतिक परिदृश्य अति मोहक है।

समुन्द्रतल से 2600 फुट ऊँचाई पर बसे इस ग्राम का भी पुराना इतिहास है। 15वीं सदी में इसका नाम 'जराल कोट' था। यहाँ झज्झर नदी के तटीय पठार पर जरालों का सुद्धढ़ किला था। उन का मुख्य धन्धा जम्मू से

कश्मीर जाने वाले यात्रियों को लूटना तथा आस-पास के ग्रामों में उपद्रव मचाना था। उनका टकराव धारा कोट के समसालों से था। नगर कोट का एक राजकुमार जिसका नाम उतम था वह वैष्णोदेवी की यात्रा पर आया। उसने सांझी छत में खड़े होकर जरालों को धारा कोटियों के घरों को जलाते देखा। उससे रहा न गया। उसने समसालों को संगठित किया और जरालकोट का किला जीत लिया। इस क्षेत्र के लोगों ने उस राजकुमार की वीरता से प्रभावित होकर उसे अपना राजा मान लिया। वह ग्यारह गाँवों का राजा बना जिनमें भाग था, सेरली, नलेह, आरली, तनोड़ी, सूल, सीढ़ा, पमोट आदि ग्राम समाहित थे। राजा ने अपने रहने के लिए जिस पहाड़ी पर अपने महल बनाये और गाँव बसाया उसका नाम उसने अपनी प्रजाति डडवाल के नाम पर डूडरा रखा। राजा उतम के वंशज़ों को 'राय' उपाधि प्राप्त रही और उसके वंशज आज भी अपने नाम के साथ 'राय' लिखते हैं। यथा दीना-नाथ 'राय' या राय दीना नाथ आदि बाद में जम्मू के राजा हरिदेव ने राजा उतम के वंशज़ों से यह राज्य छीना और अपने पुत्र हठी देव को यह क्षेत्र जागीर के रुप में दिया। राजा हठी देव ने इस क्षेत्र में पाँच बाग लगावाये जिन में चम्बा का बाग, सूई का बाग, तथा गढ़ी का बाग प्रसिद्ध थे। राजा हठी देव के बाद धर्मदेव और पिथुदेव इस क्षेत्र के जागीरदार बने। मिंया डीडो पिथुदेव का साथी था, वह गढ़ी बाग में भी रहता था। वहाँ पिथुदेव का महल था। खालसा सेना को मिंया डीडो का पता चला तो उनका एक दल गढ़ी बाग में आया। मिंया डीडो और पिथुदेव तो वहाँ से चले गए थे किन्तु सेना ने गढ़ी को आग लगा कर जला डाला।

गढ़ी के जलने के बाद पिथुदेव ने पाँच सरोवरों वाले भूखंड में एक नया ग्राम बसाया जिस का नाम उसने पंचस्थल रखा जो बिगड़ते-बिगड़ते 'पैंथल' नाम से विख्यात हुआ। कविराज वद्रीनाथ के अनुसार पंचानाम सरोवरा नाम मध्यस्थल भूमिः- सः पंचस्थलः। किन्तु तारीख डोगरा देश के लेखक नृसिंह दास नरगिस के अनुसार पिथुदेव ने अपने नाम पर पैंथल बसाया।

पंचस्थल (पैंथल) आरम्भ से ही बुद्धिजीवियों, कवियों, ज्योतिषियों, कलाकारों, मुनीषियों तथा विद्वानों का ग्राम रहा है। पैंसठ घरों पर आधारित इस ग्राम ने दीनू-भाई पंत, जिया लाल जिया, रत्न गोपाल खजूरिया जैसे कवि, हुक्म चंद, देवराज मगोत्रा, सावनमल पाधा, हरिभक्त जैसे कलाकार, शिवा बड़ेयाल जैसे घड़ावादक, न्यायमूर्ति गोपाल दत जैसे न्यायाधीश, पद्मसिंह जैसे निदेशक दिये वहीं इस ग्राम ने दर्जनों बकील, डाक्टर इन्जीनियर, अध्यापक,

तथा राजनेता भी पैदा किए हैं।

मुनीषियों की धरती:- पैंथल भूमि को यह श्रेय प्राप्त है कि स्वामी नित्यानन्द तथा बावा जगन्नाथ दास जैसे ऋषि मुनियों ने तप और तपस्या से इस भूमि को पावन किया है। स्वामी नित्यानन्द मदन मोहन मालवी के मित्र तथा महाराजा प्रतापसिंह के राजगुरु थे।

पैंथल के मंदिर तथा देवस्थान: मातावैष्णो देवी की ही भाँति पैंथल से 6 कि.मी. उतर में प्रसिद्ध शक्ति स्थल देवी-पिंडी है जहाँ हज़ारों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं। डडूरा में पीपलेश्वर महादेव और प्राचीन महादेव का मंदिर और जरालकोट में भोमेश्वरी देवी का मंदिर है। पैंथल से तीन किलोमीटर लैहनू में मंदिरों का समूह और सुन्दरानी में शिव-शक्ति के मंदिर दर्शनीय हैं। ऋषिकुटीट पैंथल का तीर्थ है, यही बावा जगन्नाथदास जी ने तप किया था। श्री माता बैष्णों देवी-विश्व विद्यालय:- यह विश्व प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र पैंथल से केवल तीन कि.मी. दक्षिण में झज्झर उपनदी के पठार पर बना है।

इस विश्वविद्यालय के भव्य, विशाल और आकर्षक भवन मंथल-झज्झर कोटली के मध्य में राष्ट्रीय राजपंथ से भी देखे जा सकते हैं। सरस्वती पुत्रों की धरती में सरस्वती देवी का यह महान मंदिर इस ग्राम के लिए कीर्तिस्तम्भ सिद्ध होगा, ऐसी भविष्यवाणी की जा सकती है।

जनसंख्या:-सन 2001 में पैंथल पंचायत की आबादी 3004 थी और इस में कुल घर 500 के लगभ हैं।

चे-ड़ेई (च-ड़ेयाई)

कटड़ा वैष्णोदेवी से यह ऐतिहासिक ग्राम 15 कि.मी. पूर्व-उत्तर में एक पहाड़ी के दामन में छोटे से मैदान में बसा है यहाँ पहले कभी डेढ़ सौ के करीब घर थे किन्तु अब केवल 35 घर ही शेष बचे हैं। यह ग्राम पहले डुग्गर के 'नगरोटा' शैली में बने उपनगरों में परिगणित होता था किन्तु अब नगर-आकर्षण ने इसे एक उजड़ा ग्राम बना दिया है।

इस ग्राम के नामकरण और इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कम

जानकारी प्राप्त है। यदि डोगरी विद्वान जगदीश चन्द्र साठे के शोध कार्य को सही मान लें तो च.डेई श-लेई का रुपान्तरण है। साठे का मत है कि संस्कृत के 'च' तथा 'ज' व्यंजन चीनी में 'श' में रुपान्तरित होते हैं। अतः चीनी श-लेई संस्कृत या हिन्दी में च-लेई या चड़ेई में बदल गया है। साठे का मत है कि कनिष्क की अधीनता में चीन सहित कई मध्य एशिया के राज्यों के जो राजकुमार भारत लाए गए थे उन्हें भूगोल तथा मौसम को दृष्टि में रख कर ठंडे इलाके में भिन्न-भिन्न स्थानों में रखा गया। जिन में चनैनी तथा च-डेई भी थे। साठे के अनुसार च-डेई या 'च-डेयाई' कुषाण कालीन ग्राम है और इसे मध्य एशिया के राजकुमारों को सुरक्षित रखने के लिए बसाया गया था। साठे का मत है कि 'आडू' इस क्षेत्र का मुख्य फल है। सम्भव है कि शिवालिक की निचली पहाड़ियों में कुषाण या चीनी बस्तियाँ रही हों किन्तु यह अतीत की बात है। आज के सन्दर्भ में च-डेआई के इतिहास और संस्कृति के बारे में केवल इतनी ही जानकारी मिलती है कि 15वीं 16वी सदी में इस क्षेत्र में जिज्ज प्रजाति के राजपूतों का शासन था। चड़ेयाई की पहाड़ी के नीचे दो स्थान ऐसे हैं जिन्हें ऊपर की सरकार और नीचे की सरकार कहते हैं, सम्भव है इन स्थानों में जिज्ज राजा और उसके राजकुमार के महल हों। किन्तु बाद में जिज्जों ने चड़ेयाई के निकट एक पहाड़ी टीले को अपना आवास बनाया और उन का दुर्ग भी वहीं बना।

कुछ समय बाद इसी पहाड़ी के नीचे जिज्जों ने अपनी एक अलग बस्ती बसाई जिसे जजली नाम दिया गया। आज भी जजली में जिज्जों के कई घर हैं और यह माना जाता है कि यही इन की राजधानी थी।

जिज्जों के अनुसार इन का राज्य 16वीं सदी में इस क्षेत्र में आरम्भ हुआ। इनके राज्य में सात ग्राम थे- चढ़े आई, मुतल, समोल, सुन्दरानी, धनु, खंडुई आदि। इस वंश का प्रसिद्ध राजा धग्धाचन्द था। जिसने अपने नाम पर धग्धा-बाग लगवाया। सन 1820 में महाराजा गुलाब सिंह ने जिज्जों के अधि कार छीन कर यह जागीर जम्मू राज्य में मिला दी।

चढ़े आई के निकट समोल में भी एक पहाड़ी है जिसे 'सियोट' कहते हैं। शायद यह सिंहकोट का अपभ्रंश रुप है। इस पहाड़ी के ऊपर किसी प्राचीन बस्ती के अवशेष बिखरे पड़े हैं। जन श्रुति हैं कि कोई राजा अपने परिवार के साथ छुपता छुपाता इस पहाड़ी पर आ बसा था और कुछ समय

के बाद वह परिवार के साथ चला गया था। वह राजा कौन था, कहाँ से आया था, इस का कोई पता नहीं किन्तु इसी पहाड़ी के नीचे जो चौंदियाँ नामक गुफा है उस के विषय में कहा जाता है कि वहाँ कोई मराठा सरदार जो सन 1857 के युद्ध में अंग्रेजों से पराजित हुआ था, साधु का वेश धारण किए अपने कुछ साथियों के साथ रहता था। राजा अमर सिंह को जब उसका पता चला तो वह उसे ज्ञानकोट ले आया। कई लोगों का विचार है कि वह तांत्यातोपे था और कई उसे नाना साहब मानते हैं। वह कुछ समय के लिए ही ज्ञान कोट रुका और फिर चला गया।

दर्शनीय स्थलः- बाग-ए घग्घा-चढ़े आई में दर्शनीय स्थल है। इसे घग्घा चन्द ने लगवाया। इस बाग में एक अष्ठ कोणीय जल-कुंड है जिस का जल कई धाराओं में जल प्रपात बनाता वावलियों में गिरता है। यहाँ बावलियों की संख्या सात है जिन में बड़ी बावलियाँ केवल दो ही हैं। इन वावलियों की अट्टारिकाएँ देवी-देवताओं तथा लोकनायकों की मूर्तियों से सुसज्जित हैं। एक बावली में द्वारपाल और स्तम्भ भी बने हैं। बड़ी बावली एक सरोवर लगती है। जिसमें दस मीटर की ऊँचाई से पानी गिरता था।

जिब

प्राचीन जनपद बुल्बालता का यह मुख्यनगर उधमपुर के पश्चिम में 15 कि.मी. की दूरी पर नीली नाला के तटीय पठार पर एक ढलान में बसा है। इसकी भौगोलिक स्थिति अक्षांश $32^0.52$ और रेखांश $75^0.08$ के बीच में है। सन 2001 में जिब पंचायत मे 599 घर थे और जनसंख्या 3559 थी।

नामकरणः- इस उपनगर के नामकरण का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला। एक मत यह है कि इसकी आकृति जिह्व के आकार में है, अतः इसे जिह्ब आदि नाम दिया गया। किन्तु शरीर के अंगों के आधार पर नगरों के नामकरण की डुग्गर में परम्परा नहीं रही है, अतः इस मत को सही नहीं माना जा सकता। एक मत यह है कि इसे 'जीबा' नामक राणा ने बसाया, अतः इसे जीवा, जीव या जिब कहा गया। किन्तु इस क्षेत्र में 'जीबा' नाम के किसी राणा का उल्लेख नहीं मिलता, अतः इस पर अभी शोध की आवश्यकता है।

इतिहासः- जिब का इतिहास बुल्वालता का इतिहास है। ऐतिहासिक

ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि मेवाड़ के राणा मनुभान ने मेवाड़ छोड़ जम्मू में शरण ली तो उसकी 17वीं पीढ़ी में राणा विजय देव हुआ। राणा विजय देव के तीन पुत्र हुए- सीसदेव, दीपाल तथा रसपाल, सीसदेव बजालता में बसा, रसपाल ने रियासी बसाया और दीपाल क्रिमची के राजा का सामंत बना। दीपाल का पोता बिल्लू हुआ जिसने बलो आलता ग्राम बसाया। राजदर्शनी में बुल्वालता का उल्लेख जम्मू के राजा अर्जुन देव के संदर्भ में हुआ है। अर्जुन देव ने बुल्वालता के राजा को छल से मारा तो बुल्वालता के नये राजा दुल्ला ने अर्जुन देव से अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए जम्मू राज्य की सीमा के साथ-साथ कई उत्पात मचाये जिस कारण जम्मू की सेना को बुल्वालता आना पड़ा। सेना ने दुल्ला को पकड़ कर उसकी हत्या कर दी इस प्रकार बुल्वालता जम्मू राज्य का एक भाग बन गया।

तारीख डोगरा देश में उल्लिखित है कि महाराजा रणजीत देव (1733-82) ने बुल्वालता की जागीर अपने भाई धनसार देव को दी और वह इस क्षेत्र का शासक रहा। उसके बाद उसका वेटा गोपाल देव इस क्षेत्र का राजा बना जिसने अपने नाम पर 'गोपाल पुर' बसाया जो सुनाड़ी की पहाड़ी पर अवस्थित है। गुलाब सिंह ने जब क्रिमची को जीता तो उसने बुल्वालता को भी जम्मू में मिला लिया इससे इस की अलग राजनैतिक पहचान समाप्त हो गई।

पुरातत्वः- बुल्वालता पुरातत्व की दृष्टि से बहुत ही महत्व पूर्ण है। इसे हम निम्न वर्गों में रख सकते हैं।

चनानी के महल- चनानी के महलों के पुरावशेष जिव से डेढ़ कि. मी. की दूरी पर नीली नाला की पहाड़ी पर बिखरे पड़े हैं।

अब तो इन महलों की दीवारों की नींवें ही प्रष्व्य है शेष सब ध राशायी है। बताया जाता है कि चनानी मन मैलावंश के राणा की राजधानी थी। उसने लम्बे समय तक यहाँ शासन किया। बनेश्वर महादेव मंदिर उन्हीं की देन है। चनानी से थोड़ी दूर दुद्धर नदी के पार राज पुरा में भी ऐतिहासिक स्मारक मिलते हैं। उन पर शोध की आवश्यकता है।

पांडव गुफाः- यह गुफा दुद्धर नदी के पूर्वीतट के ऊपर एक रेतीली

चट्टान को काट कर बनाई गई है। इस का मुख-भाग बल्लरियों से अलंकृत है। गुफा पश्चिमोन्मुखी है। मानव निर्मित इस गुफा का शिल्प बौद्ध स्थापत्य से प्रभावित है। यह गुफा पाटा के निकट है।

पाटाः- बुल्वालता का यह अतिरम्य स्थान है। यहाँ एक ऊँची जगती पर दो मंदिर बने हैं जिन के सामने एक पुराना कुआं है। कुआं के उतरी-भाग में पत्थर के दो बड़े-बड़े पाट हैं जिन का निर्माण पशुओं को जल पिलाने के लिए किया गया लगता है। ये पाट अति प्राचीन हैं और पत्थर युग की याद दिलाते हैं।

मनानु का किलाः- यह किला एक ऊँचे टीले पर निर्मित है। दुल्ला ने तेरहवीं सदी में इस का निर्माण करवाया था। अब किले के अवशेष ही बचे हैं किला धराशायी है।

गोपाल पुरः- सुनाड़ी की पहाड़ी के ऊपर एक दुर्ग और कई आवासीय कोठरियों के यहाँ अवशेष बिखरे पड़े हैं। यहाँ कई कच्ची पक्की बावलियाँ हैं जिनकी संख्या सौ बताई जाती है।

कालटाः- यहाँ राजा घनसार देव की राजधानी थी। यहाँ कई बावलियाँ और पुरावशेष बिखरे पड़े हैं। अब यहाँ आर्य समाज का एक बड़ा आश्रम है।

खोजू शाह का महल- डोगरी कवि तथा गज़लों के शहन्शाह बेदपाल दीप के दादा के महल के पुरावशेष जिब में बिखरे पड़े हैं। महल के दीवार गिर अब भी खड़े हैं।

देवस्थान- बुल्बालता में सबसे बड़ा तथा विख्यात मंदिर वनेश्वर महादेव का है। यह एक गुफा मंदिर है जिसे नागर शैली का रुप दिया गया है। मंदिर परिसर में एक दर्जन से अधिक पत्थर की मूर्तियाँ और शिलालेख हैं।

बुल्वालता की विशिष्टताएँः- लोक परम्परा ने बुल्वालता की पाँच विशेषतायें बताई हैं और वे हैंः- बड़ बोह्ड़, ब्हा, बोहली तथा बाके। अर्थात

बुल्वालता में वगदर, बोहड़, वायु, बावलियाँ और बाकै अर्थात अफवाहें अधिक हैं। बुल्वालता का लोक संगीत भी प्रसिद्ध है।

यहाँ की 'बुल्वालती भाख' चर्चित रही है।

क्रिमची

स्थितिः- डुग्गर का यह प्राचीनतम स्थल उधमपुर के उतर-पश्चिम में 12 कि.मी. और जम्मू के उतर पूर्व में 51 कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है। इस स्थान की प्राकृतिक दृश्यावली मनमोहक है। विश्वमान चित्र में यह नगर भूमध्यरेखा से 32^0.53 उतर तथा प्रधान मध्याह्न रेखा से 75^0.07 पूर्व के बीच स्थित है।

नामकरणः- जनश्रुतियों के अनुसार यह नगर महाभारत कालीन है और राजा क्रिचक द्वारा बसाया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य इसलिए सत्य नहीं लगता क्योंकि उस काल के स्मारक कहीं भी नहीं मिलते। डोगरी लेखक जगदीश चन्द्र साठे का मत है कि इस नगर का संस्थापक क्रिमीश नामक एक यक्ष राजा था। यह मत स्वीकार्य है। प्राचीन डुग्गर के इतिहास का अनुशील न करें तो पता चलता है कि त्रिकूटा पहाड़ के साथ-साथ जितनी भी पर्वतीय श्रृंखलाएँ हैं उनके नीचे यक्ष वस्तियाँ थी और उनके शासक यक्ष राजा थे। राजदर्शनी में उल्लेख मिलता है कि पौनी की पहाड़ियों में यक्ष भानु का राज्य था और यह सम्भव है कि कैंसगली पहाड़ी के नीचे जो यक्ष वस्तियाँ थीं उन का शासक क्रिमीश यक्ष होगा।

ऐतिहासिक पृष्ट भूमिः- यदि हम यह स्वीकारते हैं कि क्रिमची का संस्थापक क्रिमीश था तो यह जानना जरूरी है कि क्रिमीश था कौन। क्रिमीश का वर्णन बौद्ध साहित्य में मिलता है। वह सागल (स्याल कोट) के राजा मेनेडेर का समकालीन था। जनश्रुति है कि मेंढर उसी ने बसाया था। अतः वह न केवल उसका समकालीन था अपितु उसका पड़ोसी भी था। उसकी आस्था भी मेनेडर की भाँति बौद्धधर्म में थी। इतिहासकारों का मत है कि मेनेडेर का शासन काल ई. पू. पहली या दूसरी सदी था। कईयों का मत है कि वह 140 ई.पू. में सिहासनरुढ़ हुआ था। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि क्रिमीश का समय भी ई.पू. दूसरी सदी रहा होगा। बौद्ध साहित्य तथा प्राचीन भारत का

इतिहास पढ़ें तो पता चलता है कि मेनेडेर ने जिसे संस्कृत ग्रंथों में मिलिन्द लिखा है क्रिमीश के साथ मिलकर पुष्प मित्र शुंग के विरुद्ध लड़ाई लड़ी थी क्योंकि वह बौद्ध-धर्म का विरोधी थी।

ऐतिहासिक ग्रंथों में यह उल्लिखित है कि ई.पू. 148 में पुष्प मित्र शुग क्रिमीश के हाथों लड़ाई में मारा गया था। सम्भव है कि यहाँ आज क्रिमची के मंदिर हैं, वहाँ पहले कोई बौद्ध विहार या संघाराम हो जिसके अवशेषों पर ये मंदिर वने। कई पुराविद मानते हैं कि इन मंदिरों पर बौद्ध-स्थापत्य का प्रभाव है। क्रिमची के आस-पास कई प्राचीन स्मारक हैं जो बहुत ही प्राचीन हैं इन में पंडोर, गानु और डबरैह की गुफाओं के अतिरिक्त डबरैह की पहाड़ी के नीचे एक प्राचीन बस्ती के पुरावशेष भी बिखरे पड़े हैं। लगता है कि क्रिमची कभी बहुत बड़ा नगर था और बैली का मंदिर भी इसी के अन्तर्गत था। बहुत वाद में भूति के भतियालों ने क्रिमची को अपनी राजध ानी बनाया किन्तु उनकी ऐतिहासिक निशानी केवल क्रिमची का किला है।

क्रिमची ग्राम- आज क्रिमची एक छोटा सा पहाड़ी ग्राम है। इसमें अनुमानत: 75 घर हैं। लोगों का मुख्य व्यवसाय वसाय कृषिकर्म, व्यापार और नौकरी है। आबादी 402 के करीब है। लोग कर्मठ हैं किन्तु सादगी और सरलता के कारण विशेष उन्नति नहीं कर पाये। आर्थिक दशा सामान्य है।

दर्शनीय स्थल-क्रिमची मंदिर

क्रिमची के भव्य, कलात्मक तथा अनूठे मंदिर भूतेश्वरी गंगा के तट के साथ त्रेट स्थान पर निर्मित हैं। ये संख्या में सात हैं। पहले पाँच मंदिर एक ही परकोट पर बने हैं। इन तक पहुँचने के लिए सोपान पथ हैं। प्रस्तर शिलाओं से बने इन मंदिरों में तीन बड़े हैं और दो छोटे हैं। जो मंदिर सबसे बड़ा है वह सप्तरथी योजना पर बना है। उसके पार्श्व में भद्ररथ हैं जो देखने में सुन्दर हैं। इस का अन्तराल सुसज्जित है। मुख्य मंदिर का प्रवेश द्वार पूर्वोन्मुखी है। इनके ललाट में नौ देवताओं के लिए कोष्ठक बने हैं। गर्भगृह तथा अन्तराल का छत त्रिकोण है। इस का शिखर वक्राकार है और इसके प्रत्येक भद्ररथ पर तीन श्रृंगों की पंक्तियाँ संलग्न हैं। द्वितीय मंदिर में यह विशेषता है कि उसके साथ जो मण्डप बना है उसके स्तम्भ कलात्मक और दर्शनीय है। तृतीय मंदिर पश्चिमोन्मुखी है और आकार में छोटा है। मुख्य जगती में दो और मंदिरों के

अवशेष हैं जो आकार में छोटे हैं। इस समूह का छटा मंदिर इस जगती से अलग एक ऊँचे स्थान पर है। उसके लिए सोपान पथ अलग हैं। सातवां मंदिर भूमितल के साथ है। इस की दीवारों में जो शिलाएँ हैं वे उत्खचित हैं। ये मंदिर देखने में विलक्षण हैं।

विद्वान जगदीश चन्द्र साठे और अर्जुन देव मजबूर क्रिमची मंदिरों को कुषाण कालीन मानते हैं। उनके अनुसार यहाँ पहले कोई बौद्ध निर्मिति रही होगी। किन्तु उन्हों ने इस के लिए पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत नहीं किए हैं। सम्भव है कि क्रिमीश ने यहाँ कोई बौद्ध मंदिर बनबाया हो जिस की नीवो पर ये मंदिर बने हों'

स्थिति:- शिवालिक पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य में अवस्थित उधमपुर नगर उतर भारत के स्वच्छ और सुन्दर नगरों में से एक है। यह नगर इस समय पाँच से छह कि.मी. वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसके पूर्व में सूर्य पुत्री तौषी नदी और पश्चिम में वीरु नदी प्रवाह मान है। जम्मू से इसकी दूरी पैंसठ कि.मी. के लगभग है।

नामकरण:- उधमपुर का प्राचीन नाम पद्म पुराण के अनुसार बुद्ढापुर था। डॉ. बालकृष्ण शास्त्री के अनुसार उधमपुर का जो बाड़ेयाँ मुहल्ला है वह बुद्ढापुर का ही अपभ्रंश रुप है। ग्रामीण लोग आज भी इसे वुद्ढापुर नाम से अभिहित करते हैं। सन् 1821 ई. में किश्तवाड़ विजय के बाद गुलाबसिंह का बड़ा वेटा उधमसिंह बजीर लखपत के साथ गंगेड़ा ग्राम में विश्रामार्थ रुका तो उसने पहाड़ी के नीचे फैले इस मैदान को देखा तो उसके मन में आया कि बन्दराला, हिमता, भूति और बन्दरालता पर दृष्टि रखने के लिए यदि इस फैले मैदान में नगर बसाया जाए तो उपयुक्त रहेगा। वह बाद में कुंवर नौनिहाल के साथ लहौर में मरा तो बजीर लखपत ने जम्मू के राजा गुलाब सिंह को राजकुमार की इच्छा जतलाई तो गुलावसिंह ने उध मसिंह के नाम पर यहाँ एक नया नगर बसाया जिसका नाम रखा-उधमपुर। गुलाबसिंह (1817-1858 ई.) के समय से लेकर आज तक इसे इसी नाम से पुकारा और लिखा जाता है।

नगर की संरचना:- अनुमानतः सन् 1840 में गुलाबसिंह के आदेश पर देविका नदी के तट के ऊपर फैले लम्बे चौड़े मैदान को पहले वृक्ष काट कर साफ किया गया तदुपरान्त डोगरा नगर स्थापत्य के अनुसार इस नगर की रचना की गई। नगर में सबसे पहले एक भव्य और विशाल महल बना। इस महल का प्रांगण दोनों ओर से सामने और पीछे बहुत खुला रखा गया। सहन के मध्य में भूमि से डेढ़ मीटर ऊँची नीवें बनीं और उसके ऊपर कई कक्षों पर आधारित यह महल बना जिस का विशेष आकर्षण गोल हाल था। इस महल में एक बड़ा कक्ष ऐसा था जिस में राजा के बैठने के लिए एक ऊँचा मेहरावी तथा आकर्षक सिंहासन था।

चनैनी के राजा रामचन्द हिन्ताल का बाल्यकाल इन्हीं महलों में बीता।

महल के दक्षिण में एक खुला चौगान था। इसे अब धब्बड़ कहते हैं। अब यह सीमित हो गया है और इसके चारों ओर गोल बाज़ार है। जो बचा भाग है उसे भक्त सिंह पार्क का नाम दिया गया है। यह पार्क अधमपुर का केन्द्रीय स्थल है। सभी सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक कार्य यहीं सम्पन्न होते हैं। राजनैतिक दल भी अपने सम्मेलन इस पार्क में आयोजित करते हैं। पार्क के नीचे दक्षिण पश्चिम में पहले छोटा सा बाज़ार था किन्तु अब इसका विस्तार एक किलोमीटर से भी अधिक है। बाज़ार के नीचे एक विशाल सरोवर था जिसका नाम तालाब सैलां था। इसे अब भरकर बस अड्डा बनाया गया है। महल के ऊपर भी एक खुला मैदान है जो आज क्रीड़ा स्थल बना हुआ है। महल के निकट पूर्व में भी एक कि.मी. के लगभग लम्बा बाज़ार है। इसका विकास 1947 के बाद हुआ। अब इसका नाम मुकर्जी बाज़ार है। बाज़ार के ऊपरी सिरे पर सरकारी कार्यालय हैं जिन में जिलाधिकारी, न्याधीश तहसील दार, कोषागार, बैंक, खाद्य आपूर्ति आदि के विभाग हैं। इन भवनों के पूर्व में उधमपुर का प्राचीन बाड़ेयाँ मुहल्ला है जिस की बावलियाँ अति प्रसिद्ध हैं। अब उधमपुर का चँहुमुखी विकास हुआ है। धार सड़क बनने से यह कलर तक फैला है। इसमें कई नई कालोनियाँ बसी हैं और कई नये मुहल्ले विकसित हुए हैं जिनसे यह शहर दिन-प्रतिदिन फैलता ही फैलता जा रहा है। सन् 1947 के बाद गढ़ी में सैनिक छावनी बनने के बाद तो इस नगर की चहल-पहल बढ़ गई है।

जनसंख्या- सन् 1850 में इस नगर की जनसंख्या पाँचसौ के लगभग थी। 1900 में दो हज़ार तथा 1981 की जनगणना में यह संख्या बढ़कर 22909 हो गई। अब यह पंचतालीस हज़ार से भी ऊपर चली गई है। 1981 में नगर में 20374 हिन्दू 1241 सिक्ख, 994 मुसलमान तथा 291 ईसाई थे। सन 2001 में इस नगर की जनसंख्या 86299 भी जिस में पुरूष 52093 और महिलाएँ 34206 थी।

लोक तथा जातियाँ:- उधमपुर में सभी धर्मों, सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। हिन्दुओं में जो ब्राह्मण हैं वे कई उपजातियों में विभाजित हैं। यथा। बैगड़ा, मंगोत्रा, खजूरिया, सारस्वत, बल्कुड़िये, सदोत्रा, दुबे, बड़ेयाल, केसर, धर्मट्ट, पाधा, केरणी आदि, इसी प्रकार राजपूत भी कई उपजातियों में बंटे हैं, यथा जमवाल, हिन्ताल, भतियाल, बन्दराल और बलुवाल। चन्देल तथा वद्दन भी राजपूत माने जाते हैं किन्तु इनमें कई मुसलमान हैं। क्षत्रीयों में खन्ना,

मल्होत्रा, आनन्द, अबरोल, आदि तथा महाजनों में कैलू, खंडेयाल, आनन्द, अबरोल , पाबा आदि उपजातियों के लोग यहाँ बसते हैं। हरिजनों की भी यहाँ अच्छी संख्या है और वे एक अलग मुहल्ले में रहते हैं। कुछ सम्पन्न हरिजन परिवार शहर के धनाढ्य लोगों के मुहल्लों में भी रहते हैं। उधमपुर में एक मुहल्ला कालिया ब्राह्मणों का भी है। इन्हें शनि देवता का पुरोहित माना जाता है। ये उधमपुर से पूरे प्रान्त में घूमते फिरते हैं। इनके अतिरिक्त धीवर, नाई, लुहार, तरखान, जुलाहे, नाथ जोगी भी इस नगर में रहते हैं और अपनी जाति के अनुरुप काम करते हैं।

व्यवसाय:- उधमपुर के लोगों का मुख्य व्यवसाय व्यापार, ठेकेदारी, दुकानदारी, सरकारी नौकरी तथा उद्योग-धन्धों में काम करना है। कई लोग दुकानदार हैं। ठेकेदारी भी इनका मन पसंद व्यवसाय है। वैद्य, डाक्टर भी पर्याप्त संख्या में हैं। यहाँ तक उधमपुर के लोगों की आर्थिक दशा का सम्बन्ध है ये आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं। कुछ ही परिवार ऐसे हैं जो गरीबी की रेखा के नीचे रहते हैं।

वेश–भूषा:– स्थानीय निवासी डोगरा लिवास ही पसंद करते हैं। वे ढीला–ढाला या तंग चुड़ीदार पायजामा, खुला पायजामा लम्बा कुर्ता, वास्काट, खुले गले का घुटनों तक लम्बा कोट सिर पर पगड़ी या टोपी पहनते हैं। कभी यहाँ कनटोप का भी प्रचलन था। ब्राह्मणों में धोती-कुर्ता का प्रचलन अब भी है। गिद्दी बांधने की प्रथा भी रही है। किन्तु अब सभी नये रंग में रंग तेजा रहे हैं। नित नये फैशनों के आ जाने से वेश-भूषा में भी परिवर्तन आया है।

आहार:- इस नगर के निवासियों का प्रिय आहार दूध, दही,पनीर, मक्की, गेहूँ की रोटी, दालें, सब्जियाँ और चावल हैं। उधमपुर कलाड़ियों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। राजमाष का मद्धरा बहुत पसंद किया जाता है। कुछ लोग मासाहारी भी हैं। मछली और अंडा का प्रयोग भी होता है।

उद्योग-धन्धों की दृष्टि से यह नगर बहुत पिछड़ा है। यहाँ कोई बडे पैमाने का कारखाना या औद्योगिक केन्द्र नहीं है। फिर भी कुछ लोग साबुन बनाना, तेल निकालना, आटा पीसना, बर्तन बनाना, छापना, मसाला तथा अचार तैयार करने का काम करते हैं। ईंटों के भट्ठे भी यहाँ तीनचार हैं। यहाँ 1981

तक केवल सोलह छोटी फैक्टरियाँ पंजीकृत हुई थी।

धार्मिक जीवनः- इस नगर के लोग धार्मिकवृति के हैं। इनका आचरण उच स्तर का है। यज्ञ, अनुष्ठान, पूजा-पाठ, ब्रत में विश्वास रखते हैं। मंदिरों में भी जाते हैं किन्तु अध्यात्मिकता की दृष्टि से बहुत कम लोग आगे बढ़ पाये हैं। इनका धार्मिक जीवन भी भौतिकता के आवरण में सिमटा है। ईश्वर में इनका विश्वास है। देवी-देवताओं, कुल देवताओं की पूजा करते हैं और उन्हें तुष्ट करने के लिए यज्ञों तथा अनुष्ठानों का आयोजन भी करते हैं।

यहाँ कई धर्मों सम्प्रदायों के केन्द्र हैं। आर्यसमाजी, सनातन धर्मो, शैव, शाक्त, अद्वैतवादी, द्वैतवादी सभी रहते हैं। धार्मिक सम्मेलनों का आयोजन भी होता है। मुसलमान, सिक्ख और ईसाई भी अपने-अपने धर्मों के प्रति आस्था बद्ध हैं।

नैतिकचरित्रः- नैतिक दृष्टि से इस नगर के लोगों का जीवन सामान्य है। न तो इनके आदर्श बहुत ऊँचे हैं और नहीं इन्हें हल्के चरित्र का कहा जा सकता है। जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण साकारात्मक तो है किन्तु अभी तक ये लोग वर्जनाओं, अन्ध विश्वासों, परम्पराओं, रुढ़िवादिता से मुक्त नहीं है। इन्हें न तो प्रगतिवादी कहा जा सकता है और न रूढिवादी। इनका नैतिक जीवन अपना ही है। सत्यवादी भी हैं तो झूठ भी बोल देते हैं। दानी हैं तो लोभ भी करते हैं। इन के चरित्र में गुण और दोषों का समन्वय देखा जा सकता है।

शिक्षा केन्द्रः- नगर स्थापना के बाद उधमपुर में महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में देविका नदी के तट के साथ एक संस्कृत पाठशाला खुली। सन् 1947 तक यह पाठशाला चली। इसमें पच्चास के लगभग विद्यार्थी अध्ययन करते थे। महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में स्कूल भी खुला और महाराजा प्रतापसिंह ने उसे पदोन्नति देकर मिडल स्कूल बनाया। आज़ादी के बाद शिक्षा केन्द्रों में बढ़ोतरी हुई और आज स्थिति यह है कि उधमपुर में दो महाविद्यालय, एक पुलीस प्रशिक्षण महाविद्यालय, तीन बी.एड कॉलेज और दर्जनों की संख्या में उच्च-विद्यालय तथा अन्य शिक्षा केन्द्र हैं। शिक्षा के प्रसार से लोगों में नई रोशनी आई है और वे अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़े हैं।

भाषा और साहित्य - उधमपुर डोगरी-भाषा का केन्द्र माना जाता है। इसका लोक-साहित्य अति समुन्नत और समृद्ध है। शिष्ट साहित्य में भी कई लेखकों के नाम चर्चा में है। आनन्द स्वरुप अंजुम, बख्शी बलराज शरर बालकृष्ण चंचल, रामलाल आतिश, परमचन्द प्रेमी, आदर्श और सरदार अर्जुनसिंह ने साहित्य जगत में नाम कमाया है। प्रकाश प्रेमी भी उधमपुर में बसे हैं। यहाँ साहित्य संगम उधमपुर, रचनाकार, सृजन आदि संस्थाएँ साहित्य की अभिवृद्धि के प्रति यत्न शील हैं।

कलाएँ:- उधमपुर में स्थापत्य कला के नमूनें देविका तट पर निर्मित सरायों तथा मंदिरों में देखे जा सकते हैं। स्थानीय बटैहड़ों द्वारा प्रस्तर शिलाओं पर जिस ढ़ग का तक्षण किया जाता है वह सराहनीय है। उधमपुर की वावलियों में लोकमूर्ति कला के नमूने देखे जा सकते हैं। उधमपुर लोक संगीत के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की बुल्वालती भाख प्रसिद्ध है। रंगमंच की दृष्टि से यहाँ की रामलीला प्रसिद्ध है। नृत्यकला की दृष्टि से भांगड़ा फुम्मनी कुड़ड, गगैहल उधमपुर के लोकप्रिय नृत्य हैं। लोकोत्सवों पर्वों पर इनका प्रदर्शन होता है।

लोकोत्सव-वैसे तो उधमपुर में पूरा बर्ष उत्सव चलते ही रहते हैं। किन्तु तीन दिवसीय वैसाखी का मेला पूरे प्रान्त में प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त एक मेला भगवान जगन्नाथ के मंदिर में भी लगता है जहाँ गोवर से भगवान जगन्नाथ की मूर्ति बनाई जाती है। इसके अतिरिक्त शिवरात्रि का मेला कामेश्वर मंदिर में आयोजित होता है।

देवस्थान:- उधमपुर की विशेष प्रसिद्धि का कारण देविका तीर्थ है। इसी तीर्थ स्थल के आस पास कामेश्वर मंदिर, नृसिंह मंदिर, देविका माता मंदिर रघुनाथ मंदिर गुरु रविदास मंदिर, विश्वकर्मा का मंदिर, हनुमान का मंदिर, शीतला माता का मंदिर है। इसके अतिरिक्त बाड़ेयाँ में डंगे वाली माता, हरे रामा हरे कृष्णा मंदिर, पांडु मंदिर भी हैं। वहाँ एक बड़ा गुरुद्वारा तथा दो मस्जिदें हैं। नगर में इसाईयों के कई चर्च हैं जिन में प्रति रविवार को भीड़ देखी जा सकती है।

दर्शनीय स्थल- कामेश्वर मंदिर:-उधमपुर की ख्याति का मुख्य कारण देविका नदी के तट पर निर्मित कामेश्वर मंदिर है। इस मंदिर का

उल्लेख पद्म पुराण के पाताल खंड में भी हुआ है। देविका नदी के तट पर स्थित होने के कारण इसे अत्यधिक महत्व दिया जाता है। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि भक्त ध्रुव ने भी इस तीर्थ की यात्रा की थी, अत: यह अति प्राचीन मंदिर हैं। कामेश्वर भगवान के उधमपुर में दो मंदिर हैं। एक नया और दूसरा प्राचीन है। प्राचीन मंदिर प्रस्तर शिलाओं से निर्मित है। पूर्वोन्मुख इस मंदिर का शिवलिंग विचित्र, बिलक्षण और अद्‌भुत है। नया कामेश्वर मंदिर नाथ पंथियों के अधिकार में है। पंचरथी इस मंदिर के गर्भगृह में शिव पार्वती की जो युग्म प्रतिमा है कला की दृष्टि से वह अनुपम है। यह मूर्ति आदम कद है। दक्षिणोन्मुख इस मंदिर का शिखर भाग ऊपर जाकर सीमिट गया है। इस मंदिर परिसर में देवी देवताओं की मूर्तियाँ एक ऊँचे चबूतरा पर प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियाँ मूर्ति कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं। कामेश्वर मंदिर में पत्थर पर उत्कीर्ण नागमणि दर्शनीय है। मंदिर में तीन डोगरी शिलालेख तथा घंटा पर उत्कीर्ण डोगरी शब्दावली का अनुशीलन करने से स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि उधमपुर में डोगरी लिपि का प्रचलन होता था। यह मंदिर प्रत्येक दृष्टि से भव्य और दर्शनीय है।

चन्देल नगरी (चनैनी)

स्थिति:- यह पवर्तीय नगर जम्मू-कश्मीर राष्ट्रीय राजमार्ग के पूर्व में मादा पहाड़ की ढलान में बसा है। उधमपुर से इसकी दूरी 23 कि.मी. है। सन 2001 में इस कस्बा की आबादी 2054 थी।

नामकरण:- स्थानीय ऐतिहासिक ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट है कि इस नगर की स्थापना कल्हूर के गम्भीर चन्द चन्देल ने अपनी उपजाति के नाम पर की और इसका नाम चन्देल नगरी रखा जो बाद में बिगड़ता-बिगड़ता चनैनी के नाम से प्रचलन में आया। बताया जाता है कि चनैनी से पहले हिमता राज्य की राजधानी चक्क थी यहाँ भवनों के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं।

इतिहास:- बताया जाता है कि पहले इस क्षेत्र में नागवंशीय राजाओं का राज्य था। उनकी राजधानी कहीं मान तलाई के आस-पास थी। चनैनी का क्षेत्र उनके राज्य का एक भाग था। शुद्ध-महादेव के त्रिशूल में नागराजाओं के नाम उत्कीर्ण हैं जिन में एक नाम विभुनाग और दूसरा गणपति नाग है। नागों

का राज्य यहाँ कब और कैसे समाप्त हुआ इसका विवरण तो नहीं मिलता किन्तु इतना बताया जाता है कि गम्भीर चन्द ने मेघ राजा को पराजित किया और इस राज्य पर अधिकार कर लिया। एक मत यह है कि मेघ ही नागों के वंशज या उतराधिकारी हैं।

राजा गम्भीर चन्द के बाद उसकी पच्चास पीढ़ियों ने चनैनी में राज्य किया। इस वंश का अन्तिम राजा रामचन्द था। इस राजा के शासन काल में कई जन-आन्दोलन उभरे परिणाम स्वरुप उसे गद्दी छोड़नी पड़ी और सन् 1948 में चनैनी का विलय जम्मू-कश्मीर में हुआ।

नगर संरचनाः- चनैनी एक छोटा सा ढलान में बसा नगर है। इसमें एक चौगान है जिसका उपयोग अब बस अड्डा के रुप में होता है। चौगान के इर्द-गिर्द कई दुकाने हैं और अब यही स्थान चनैनी की मंडी है। यहाँ पहाड़ी माल का क्रय-विक्रय होता है। चौगान के नीचे बाज़ार है। इस बाज़ार में यह विशेषता है कि यह सीढ़ी नुमा है और उतरते समय ढलान अधिक महसूस होती है। बाज़ार के दोनों ओर दूकाने हैं जो सामान से भरी हैं। बाज़ार के साथ कई छोटी-छोटी गलियाँ हैं जो नगर को छोटे-छोटे मुहल्लों में बाँटती है। बाज़ार आरम्भ में तंग है किन्तु आगे चल कर खुला हो गया है। पहले बाज़ार में अधिकांश दुकाने कच्ची थी किन्तु अब दुकानें और मकान पक्के हैं।

यहाँ बाजार समाप्त होता है वहाँ से महल की सीढ़ियाँ आरम्भ होती हैं। सीढ़ियाँ और महल की डयोढ़ी तो अब भी मूल रुप में हैं किन्तु महल धराशायी है और एक बड़े ढेर के रुप में देखा जा सकता है। इस महल से तवी नदी का परिदृश्य देखा जा सकता है। नगर में तीन सौ के लगभग घर हैं और आवादी अढ़ाई हज़ार के करीब है। कई नये घर भी बन रहे हैं और नगर का विकास हो रहा है।

चनैनी एक तहसील का मुख्यालय है। अतः यहाँ कई सरकारी कार्यालय हैं जिन के कारण इस उपनगर का अब कायाकल्प दिखाई देने लगा है। लोग परिश्रमी, कर्मठ, सरल और सादा है जीवन शैली, आहार व्यवहार, रीति-रिवाज, लोक अनुष्ठान वैसे ही हैं जैसे उधमपुर में हैं। यह एक डोगरा उपनगर के रुप में विकसित है।

सांस्कृतिक महत्वः- चनैनी का विशेष महत्व इस उपनगर के निकट स्थित सांस्कृतिक केन्द्रों के कारण है। इन केन्द्रों में शुद्ध महादेव का शूल पाणेश्वर महादेव मंदिर, गौरी कुंड, पाप नाशिनी बावली, हरिद्वार, सोम-तीर्थ, वृहद-शुद्ध, मान तलाई, हरिद्वार, विनिसंग, दशालय बूढ़े केदार आदि उल्लेखनीय हैं। धनास के निकट चज्ज की पहाड़ी पर एक गुफा के बाहरी भाग में चित्रकला के सुन्दर नमूने मिलते हैं। कुलाख के मंदिर में पत्थर के एक सन्दूक में एक प्राचीन हस्त लिखित पुस्तक है जिसे पुजारी चार बर्ष बाद प्रदर्शित करता है।

पुरातत्वः- चनैनी पुरातत्व की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण नगर है। इस उपनगर के इर्द-गिर्द रैंकी, शिवगढ़, कोटली तथा पट्टन गढ़ में जो शिलालेख, नागमूर्तियाँ, महलों के पुरावशेष, मंदिरों तथा तवी नदी के तट के साथ प्रस्तर शिलाओं पर उत्कीर्ण मानव पाँव और हस्त मिले हैं, उनसे इस क्षेत्र के पुरातत्व के कई रहस्य खुलते हैं। सुद्धमहादेव की खुदाई में जो एक लम्बी दीवार मिली कहा जाता है कि वह कुषाण कालीन है।

भाषा और साहित्य- चनैनी की भाषा डोगरी है। इसका लोक साहित्य अति समृद्ध है। चनैनी में कई ऐसे लोग गीत भी मिलते हैं जिन में ऐतिहासिक घटनाएँ, सामाजिक जीवन तथा सांस्कृतिक पक्ष अभिव्यक्त है। ऐसे गीतों में 'बरमोट दी बाँह' ऐसा गीत है जो न केवल चनैनी के इतिहास अपितु नारी जीवन से जुड़ी परम्पराओं को भी प्रकाश में लाता है।

चनैनी के लेखक डोगरी भाषा और साहित्य के प्रति समर्पित है। मां. पुरुषोतम चन्द्र चनैनी के मान्य साहित्य कार हैं।

चनैनी के धार्मिक स्थलः- चनैनी मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ बस अड्डा के साथ ही एक पुराना शिव मंदिर है। इस मंदिर के साथ एक गुफा है। यह स्थान नाथ योगियों के नियंत्रण में है। लोकपराम्परा है कि नाथ योगी राजा गोपीचन्द और भरथरी इस गुफा में रहे हैं। तवी तट पर एक पुराना हनुमान मंदिर भी लोगों के आकर्षण का केन्द्र है। इस मंदिर में स्थापित हनुमान की विशाल मूर्ति दर्शनीय है। कन्या विद्यालय के निकट जालन्धरा माता का मंदिर है। माना जाता है कि चन्देल नरेश इसे अपनी कुलदेवी के रुप में पूजते रहे हैं। भोली माता के दो स्थान हैं। एक स्थान पुलीस निरीक्षण

केन्द्र के साथ है। यहाँ देवी की पिण्डियाँ हैं। लगता है यह कुलदेवी रही होगी। ठुठयार देवी का स्थान वच्छल के निकट है।

इसके अतिरिक्त चनैनी में कई साधु-संतों पीरों तथा फकीरों के स्थान भी हैं जिन में उल्लेखनीय हैं:- बाबा शाम गिर का गुफा मंदिर। यह मंदिर चनैनी के वरेश्वर मंदिर के निकट है। इस संत को हिन्दू बावा के नाम से और मुसलमान दरवेश के रुप में पूजते हैं। बावा वुड्ढन शाह की खानकाह चनैनी नगर के भीतर है। इस के अतिरिक्त कुद्द वाले बाबा को लोग लोक देवता के रुप में पूजते हैं।

स्थानीय लोक देवी-देवताओं की पूजा, लोकोनुष्ठान, पर्व, व्रत त्योहार, जीवन से मृत्यु तक के संस्कार इनके ऐसे ही हैं जैसे डुग्गर के अन्य नगरों के हैं। विवाह में मालिया प्रथा का प्रचलन रहा है जो अब समाप्त प्राय स्थिति में है।

चनैनी के पर्यटन स्थल:- वास्तव में चनैनी का जो महत्व पर्यटन स्थल के रुप में है उसे किसी भी रुप में अनदेखा नहीं किया जा सकता। चनैनी नगर अपने आप में पूर्ण रुप से एक पर्यटन स्थल है। यहाँ के प्राकृतिक परिदृश्य अति मोहक हैं। गर्मियों में चनैनी का मौसम अति सुहाना होता है। यहाँ का तापमान 35 डिग्री सेलिसियस तक रहता है। चनैनी घने जंगलों से चारों ओर से घिरा है अत: जब यहाँ बनों की वयार बहती है तो उसके स्पर्श से शरीर पुलकित हो जाता है। चनैनी में स्थित बड़ी बावली और उसकी मूर्तियाँ देखने योग्य हैं। चनैनी के अतिरिक्त दियार दब्बड़, तलड सूह, वरनोट बां, विनिसंग, धनास, पट्टन गढ़, चज्ज, मानतलाई, देहरे दा तार तथा बद्धु सुद्ध, ऐसे मोहक स्थान हैं जो पर्यटकों को सहज में ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

जगनपुर (जगानु)

स्थिति:- यह उपनगर उधमपुर से बारह किलोमीटर की दूरी पर तवी नदी के पूर्वी तट पर फैली एक असमतल पठार के ऊपर बसा है। इस की भौगोलिक स्थिति 32^0.34 अक्षांश और 39^0.30 रेखांश है।

नामकरणः- स्थानीय विद्वान कालीदास खजूरिया के अनुसार राम नगर के राजा कृष्ण देव ने जगानु का क्षेत्र अपने कुल पुरोहित 'जगो' को दान में दिया और 'जगो' ने अपने नाम पर 'जगानु' ग्राम बसाया। कालीदास के अनुसार यह नगर 613 बर्ष पुराना है। ओमप्रकाश कैलू के अनुसार इस उपनगर का संस्थापक राजा जगत देव था। जनश्रुतियों के अनुसार जोनू और जगानु स्थानीय राणाओं द्वारा बसाये गए ग्राम हैं।

इतिहासः- जगानु का लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है। जनश्रुतियों के अनुसार इस क्षेत्र के आदि शासक सलारिये थे। उन्हें किसी कारण यह स्थान छोड़ना पड़ा। उनके बाद मदनपाल यहाँ का शासक बना जिसने 'मदनपुर' नामक एक नगर बसाया, इस नगर के पुरावशेष जगानु रक्ख के आस-पास बिखरे मिलते हैं किन्तु मदन पाल के वंशजों का कोई वृत नहीं मिलता डुग्गर के कई भागों में 'पाल' वंशीय राजाओं का शासन रहा है किन्तु मदनपाल किस राजवंश से सम्बन्धित था इसका पता नहीं चला। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार राजा कृष्ण देव ने भी यहाँ महल बनवाये थे। यहाँ एक सरोवर भी है जिसे दुर्योधन का तालाब कहते हैं। कृष्णदेव का उतराधिकारी कर्णदेव था। उसने जगानु में एक शिव मंदिर बनवाया यह जगानु का सबसे प्राचीन मंदिर माना जाता है।

महाराजा रणजीत देव के शासनकाल में जगानु उनकी निजी जागीर थी। उन्होंने यह जागीर अपने कनिष्ठ पुत्र दलेल देव को प्रदान की थी जो अपनी माता के साथ जम्मू से निष्कासित होने के बाद यहाँ रहता था। उसका वध हुआ तो यह नगर फिर वीरान हुआ किन्तु राजा जीत सिंह के शासनकाल में उसकी रानी बन्दराली जब राजा से लड़-झगड़ कर आई तो उसने जगानु को ही अपना आवास बनाया। रानी के समय जगानु में जो राजमहल बने उन्हें 'पक्की मंडी' नाम दिया गया। ये महल तो अब धराशायी हैं किन्तु अवशेष देखे जा सकते हैं।

नगर संरचनाः- राजा सुचेत सिंह के शासनकाल में जगानु एक बहुत बड़ा उपनगर था। उपलब्ध जानकारी के अनुसार तब जगानु में 360 घर ब्राह्मणों के थे जो किला के आस-पास थे। 52 घर महाजनों के 21 घर क्षत्रीयों के 40 घर स्वर्णकारों के तथा इक्कीस धीवर लुहार, तरखान, धोबी तथा नाईयों के थे। हरिजनों की वस्ती अलग थी। गाँव के मध्य में एक बड़ा

तालाब बना जिस की अट्टारिकाएँ शिला प्रस्तरों की थी और कलात्मक थी। तालाब के नीचे ब्राहमण, मध्य में महाजन और ऊपर मुसलमानों के घर थे। उन दिनों कुल 513 घर थे और आवादी 30781 थी। राजा सुचेत सिंह ने 113 परिवार बाहर से बुलाये जिन में गुजराती, जुलाहे, दर्जी, दरवेश और सैय्यद भी थे। किन्तु सन 2001 में जगानु की कल आबादी 916 थी। इस में घरों की संख्या 169 थी।

व्यापरिक केन्द्रः- सन् 1920 से पहले जगानु तहसील ऊधमपुर में सबसे बड़ा नगर था। यह नगर व्यापार की मंडी था। यहाँ एक सौ से भी ऊपर दूकानें थी यहाँ पहाड़ी माल खरीदा और बेचा जाता था। डोडा, किश्तवाड़, रामवन, भद्रवाह के व्यापारी खच्चरों में समान लाते थे और साम्बा के मार्ग से पहाड़ी माल जगानु के व्यापारी अमृतसर भेज देते थे। इससे इस नगर का आर्थिक विकास हुआ।

किन्तु सन् 1920 में जब जम्मू-श्रीनगर सड़क चालू हो गई तो व्यापार का केन्द्र उधमपुर बना। जगानु के व्यापारी ऊधमपुर चले गए जिससे यह नगर विरान हो गया। किन्तु सन 1980 के बाद इसमें पुनः नई चेतना आई कई घर नये बने। दोनों बाजारों में पुनः रौनक आई। अब जगानु के लोग खुशहाल तथा समृद्ध हैं।

जगानु का जन जीवन ऊधमपुर से मिलता जुलता है।

दर्शनीय स्थलः- जगन पुर एक प्राचीन नगर है। यह सड़क से उध मपुर के साथ जुड़ा है। यहाँ पुरातत्व इतिहास तथा संस्कृति से जुड़े कई स्थल हैं। इन स्थलों में उल्लेखनीय हैंः- जगानु का किला, पुराना शिव मंदिर, महाकाली का मंदिर, नृसिंह भगवान का मंदिर, सरोवर, बाबा भैड़ का स्थान, तवी की गुफाएँ, जवाहर नवोदय स्कूल, नाग देवता बावा भोला का देवस्थान, कुल देव कुंडा का देवस्थान तथा किले के सामने खुला मैदान जिसे परेड कहते हैं। जगानु के लोग धार्मिक वृति के हैं। वे ईश्वर औद देव पूजा में विश्वास करते हैं। वे मंदिरों में भी जाते हैं और पर्व तथा उत्सव भी मनाते हैं। जगानु में कई शिक्षा केन्द्र हैं जिस कारण नई पीढ़ी साक्षर है।

बन्दरालता (रामनगर)

डुग्गर संस्कृति का हृदय-स्थल बन्दरालता जम्मू से 102 कि.मी. की दूरी पर उतर पूर्व में शिवालिक पर्वत श्रंखलाओं के बीच एक लम्बे-चौड़े

अंसमतल ढलान बाले भूखंड में बसा है। यह उप नगर चारों ओर से कहीं छोटी-कहीं बड़ी पहाड़ियों से घिरा है। इसका प्राकृतिक सौंदर्य अनुपम है। भौगोलिक दृष्टि से इसकी स्थिति $32^0.48$ अक्षांश उतर और $75^0.19$ रेखांश पूर्व में है।

नाम करण:- बन्दरालता उपनगर का संस्थापक लोकपरम्परानुसार चम्बा राजवंश का सामंत वहतर देव या वत्रदेव था। उसने सोलहवीं सदी के आरम्भ में स्थानीय राणाओं को पराजित करके एक नये राज्य की स्थापना की। उसने अपने लिए एक नई राजधानी बसाई जिस का नाम उसने अपने नाम पर बन्दरालता रखा। बाद में उसके राज्य का नाम भी बन्दरालता विख्यात हुआ। एक मत यह है कि 'अत' अरबी का शब्द है जिस का अर्थ है- जागीर, यह क्षेत्र बन्दरालों की जागीर था, अत: इसे बन्दरालता नाम दिया गया। सन् 1822 ई. में यह राज्य राजा सुचेत सिह को जागीर में मिला तो उसने इस का नाम बदल कर रामनगर रखा। अब यही नाम प्रचलन में है और इसे रामनगर के नाम से ही अभिहित किया जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ट भूमि:- सोलहवीं सदी से पूर्व बन्दरालता छोटे-छोटे खंडों में विभाजित था। इन खंडों के अधिपति राणा थे। के हिन्दू ध ाम के प्रति निष्ठावान थे। अत: हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करते थे। बन्दरालता क्षेत्र में जो शक्ति शाली राणा थे उनमें सत्यां और बसंत गढ़ के राणा विख्यात थे। सत्यां के राणा का वृहतर देव ने लड़ाई में पराजिन किया और पहले सत्यां पर अधिकार किया। बाद में वह धीरे-धीरे अन्य राणाओं को पराजित करने में सफल रहा। उसने जो नया राज्य स्थापित किया उसका नाम उसने 'वृहतरालता' रखा जो बिगड़ते बिगड़ते बन्दरालता प्रचलन में आया। वृहतर देव के उतराधिकारियों के जो नाम मिलते हैं वे हैं:- भोजदेव, सुलतान देव, केशराय, प्रतापदेव, हुक्म देव, भीलम देव, जोगदेव, नाहर देव, लक्ष्मणदेव, तरुवर देव, छत्रसाल, कैलाशपत, इनुदेव, राजपत, भगवंतसिंह, जगत सिंह, भूपदेव तथा चन्दन धर देव। सन् 1822 ई. में पंजाब के महाराजा रंजीत देव के आदेश पर चन्दन देव से राजगद्दी छीन ली गई और बन्दरालता एक जागीर के रुप में सुचेत सिंह को प्रदान किया गया। राजा सुचेत सिंह की सन् 1844 ई. में हत्या हुई तो वह नि: सन्तान मरा। अत: बन्दरालता जम्मू के साथ मिलाया गया। महराजा रणवीर सिंह ने अपने मंझले पुत्र राम सिंह को बन्दरालता का जागीरदार बनाया। उसके दो बेटे अल्पावस्था में मरे। उसकी

वेटी का विवाह चनैनी के राजा के साथ हुआ था। अतः उसका कोई उतराधिकारी नहीं था। इसलिए महाराजा प्रतापसिंह ने बन्दरालता का विलय जम्मू-कश्मीर राज्य में किया। महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में जब नये जिले गठित हुए तो रामनगर को जिला उधमपुर की तहसील का मुख्यालय बनाया गया। तब से रामनगर तहसील का मुख्यालय है। एक तहसील में जितने राजकीय कार्यालय होते हैं, वे सभी इस नगर में हैं। पहले यह माना जाता था कि रामनगर एक पिछड़ा नगर है किन्तु अब यह एक विकासोन्मुख नगर के रुप में उभर रहा है।

नगर संरचनाः- बन्दराल राजाओं के शासनकाल तक रामनगर केवल झिगड़ी चौकी तक ही सीमित था। लाटेश्वर मंदिर इस उपनगर का मुख्य केन्द्र था। मंदिर से दो सौ मीटर पूर्व की ओर राज महल था। इस महल की बाह्य दीवार अब भी खड़ी है, शेष महल धराशायी है। महल के सामने वृन्दावन नाला के साथ-साथ बाज़ार था जो परेड तक लम्बा था। बाज़ार के आगे-पीछे मकान थे जो प्रायः सभी कच्चे थे। एक मुहल्ला हज़ारियों का था। उनके महल पक्के थे।

राजा सुचेत सिंह ने इस नगर को नया रुप दिया। उसने परेड के पूर्व में अपने महल बनाये जो दुर्ग की भाँति सुदृढ़ थे। उसने परेड के उतर में दुर्ग बनवाया। राजा नृसिंह भगवान के प्रति भी आस्थाबद्ध था, अतः उसने झिगड़ी चौकी से नृसिंह मंदिर स्थानान्तरित किया और उसे अपने महल के पार्श्व में स्थापित किया। सुचेत सिंह ने बाहर से सैकड़ों लोग बुलाये। उन में कई शिल्पकार भी थे। सुचेत सिंह ने उन्हें भूमि आवंटित की और रामनगर में बसाया। सुचेत सिंह के शासन काल में नया बाज़ार विकसित हुआ और देखते ही देखते यह पहाड़ी माल की मंडी बन गया। बाज़ार के साथ कई नई गलियाँ और मुहल्ले विकसित हुए। इन से रामनगर का रुप और स्वरुप ही बदल गया। आज रामनगर डुग्गर के सम्पन्न और समृद्ध नगरों में एक है।

जन जीवनः- रामनगर बहुजातीय नगर है। यहाँ सभी जातियों के लोग रहते हैं। पहले अधिक घर ठक्कर राजपूतों के थे। वे भी कई उपजातियों में विभाजित थे। जमवाल राजाओं से पहले इस गाँव में महाजन, खत्री और ब्राह्मण बस चुके थे किन्तु राजा सुचेत सिंह और रामसिंह ने बहुत से लोगों को बाहर से बुलाया। इन में महाराष्ट्र के साठे, त्रिपाठी, दुबे आदि भी थे। रंग

साज़, जुलाहे, सोची, तोपची आदि कई व्यवसायिक जातियाँ यहाँ आ बसी। ओम शर्मा जन्दरेड़ी के अनुसार उन दिनों वृन्दावन नाला के पास कागज़ बनाने का कारखाना था, एक कारखाना व्रारुद का भी था। वारुद बनाने वाले कारीगिरों को अलग वस्ती में वसाया गया था, उसे आज 'दारुगिरें दी ढक्की' नाम से अभिहित किया जाता है। एक यहाँ छापा खाना भी था। महाजन और क्षत्री दूकानदारी या व्यापार करते थे। ब्राह्मण मंदिरों के पुजारी थे और पुरोहिताई का काम भी करते थे। विद्या पढ़ाना, धर्म प्रचार करना, धर्मग्रंथों का पठन करना और लोगों को सुनाना इनका काम था। कुछ ब्राह्मण दूकान दार भी थे। किन्तु अब रामनगर के जन जीवन में परिवर्तन आया है। विद्या केवल एक सम्प्रदाय तक सीमित नहीं रही। सबको ज्ञानार्जन का अधिकार है। व्यापार भी सब के लिए है और दूकानदारी जो चाहे कर सकता है। ठक्करों का लगाव कृषिकर्म में पहले भी था और आज भी है। वे सिपाही गिरि को पहले भी पसंद करते और आज भी करते हैं। पहले हलवाहे ब्राह्मणों को दूसरे दर्जे का द्विज माना जाता था किन्तु अब सभी एक समान हैं। न कोई छोटा है न बड़ा। रामनगर के जोगी समाज में बहुत चर्चित रहे हैं। वे उच्चकोटि के तांत्रिक थे। निर्मल आकाश से वारिश वरसाना उनके लिए सहज था। कहते हैं कि वे तूफान की दिशा को भी मोड़ सकते थे। इन तांत्रिक जोगियों के कारण रामनगर में वाममार्ग भी प्रचार में रहा किन्तु स्थिति शीघ्र ही सुधर गई। लोगों में शैव और शाक्त सम्प्रदायों का प्रभाव भी रहा। वैष्णववाद मुख्य रुप से जमवालों के शासन में फैला। इस से पूर्व लोग लोकदेवों के अनुष्ठानों में ही संलग्न रहते थे। वलि प्रथा आम थी। लोग अन्ध-विश्वासी, रुढ़िवादी, परम्परावादी तथा मानसिक रुप से पूर्ण रुपेण विकसित नहीं थे। किन्तु रामनगर में जैसे-जैसे शिक्षा का आलोक फैला, परिस्थितियाँ बदली। सोच में परिवर्तन आया। दिशाहीन लोगों को दिशा मिली। आज स्थिति यह है कि रामनगर का जन समाज जागरुक और सचेत है।

रीति-रिवाजः- रामनगर के रीति रिवाज डुग्गर प्रदेश के रीति-रिवाजों से मिलते हैं किन्तु पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण कुछ भिन्न रीति-रिवाज भी देखने को मिलते हैं। रामनगर में विवाह संस्कार सम्बन्धी जो विभिन्नता थी उसे मालिया प्रथा कहा जाता था। किसी भी विवाहिता को उसके पति को मालिया (धनराशि) देकर प्राप्त किया जा सकता था। इस प्रकार एक महिला तीन-चार बार एक घर से दूसरे घर बिकती थी। दोहरी और 'दुआल' प्रथा का भी प्रचलन था किन्तु अब ये प्रथाएँ समाप्त प्राय हैं किन्तु इनके उदाहरण कदा

मिल जाते हैं। विधवा विवाह का प्रचलन भी था। विधवा के लड़के को 'रंडु' कहा यहां जाता था। उसे विवाह शादियों में दूसरी या अलग पंक्ति में बैठाया जाता था। उसके जो अधिकार थे वह द्वितीय श्रेणी के नागरिक जैसे थे किन्तु विधवा का गर्भवती होना स्वाभाविक तथा प्राकृतिक नियमों के अनुकूल माना जाता था। किन्तु यह सब अतीत के समाज में होता था। वर्तमान समाज शालीन और सम्य है।

लड़के का जन्म शुभ और लड़की का अशुभ माना जाता था। लड़के के जन्म पर लोग गीतों का आयोजन होता था। प्रसूति काल के ग्यारह दिन तक प्रसूता को काढ़ा पिलाया जाता था। मुहल्ले के लोगों में भी काढ़ा बांटा जाता था। मुहल्ले के लोग प्रसूता को दूध पहुँचाते थे। प्रसूति के पाँचवें दिन पंजाब और 11वें दिन 'सूत्रा' या नामकरण होता था, इक्कीसवें दिन विशेष दावत का आयोजन होता। अब भी ये संस्कार और रीतियाँ किसी न किसी रुप में प्रचलन में हैं किन्तु पहले जैसी प्रसन्नता और आत्मियता नहीं। हिन्दूओं में मुंडन और मुसलमानों में सुन्नत का रिवाज पहले जैसा ही है। दावतें भी होती हैं। किन्तु अब विवाह पहले जैसे नहीं रहे। न तीन दिन की वारात, न डफले, न चाव, न मिठाई की दावत, बस एक-दो दिन में ही धूम-धमाके के साथ विवाह तो सम्पन्न हो जाता है किन्तु वैसी सादगी अब नहीं है। पहले वारातियों को सिट्टिनयाँ दी जाती थी, वे सहन भी कर लेते थे किन्तु अब वैसा धैर्य कहाँ। अब तो दहेज की परिभाषा भी बदल गई है। आभूषण बदल गए हैं। विवाहिता लड़की और वरके वस्त्र भी बदल गए हैं। वे सब पुरातत्व की वस्तुएँ रह गई हैं।

किन्तु उन में अन्तर्निहित मानसिकता अभी नहीं बदली है।

व्यवसायः- प्रकाश प्रेमी के शब्दों में रामनगर के लोग परिश्रमी हैं। कृषि इन का मुख्य व्यवसाय है। ये व्यापार और सरकारी नौकरियाँ भी करते हैं। सैनिक की नौकरी इनकी पहली पसंद है। इसके अतिरिक्त तरखान, लुहार जुलाहे, मोची, रंगसाज़, कुम्हार, पंडित, पुरोहित, ठेकेदार सभी अपने-अपने व्यवसाय में मस्त हैं। रामनगर पहाड़ी माल की मंडी भी है, अतः व्यापारियों की आर्थिक दशा उन्नत तथा समृद्ध है। रामनगर का आम आदमी सामान्य जीवन जीता है। वह अमीर भी नहीं और गरीब भी नहीं है।

धार्मिक जीवनः- रामनगर धर्म की दृष्टि से एक संगम स्थल है। यहाँ नागपंथी, नाथपंथी, कबीर पंथी, रैदासपंथी, शैव, शाक्त, वैष्णव, आस्तिक, नास्तिक, वाम-मार्गी सभी वर्गों के लोग रहते हैं। इनकी आस्था देवी-देवताओं, लोकदेवताओं, ग्राम देवताओं में यथावत है। रामनगर में इस्लामधर्म के प्रति आस्था रखने वालों की संख्या भी कम नहीं है। सभी मिलजुल कर रहते हैं। साम्प्रदायिकता इनमें नहीं के बराबर है।

देवस्थानः- रामनगर को यदि मंदिरों का शहर कहा जाए तो अनुपयुक्त नहीं होगा। यहाँ ऐसा कोई मुहल्ला नहीं है, जहाँ कोई मंदिर या देह रान हो। रामनगर में सबसे प्रसिद्ध मंदिर नृसिंह मंदिर है। लोग भगवान नृसिंह को अपना इष्टदेव मानते हैं। झगड़ी चौरी में भगवान लाटेश्वर का मंदिर भी प्राचीन है। कहते हैं कि यह चन्दराल राजाओं के समय का है। शिवरात्रि को यहाँ बहुत बड़ा मेला आयोजित होता है। कुंडियारों का लक्ष्मी नारायण मंदिर, राजा रामसिंह द्वारा निर्मित शिव मंदिर तथा राधा कृष्ण मंदिर, जहारियों का शिव मंदिर, डालसर का शिव मंदिर प्रसिद्ध हैं। रामनगर में देवियों के भी कई मंदिर हैं जिनमें शीतला माता का मंदिर प्रसिद्ध है। रामनगर की देवियों में पिंगला, महामाया, जालन्धरा मुख्य देवियाँ है जिन के स्थान पिनगर, चौंतरा तथा सत्या में हैं। नाग देवताओं के मंदिर डुडु-बसन्त गढ़, गन्ध आदि में हैं। ये काष्ट मंदिर हैं और नाग खस शैली में बने हैं। इनके छत ढलवां हैं। नाग मूर्तियाँ पत्थर की भी मिलती हैं और काष्ठ की भी हैं। लोक देवताओं में कालीवीर, सिद्धगौरिया, गुग्गा चौहान के अतिरिक्त स्थानीय देवताओं के भी कई लघु मंदिर हैं।

मेले-पर्व और उत्सवः- रामनगर में पूरा बर्ष मेले और उत्सव चलते हैं। यहाँ पीरों के नाम पर दंगल करवाये जाते हैं। रामनगर का पीरखाना इस का मुख्य केन्द्र है। दंगलों में दूर-दूर से पहलवान आते हैं। राम नगर की छिंज बैसे भी पूरे जम्मू प्रान्त में प्रसिद्ध है। बैसाखी का मेला पहले रानी की समाधि यों पर लगता था अब परेड में लगता है। नवरातों में शक्ति स्थलों में, शिवरात्रि को शिव मठो में कृष्ण जन्माष्ठमी को राधाकृष्ण मंदिर में बहुत भीड़ देखी जा सकती है। दीपावली, दसहरा, लोहड़ी रक्षा बन्धन आदि पर्व परम्परा गत ढ़ंग से मनाये जाते हैं।

भाषा बोली और साहित्यः- रामनगर को डोगरी भाषा का गढ़ माना

जाता है। यहाँ का लोक साहित्य विश्व प्रसिद्ध है। रामनगर की भाख तथा गीतड़ू बहुत प्रसिद्ध हैं। देवगाथाओं, वारों, घटना प्रधान गीतों, संस्कार गीतों के रुप रामनगर की डोगरी में उपलब्ध हैं।

शिष्ट साहित्य में भी रामनगर बहुत आगे है। यह अम्मू के बाद अकेला ऐसा नगर है यहाँ के कवियों, लेखकों तथा विद्वानों को राष्ट्रीय स्तर पर मान और सम्मान मिला है। रामनगर के पहले डोगरी कवि संतराम थे। उनके बाद प्रकाश प्रेमी, परसराम पूर्वा, देशवन्धु डोगरा नूतन, वत्स विकल, अभिशाप, दूनी चन्द त्रिपाठी, विश्नदास दुबे ने साहित्य सृजन परम्परा को आगे बढ़ाया। राम नगर के लेखकों की अब तक बीस के करीव पुस्तके प्रकाशित हैं जिन में से पाँच को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है। रामनगर में ओम शर्मा जन्दरेड़ी ने रामनगर के इतिहास और संस्कृति पर सराहनीय काम किया है। जगदीप दुबे राम नगर के प्रसिद्ध रंग कर्मी हैं। अभिशाप ने कविता के क्षेत्र में नाम अर्जित किया है।

रामनगर के विद्वानों में ज्योतिषी परमानन्द, विश्व मूर्ति, रामानन्द पाध ा तथा हकीम मिंया अमर नाथ ठाकुर का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

रामनगर में बन्दरालता साहित्य मंडल तथा डोगरी साहित्य मंडल ने भी साहित्यिक चेतना पैदा करने में सराहनीय योगदान दिया है।

दर्शनीय स्थलः- रामनगर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक दृष्टि से एक समृद्ध उपनगर है। पर्यटन की दृष्टि से भी इसे श्रेष्ठ स्थल माना जा सकता है। यहाँ कई महत्वपूर्ण स्थल पर्यटकों, इतिहासकारों ,दार्शनिकों तथा बुद्धि जीवियों के लिए उपयोगी हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न हैः- रामनगर **काकिलाः-** यह किला रामनगर चौगान के उतरी कोण में निर्मित हैं। इसका मुख्यद्वार दक्षिणोन्मुख है। यह द्वार बुर्ज आकृति का है और तीन मंजिल ऊँचा है। किले के चारों कोनो पर तीन मंजिला बुर्ज हैं। इन की ऊँचाई सोलह मीटर है। बुर्ज की दीवारों में मारक रन्ध्र बने हैं। यह किला पाँच कनाल ग्यारह मरले क्षेत्र में परिव्याप्त है। इसके चारों ओर पाँच मीटर गहरी खाई है। इस खाई का क्षेत्रफल 4 कनाल 10 मरले है। किले के भीतर एक खुला सहन है। सहन के चारों ओर दुमंजिल कोठरियों के अवशेष हैं। किले के पश्चिम में शस्त्रागार है।

इस किले का निर्माण महाराजा गुलाबसिंह के छोटे भाई राजा सुचेत सिंह ने सन् 1822 ई. में करवाया।

रामनगर के राजमहल :- रामनगर के महलों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:- (1) पुराना महल (2) नया महल (3) शीश महल।

पुराना महलः- इस महल का निर्माण राजा सुचेत सिंह ने करवाया। यह एक भव्य और दुर्ग की भाँति सुदृढ़ है। यह तीन मंजिल ऊँचा है। महल तक पहुँचने के लिए लम्बा चौड़ा सोपान पथ है। डियोढ़ी के आगे खुला सहन है और सहन के चारों ओर विशाल कक्ष हैं। महल के ऊपर जो निरीक्षण केन्द्र बने हैं उस से यह महल किला लगता है। महल के कक्ष कहीं भीति चित्रों से तो कहीं रेखाकृतियों से सुसज्जित हैं। इनके छत लकड़ी के हैं। इस महल का निर्माण सन् 1822 के बाद सुचेत सिंह ने करवाया। नयामहल:- यह महल पुराने महल के साथ ही है। आकार में यह पुराने महल से छोटा है। इस महल का निर्माण राजा रामसिंह ने करवाया। इसके भीतर दो पंक्तियों पर आधारित कक्षों की कतारें हैं जो आमने सामने हैं। इस में एक काल कोठरी भी बनी है।

शीश महलः- इस महल का निर्माण राजा रामसिंह ने करवाया। यह डुग्गर के अति सुन्दर महलों में एक है। इस महल के तीन भाग हैं।- दरवार हाल, शीश महल तथा रंग महल। दरवार हाल दीवान-ए खास के रुप में प्रयोग होता था। शीश महल की दीवारों में जो शीशे का काम हुआ है, वह प्रशंसनीय है। यह देखने में परीलोक दिखाई देता है। दरवार हाल की भाँति इस में भी भीति चित्र हैं। रंग महल शायद राजा का शयन कक्ष था। इस में बने चित्र बहुत ही आकर्षक हैं। नायिकाओं, रागिनियों तथा कृष्ण लीला के चित्र बहुत ही मोहक लगते हैं। ये महल पहाड़ी टीले पर स्थित होने के कारण अति आकर्षक लगते हैं।

बन्दराल राजाओं का महलः- इस महल का अब केवल पुरातत्व की दृष्टि से महत्व है। महल की एक दीवार जो शिलाखंडों की बनी है शेष बची है। महलों के अवशेष कुछ ढेर रुप में और कुछ शिलाखंडों के रुप में इधर-उधर विखरे पड़े हैं। इन महलों का एक भाग कुंडियारों के मंदिर की

गली में भी है।

डालसरः- रामनगर का यह तीर्थ वृन्दावन नाला के पार रामनगर से चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ एक प्राचीन बड़ा सरोवर है जिसे 'डालसर' नाम से अभिहित किया जाता है। इसे भारत के पवित्र सरोवरों के समान माना जाता है। कहा जाता है कि पुष्कर राज, अमृतसर के बाद इस का नाम आता है। यह 32 कनाल भूमि में फैला था। किन्तु अब सिकुड़ रहा है। डालसर के साथ ही कई मंदिर तथा धार्मिक स्थल हैं जिन में प्राचीन शिव मंदिर उल्लेखनीय है। इस मंदिर में स्थापित शिवलिंग त्रिमुखी है और दिन में कई रंग बदलता है। इसके अतिरिक्त डालसर में कई पुरावशेष विखरे पड़े हैं जिन से लगता है कि कभी यह महातीर्थ था।

लाटेश्वर महादेवः- रामनगर का यह विचित्र और अद्‌भुत शिव मंदिर झिगड़ी चौरी में अवस्थित है। स्थापत्य की दृष्टि से यह पाषाण मंदिर बौद्ध स्थापत्य से प्रभावित लगता है। इस की योजना में केवल गर्भगृह और शिखर है। गर्भगृह के भीतर जो शिवलिंग स्थापित है, वह प्राचीन है। मंदिर के बाहर जो ग्यारह रुद्री स्थांपित है उसके शिवलिंगों में प्राकृतिक नाग लिपटे हुए हैं। इसका अष्ट कोणीय चबूतरा सुन्दर है। यह मंदिर बन्दराल राजाओं के समय का है।

नौजी मंदिरः- यह एक ऐतिहासिक मंदिर है। रामनगर बस अड्डा से दो कि.मी. पूर्व में पहाड़ी ढलान में उस स्थान पर बना है जहाँ ध्रुव पलासर का समाधि मंदिर है। स्थापत्य की दृष्टि से यह पूर्ण मंदिर है और आधुनिक काल में बने मंदिरों में ऐसा पहला मंदिर है जो आमलक युक्त है। इस में जड़ित मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। महाराष्ट्र के साठे परिवारों का इस मंदिर से गूढ़ सम्बन्ध है।

अक्षर कुंडः- राम नगर के पूर्व में नव विकसित यह स्थल पर्यटकों के लिए आकर्षण का मुख्य केन्द्र है। यह एक गुफा मंदिर है जिस के अन्दर जल कुंड है। गुफा की दीवारों में जो देवी-देवताओं की मूर्तियाँ जड़ित हैं वे दर्शनीय हैं। गुफा का प्रवेश-मार्ग छता हुआ है किन्तु देखने में प्राकृतिक लगता हैं।

पीरखाना:- यह बस अड्डा के साथ ही निर्मित है। इसकी मान्यता पूरी रामनगर तहसील में है। कहते हैं कि यहाँ प्रसिद्ध सूफी पीर की कब्र है। पीर के विषय में कहा जाता है कि वह किश्तवाड़ से धर्म प्रचार के लिए आया था।

मझालता

स्थिति:- डुग्गर का यह चर्चित ग्राम पियुनी पहाड़ के दामन में बसा है। यह जम्मू के उतर में है और जम्मू से इस की दूरी लगभग 78 कि.मी. वट्टल से 8 कि.मी. और मानसर झील से 13 कि.मी. है। इसकी भौगौलिक स्थिति 32.43 अक्षांश और 75^{0}.09 रेखांश है। इस के पूर्व में गहरी घाटी बनाती बरगेसर नदी तथा दक्षिण में गम्भीर नाला प्रवाहमान है। कहा जाता है कि मझाल कबीला के राजपूतों ने इसे बसाया अत: इसका नाम मझालता पड़ा। किन्तु यह भी तो हो सकता है कि मझालता में रहने वाले स्थानीय राजपूत मझाल कहलाये हों, जनश्रुतियों के अनुसार सन् 1398 में अमीर तैमूर ने जब मनु (मनवाल) पर हमला किया तो वहाँ के स्थानीय लोग उसकी सेना के विरुद्ध बड़ी वीरता से लड़े और जब वे पराजित होने लगे तो वे मझालता और पियुनी के पहाड़ों की ओर भागे और वहाँ उन्होंनें ये दोनों गाँव बसाये।

253 घरों और 1370 लोगों पर आधारित यह स्थान डोगरा संस्कृति का गौरव है। यहाँ के लोगों ने एक सैनिक के रुप में अपने शौर्य और वीरता का परिचय देते हुए जो पराक्रम दिखाये उससे इस गाँव का नाम ऊँचा हुआ है। मझालता का जन-जीवन डुग्गर के अन्य गाँवों जैसा ही है किन्तु अन्तर केवल इतना है कि इस ग्राम के निवासियों के स्वभाव उग्र हैं और वे कोई भी अनुचित दवाब सहन नहीं करते। यदि उन पर दबाव डाला जाए तो ये विद्रोही बन जाते हैं।

मझालता अब एक तहसील का मुख्यालय है अत: यहाँ और भी कई सरकारी कार्यालय हैं जिन से यहाँ चहल पहल रहती है। यहाँ डोगरी बोली जाती है। प्रेम सिंह प्रेमी तथा आत्मासिंह बन्दाल यहाँ के लोक प्रिय कवि हैं।

अन्न उत्पादन की दृष्टि से यह ग्राम स्वावलम्बी है। ग्राम यह

अतिरिक्त अन्न भारतीय खाद्य निगम को बेचता है। इस गाँव में बन्दराल, सम्याल, जसरोटियों, मन कोटिया राजपूतों के अतिरिक्त ब्राह्मण और हरिजन भी बड़ी संख्या में रहते हैं। यह ग्राम बाबलियों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पियुंनी, बेबोला, सतरैड़ा तजूर तथा पलेतर की बावलियाँ दर्शनीय हैं।

मझालता क्षेत्र में कई दर्शनीय स्थल हैं जिन में मझालता का शिव मठ, पियूनी का शिव मंदिर जन्साल का नृसिंह मंदिर तथा बलूर का नाग मंदिर उल्लेखनीय हैं।

थियाल (थिहाल)

जिला उधमपुर की तहसील रामनगर की मझालता तहसील के अन्तर्गत शिवालिक की पर्वतीय तलहटी में बसा ग्राम थिहाल डुग्गर का एक सांस्कृतिक ग्राम है। यह ग्राम उधमपुर के पूर्व में उधमपुर से 55 किलोमीटर दूर है। सन 2001 में यहां 161 घर थे और आबादी 935 थी।

कहा जाता है कि बन्दराल राजवंश के एक सामंत मिंया थिहाल सिंह ने अपने नाम पर चौहहवी या पन्द्रहवीं सदी में यह ग्राम बसाया। एक मत यह है कि इस का प्राचीन नाम हस्ति-स्थल था और उससे बिगड़ते बिगड़ते थिहाल बना जो आज भी प्रचलन में है।

जनश्रुतियों में कहा गया है कि थियाल पमासता राज्य की राजधानी था। इसका उदय बब्वापुर के ह्रास के बाद हुआ। पमासता वट्टल से लेकर ख्यून तक फैला था। एक मत यह है कि पमासता बन्दरालता की ही एक जागीर थी जिस का शासक थिहाल सिंह था। सन् 1822 में बन्दरालता राज्य के साथ ही पमासता का भी ह्रास हुआ और ये दोनों अंचल राजा सुचेत सिंह के अधिकार में आ गए। थियाल तहसील राम् नगर के अन्तर्गत रामनगर के बाद दूसरा बड़ा कस्बा गिना जाता है। किन्तु अब इस की स्थिति यह है कि यह एक गाँव के रुप में सिमट गया है। सन् 1998 में यहाँ 130 घर थे और जन संख्या बारह सौ के करीब थी। कौशल, बोटी, करोच शाखाओं के ब्राह्मण, जंडेयाल, भिड्डु, रिगड़े, पावे महाजन, यहाँ अधिक संख्या में रहते हैं। कुछ घर राजपूतों, सुनारों तथा हरिजनों के हैं। यहाँ एक छोटा सा बाज़ार है और दस-बारह दूकानें हैं। लोगों का आर्थिक जीवन सामान्य है। लोग अन्ध

विश्वासी भी हैं। डुग्गर में मनाये जाने वाले सभी पर्व, त्योहार, अनुष्ठान यहाँ भी आयोजित होते हैं। रामलीला में इनकी विशेष रुचि है।

दर्शनीय स्थलः- थियाल एक दर्शनीय गाँव है। यहाँ कई दर्शनीय स्थल हैं जिन में थियाल का किला, लंका के महल, राजा का कुआं, शिवालय, पंचाक की बावलियाँ, तलसू की बावलियाँ, भगवान जगन्नाथ का मंदिर, ग्राम देवता कौरी की आदम कद मूर्ति, पीर बावा का स्थान उल्लेखनीय हैं।

देवस्थान- थियाल से सात किलोमीटर की दूरी पर चौतड़ा माता का मंदिर है। यहाँ नवरात्रों में श्रद्धालुओं की भीड़ देखी जा सकती है। माता का नव निर्मित मंदिर नागर शैली में है और देखने में नयनाभिराम है।

बब्वापुर (मनुआल)

स्थितिः- बब्वापुर उधमपुर से 27 किलोमीटर दक्षिण की ओर तवी नदी के तट के साथ ऊँची पठार पर बसा नाग कालीन नगर है जो मानसर झील के उतर में आठ किलोमीटर दूरी पर स्थित है। इस का एक नाम आबादी पलौड़ा भी रहा है ।

जम्मू से इस की दूरी 90 कि.मी. है। यह नगर $32^{0}.45$ अक्षांश और $75^{0}.10$ रेखांश के मध्य में स्थित है। जिस मैदान में यह नगर बसा है वह 7 वर्ग कि.मी. के लगभग एक पठार में फैला है।

नामकरणः- लोकपरम्परा के अनुसार यह नगर महाभारत युगीन है। राजदर्शनी में उल्लेख मिलता है कि पांडव पुत्र नागवंश की कन्या से उत्पन्न बभ्रु वाहन ने इसे बसाया और अपने राज्य की राजधानी बनाया। किन्तु इस नगर के पुरावशेषों का अध्ययन करने से लगता है कि ये दो हज़ार बर्ष से अधिक पुराने नहीं है। इस नगर का एक नाम गढ़ बबौर भी है। इसे आज मनुआल नाम से अभिहित किया जाता है।

इतिहास एवम पुरातत्वः- इतिहास और पुरातत्व की दृष्टि से यह डुग्गर का अति महत्वपूर्ण नगर है। इतिहासकार डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क इस

नगर को डुग्गर की पुरानी राजधानी मानते हैं। पुरातत्व वेताओं का मत है कि मध्य युग में यह नगर अवश्य ही एक शालीन और भव्य नगर रहा होगा। इतिहास का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि बब्वा पुर के आदि शासक धरवंशीय राजा थे। राज तरंगिणी में इस नगर के तीन राजाओं का उल्लेख कश्मीर के राजा कलश (1087 ई.) सुस्सल (114-18 ई.) तथा हर्ष (1101 ई.) के सन्दर्भ में किया है। डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क नेधर वंशीय राजाओं की जो सूची प्रकाशित की है उस में लगभग आठ-दस राजाओं के नाम हैं। बब्वा पुर का विवरण अलग-अलग नामों से मुस्लिम इतिहास में भी मिलता है। सन् 1498-99 में अमीर तैमूर ने जब इस नगर पर आक्रमण करके इसे नष्ट किया तब इसका नाम मनु था जो बाद में मनु-आल के नाम से विकसित हुआ। लगता है इस नगर को नष्ट करने में तैमूर की सेना ने कोई कसर नहीं छोड़ी। इसका एक कारण यह था कि उसे और उसकी सेना को इस नगर के निवासियों ने लड़ाई के लिए ललकारा था अब। मूल बब्वापुर धराशायी है और मलवे से ढका हुआ है। उसके ऊपर आज जो एक छोटा सा गाँव बसा है। स्थानीय निवासियों का कहना है कि वे जब जमीन की खुदाई करते हैं तो उन्हें नीचे से पुराने भवनों की ईटें तथा अन्य पुरावशेष मिलते हैं। पुरातत्व वेताओं के अनुसार वर्तमान गाँव की ज़मीन के नीचे एक शहर दफन है जिसे बाहर निकालना कठिन है।

नगर की संरचनाः- बब्वापुर की भौगोलिक स्थिति को देखकर लगता है कि बब्वा पुर कभी बहुत बड़ा नगर रहा होगा। इस स्थान में आज भी जो मंदिर खड़े हैं उनकी दूरी को देख कर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह नगर पाँच मुहल्लों में विभाजित होगा। नगर की योजना में जो दुर्ग था उसके अवशेष एक टीले पर मिलते हैं जिसे वीरगढ़ नाम से अभिहित किया जाता है। वर्तमान बब्वापुर (मनुआल) डेढ सौ घरों और पच्चास के करीब दुकानों में समायोजित है।

दर्शनीयस्थल- बब्बापुर के मंदिर - बब्बापुर में देखने के लिए सात मंदिर हैं जो पुरातत्व की दृष्टि से विशेष महत्व पूर्ण हैं। ये सभी मंदिर पाषाण शिलाओं से निर्मित हैं और आठवीं और बारहवीं सदी के बीच बने लगते हैं। दो-तीन मंदिर नये भी हैं उन में एक लक्ष्मी नारायण मंदिर का निर्माण राजा रामसिंह ने करवाया था।

प्राचीन मंदिरों में सबसे विलक्षण और अद्‌भुत मंदिर देवी भगवती का मंदिर है। पुरातत्व के विशेषज्ञों का विचार है कि यह मूल रुप से विष्णु मंदिर रहा होगा। इस मंदिर के भद्ररथों तथा गंगा यमुना की मूर्तियों को देख कर लगता है कि इस मंदिर के निर्माता उच्चकोटि के तक्षणकार तथा वास्तुकार रहे होंगे। इस मंदिर की एक-एक शिला एक एक मूर्ति लगती है। इसकी वाह्य दीवारों में जो तक्षण कार्य हुआ है, वह सराहनीय है। भगवती मंदिर के नीचे काला देहरा मंदिर परिसर है। यह एक ऊँची जगती पर बना मंदिर है जिस के तीन भाग है। इसमें बने हस्तिमुख दर्शनीय है। इसी मंदिर के पश्चिम में तीन और मंदिरों के पुरावशेष सड़क के पार तीन सौ मीटर की दूरी पर विखरे पड़े हैं। इनमें दो विशाल मंदिर हैं और तीसरे मंदिर का केवल आधार ही बचा है। इन मंदिरों से तीन सौ मीटर दूर गढ़ बबौर का मंदिर है जिसे पुर्न-निर्मित किया है। इस मंदिर के नीचे एक नाला है और इसी नाले के तट पर नन्द विबौर के मंदिर हैं। बब्वापुर के मंदिर डुग्गर की समुन्नत वास्तुकला के नमूने हैं।

मनकोट (रामकोट)

स्थितिः- यह उपनगर जम्मू से 83 कि.मी. पूर्व में उधमपुर धारसड़क में शिवालिक पहाड़ियों के बीच बसा है। उधमपुर से इस की दूरी 54 कि.मी. कठुआ से 48 कि.मी. और बिलावर से 36 कि.मी. है।

नामकरणः- राजदर्शनी के अुनसार इस नगर की नींव राजा मानकदेव ने अपने नाम पर रखी, अतः इस का नाम मनकोट पड़ा। राजपुरोहित सुदर्शन खजूरिया का मत है कि इस नगर का नाम इस क्षेत्र की कुलदेवी मनकूटा के नाम पर रखा गया हैं। देवी देवताओ के नाम पर नगरों के नाम रखने की परम्परा पुरानी है, अतः इस मत को स्वीकार किया जा सकता है। मनकोट 14वीं सदी में बसा नगर है।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिः- राजदर्शनी के अनुसार बब्वापुर के ह्रास के बाद वहाँ का पराजित राजा मानकदेव इस क्षेत्र में आया और उसने यहीं अपना नया राज्य गठित किया और मनकोट क़ो अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि मनकोट बब्वापुर राज्य का ही नया नाम था क्योंकि बब्वापुर का क्षेत्र तब इस राज्य में सम्मिलित था। मानकदेव के वंशज

मन कोटिये कहलाए। राजदर्शनी ने मनकोटिया राजाओं की जो वंशावली दी है वह इस प्रकार है:- मानकदेव, उदयदेव, नागरदेव, उतमदेव, हरिश्चन्द्र देव, अमल देव, कैलाश देव, भूपदेव, सरहर देव, प्रतापदेव, अर्जुन देव, शीतल देव ठुठा देव, त्रिढ़ी देव, अजमल देव, दलेल देव तथा चतुर देव इत्यादि। इस में महिपत्तदेव का नाम नहीं है। यह राजा चित्रकला का संरक्षक था। मनकोट के राजाओं का उल्लेख मुगल-इतिहास में भी मिलता है। सन् 1588-89 में डुग्गर के जिन राजाओं ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया उनमें मनकोट का राजा प्रतापदेव भी एक था।

सन् 1825 ई. में गुलाबसिंह ने मनकोट पर अधिकार किया तो मनकोट का अन्तिम राजा छतर सिंह कांगड़ा की और चला गया और सालगरी ग्राम में जा बसा।

महाराजा रणबीर सिंह ने मनकोट की जागीर अपने दामाद रघुनाथ सिंह को दहेज में दी तो उसने मनकोट का नाम बदलकर रामकोट किया। रघुनाथ सिंह के बाद लक्ष्मण सिंह और उसके बाद चैनसिंह मनकोट का राजा बना। सन् 1947 के बाद जागीरदारी का उन्मूलन हुआ तो रामकोट जागीर का विलय जम्मू कश्मीर राज्य में हुआ, अब यह नगर जिला कठुआ के अन्तर्गत तहसील रामकोट का मुख्यालय है।

नगर संरचना:- मनकोट पहाड़ी ढलान पर बसा नगर है। नगर में सबसे ऊपर तीन महल थे। महल ऊँचे टीले पर थे अतः उन तक जाने के लिए सोपान पथ बना था। महल के भीतर रानियों के लिए कृष्ण मंदिर था। इसे बाद में स्थानान्तरित किया गया। महल के नीचे एक सरोवर तथा शिव मंदिर है। इसके दक्षिणी कोण में एक ही शिला पर बनी हनुमान की मूर्ति है जिस में दो लिपियों में लिखित शिलालेख उत्कीर्ण हैं। सरोबर से दो सौ मीटर दूर नृसिंह मंदिर है। नृसिंह मंदिर से तीन सौ मीटर दूर एक छोटा चौगान है। चौगान के साथ राजा रघुनाथ सिंह के महल हैं। ये अब ध्वस्तावस्था में हैं।

चौगान के बाद सीढ़ियाँ आती थी और उसके बाद बाज़ार था। बाज़ार के साथ छोटी मोटी गलियाँ और मुहल्ले थे। यह बाज़ार बावली तक लम्बा था। नगर कई मुहल्लों में विभाजित था। किन्तु राजशाही का अन्त होने के बाद बहुत से लोग नगर छोड़ कर चले गए। उधमपुर धार सड़क बनने के बाद

दुकान दार सड़क पर आ गए। इस प्रकार शताब्दियों पुराना यह नगर अब विरानगी का अहसास करता है। आज रामकोट केवल चार हज़ार आबादी पर आधारित एक छोटा सा कस्बा है। इस कस्वे के साथ तराहड़, मछाल, कछेड़, बालपड़ आदि स्थानों में मनकोटिया राजपूत रहते हैं। ये अब कृषि कर्म में व्यस्त हैं। ठक्कर राजपूतों में सरमाल शाखा के लोग रहते हैं वे भी खेती बाड़ी करते हैं। ब्राह्मणों में एक शाखा 'भूतों' की है। सम्भवत: उन्हें यह नाम तांत्रिक होने के कारण दिया गया है। यहाँ धीवरों के पच्चास घर हैं। धीवरों को 'डैन' या 'डायने' कहा जाता है। खजूरिया कुल पुरोहित हैं। मनकोटियों में इन का बड़ा आदर है। हरिजनों में 'रटाल' कबीले के लोग अधिक हैं।

कलात्मक जीवन- मनकोट के लोग कला प्रेमी हैं। लोकनृत्यों में इन की रुचि है। रंगमंच और अभिनय का इन्हें परिज्ञान है। यहाँ धार्मिक और सामाजिक नाटकों का मंचन होता रहता है। लोग परम्परा वादी और अंध विश्वासी हैं। रीति-रिवाजों में बिलावर का अनुकरण करते हैं। इनकी भाषा डोगरी है। मास्टर शाम लाल तथा सुदर्शन खजूरिया रामकोट में डोगरी लेखक हैं। सुदर्शन खजूरिया रामकोट के एक मंजे हुए नाटककार, अभिनेता, संगीतकार और कवि हैं। उनके एक दो नाटक प्रकाशित हैं।

मनकोट के ऐतिहासिक स्मारक:-

मनकोट में मनकोटिया राजाओं के महल, जसवाल राजा का महल तथा मनकोट का किला इस नगर के ऐतिहासिक स्मारक हैं। मनकोट राजाओं का महल नगर के पूर्व में एक ऊँचे टीले पर निर्मित था। इसकी डियोढी सुदृढ़ और कलात्मक थी। उसमें जड़ित शिलालेख थे जो अब तक सुरक्षित हैं। किन्तु असुरक्षा के कारण ये महल ढह गए हैं। जसवाल राजा रघुनाथ सिंह ने सन् 1870 में अपने रहने के लिए रामकोट चौगान में महल बनवाया था जो अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। रामकोट का किला भी धराशायी है। अब वे केवल खंडहरों के रुप में देखे जा सकते हैं।

मंदिर:- रामकोट को जसवाल राजाओं के शासनकाल में मंदिरों के नगर के रुप में परिवर्तित किया गया। यहाँ एक दर्जन के लगभग मंदिर बने जिन में विशेष रुप से उल्लेखनीय है नृसिंह मंदिर, मुरली मनोहर मंदिर, राधा कृष्ण मंदिर, पुराना शिव मंदिर, नया शिव मंदिर बावा योग ध्यान का मंदिर आदि।

मनकोट की कुलदेवी- मनकुटा- कुलदेवी मनकुटा का मंदिर नगर से बाहर है। यह देवी मनकोटिया राजाओं की कुलदेवी है। देवी का मंदिर पहाड़ी शैली में है और दर्शनीय है। नवरात्रों में यहाँ बहुत भीड़ होती है। इस मंदिर का मुख-भाग नाग मंदिरों की भाँति त्रिकोणात्मक है। मंदिर के गर्भगृह में देवी की पिण्डी स्थापित है।

मनकोट के तीर्थ:-

विश्वान्तर तीर्थ:- यह स्थान रामकोट से पाँच किलोमीटर उतर में अवस्थित है। माना जाता है कि बसन्तर नदी यहीं से नि:सृत हुई है। अत: इस स्थान को अति पावन माना जाता है। यहाँ एक छोटा मंदिर भी है। जनश्रुति है कि विश्वामित्र ने यहाँ तपस्या की थी जिस कारण यह तीर्थ विश्वान्तर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शुभ दिन और पर्वों पर स्थानीय लोग स्नान करने इस तीर्थ पर बड़ी संख्या में जाते हैं।

[illegible]नेश्वर:- यह तीर्थ रामकोट से सात किलोमीटर ख्यून उपनदी के तट पर है। लोक परम्परा के अनुसार यह महा भारत युगीन तीर्थ है। यह वह स्थल है यहाँ नागराजा बभ्रुवाहन ने पांडवों की एक अक्षौणी सेना का संहार किया था। नदी में जो लाल पत्थर हैं उनके बारे में कहा जाता है कि वे सैनिकों के रक्त से रंजित होने के कारण लाल हुए हैं। इस तीर्थ स्थान में मनकोट के राजाओं के समाधि मंदिर भी हैं। यहाँ एक अति सुन्दर जल कुंड है जिस में हृष्ट-पुष्ट लम्बी-छोटी मच्छलियाँ तैरती दृष्टिगत होती हैं। जलकुंड के ऊपर एक जगती पर ख्यूनेश्वर महादेव का मंदिर है जिस में स्थापित शिवलिंग प्राचीन है। इस तीर्थ स्थल में पर्यटकों का वर्ष भर तांता लगा रहता है। श्रद्धालु भी बड़ी श्रद्धा में भगवान ख्यूनेश्वर के दर्शन करने आते हैं।

सुमरता (थड़ा कलाल)

उधमपुर-धार सड़क पर रामकोट से अनुमानत: 20 कि.मी. की दूरी पर पूर्व में बसा यह ऐतिहासिक उपनगर गौरव शाली इतिहास के कारण डुग्गर में प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक ग्रंथों में इसे 'सौमन्तक' नाम से उल्लिखित किया गया है।

इस राज्य का संस्थापक राजा सोमपाल था। समझा जाता है कि दसवीं सदी से पूर्व यह नगर आवाद हो चुका था। इसका उल्लेख चम्बा के ताम्रपत्रों में भी मिलता है। कहा जाता है कि पहले इस राज्य की राजधानी नलिन में

थी जो एक पहाड़ी ढलान में बसा था। वहाँ पहाड़ी पर पुराने नगर के पुरावशेष आज भी मिलते हैं। वहाँ का नलिनेश्वर 'महादेव का मंदिर' आज भी लोगों की आस्था का प्रतीक है। इस मंदिर के जोगी आज भी उसी गाँव में रहते हैं और भगवान नलिनेश्वर की पूजा करते हैं। वर्तमान सुमरता ग्राम दो भागों में विभाजित है। जो पुराना ग्राम है वह सड़क के उतर में है। यह गाँव एक किलोमीटर से भी अधिक लम्बा है और इस में डेढ़ सौ के लगभग घर हैं। डुग्गर की लोकदेवी बुआ भागा की समाधि भी गाँव के इसी भाग में एक पीपल के वृक्ष के नीचे है। पहले यहाँ प्राय: सभी मकान कच्चे थे किन्तु अब धीरे-धीरे सभी पक्के हो रहे हैं। ग्राम के मध्य भाग से उधमपुर धार सड़क गुजरती है। अत: सुमरता का बाज़ार सड़क पर आ गया है। सड़क के निचले भाग में सुमरता का ऐतिहासिक किला है। यह क्षतिग्रस्त अवश्य है किन्तु अपने मूल रुप में अब भी खड़ा है। इसके चारों ओर जो खाई है वह अब खाली है। किले का एक बुर्ज अब एक आवासीय कक्ष के रुप में प्रयोग होने लगा है। यह किला अपनी सुदृढ़ता के कारण प्रसिद्ध रहा है। किले के भीतर रिंगड़ी माता का मंदिर है। माता की छोटी मूर्ति देखने में बड़ी विलक्षण है।

थड़ा कुलाल के राजवंश के लोगों को अब सुम्बड़िया कहते हैं। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण , महाजन, राजपूत, हरिजन सभी यहाँ रहते हैं। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि, व्यापार, दुकानदारी और नौकरी है। लोग परम्परा वादी हैं। इनका धार्मिक जीवन नि: छल और सादा है।

कोह्ग

शिवालिक पहाड़ियों के भीतरी भाग में बसा यह पुराना कस्बा उध मपुर-धार सड़क में स्थित मांडली के उतर में सात कि.मी. की दूरी पर बसा है। कोह्ग की कप आकार घाटी में उगे धान के पौधे जब बयार चलने पर लहलहाते हैं तो इनकी शोभा देकर आँखें अद्भुत आनन्द से अभिभूत हो जाती हैं। कोह्ग ग्राम इन खेतों से ऊपर एक टीले की ढलान में बसा है। कहते हैं कि कभी यह किसी बन्दराल सामंत की राजधानी भी था। तहसील रामनगर के अन्तर्गत बलौर सीमा के साथ बसा यह गाँव केवल तीन सौ घरों और बीस-पच्चीस दुकानों पर आधारित है। किन्तु उधमपुर धार सड़क बनने से पूर्व यह ग्राम पहाड़ी माल की एक बड़ी मंडी के रुप में जाना जाता था। अब मंडी उजड़ गई है। व्यापारी चले गए हैं। शेष जो बचे हैं वे हैं रेओदिये, बगने आल, भारद्वाज, तथा फलाड़िये उपजातियों के ब्राह्मण, भड़वाल और सम्याल

राजपूत, लकेपाल, रजुआल, मलेरिये और सुनाला जाति के चौधरी, मल गरिये, चौड़, पढ़ोतरे गारड़ी, बरिये महाजन, कुछ हरिजन यथा मेघ और सरैरे, काज़ी और तेली भी इस गाँव में रह रहे हैं। गाँव में समृद्धि का दौर तो नहीं रहा किन्तु सामान्य जीवन सब का चल रहा है। लोक-आस्थाएँ और लोक संस्कृति की पावन धारा आज भी इस ग्राम में प्रवाह मान है।

दर्शनीय स्थल- कोह्ग का नृसिंह मंदिर सदियों से जिला उधमपुर और कठुआ में प्रसिद्ध है। इस मंदिर में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके पुजारी हरिजन हैं। नृसिंह मंदिर जो मूल रुप में था वह तो अब ध्वस्त है किन्तु उसके नीचे जो नया मंदिर बना है वह सादगी का प्रतीक है। यहाँ भगवान नृसिंह को एक झूला में रखा गया है। मंदिर परिसर में डोगरी के शिलालेख भी हैं।

क्होग का किलाः- बन्दराल राजाओं का यह किला ग्राम के ऊँचे टीले पर था। यह पक्का किला था और यहाँ से दूर-दूर तक का क्षेत्र देखा जा सकता था। अब किले के अवशेषों से इसी स्थान पर एक दुर्गा मंदिर बनाया गया है।

इनके अतिरिक्त ग्राम का वासुकिनाग मांदिर, शिव मंदिर भी दर्शनीय मंदिर हैं। ये मंदिर लोगों के विश्वासों, आस्थाओं तथा अध्यात्मिकता के प्रतीक हैं।

भड्डु

स्थितिः- डुग्गर का यह ऐतिहासिक उपनगर जम्मू के पूर्व में जम्मू से अनुमानतः 115 कि.मी. कठुआ के उत्तर में कठुआ से 75 कि. मी. बसोहली के पश्चिम में बसोहली से 55 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। भीनी नदी इस के नीचे से प्रवाह मान है।

नामकरणः- भड्डु के नामकरण का कोई ठोस आधार उपलब्ध नहीं है। कहते हैं कि यह 'भड़ाल' से विकसित है। जिस का अर्थ है- योद्धों की धरती होने के कारण इसे भड़ाल और बाद में भड्डु कहा जाने लगा।

इतिहासः- भड्डु बल्लपुर राज्य से एक खंड़ित छोटा राज्य था। इस राज्य का संस्थापक राजा तोष पाल था। जिसने अपने भाई सें लड़-झगड़ कर

यह राज्य प्राप्त किया। इस राज्य के शासक भडवाल कहलाए। उन्होंनें सन 1041 ई. से लेकर 1825 ई. तक राज्य किया। इन राजाओं की वंशावली में केवल बाईस राजाओं के नाम मिलते हैं जो इतनी लम्बी अवधि के लिए कम हैं। इन राजाओं में राजा निर्धनपाल, धर्मपाल, तथा पृथ्वीपाल बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। इस राज्य का अन्तिम राजा अवतार सिंह था जिसे 1825 में भड्डु से निष्कासित करके गुलाब सिंह के भाई सुचेत सिंह ने अपनी जागीर में मिलाया। सन् 1844 ई. में राजा सुचेत सिंह के बध के बाद भड्डु का विलय जम्मू के साथ इसलिए हुआ कि राजा सुचेत सिंह निः सन्तान मरा था।

महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में थोड़े समय के लिए भड्डू जिला का मुख्यालय भी रहा। बाद में यह तहसील बना किन्तु जब यहाँ से तहसील का कार्यालय भी उठा लिया गया तो यह नगर उजड़ने लगा और धीरे-धीरे विरानगी छाने लगी। सन् 1825 से पहले यह उपनगर था और 1860 के बाद यह गाँव बन गया।

नगर की संरचनाः- भड्डु एक पहाड़ी के ऊपर छोटे से समतल भूखंड के ऊपर बसा है। गाँव तक पहुँचने के लिए पहले फैंतर से एक पगडंडी जाती थी जो अढ़ाई किलोमीटर लम्बी थी। इस में सोपान पथ बने थे। बस्ती आरम्भ होने से दो सौ मीटर पीछे एक पत्थर की डयोढ़ी थी जो अब ध्वस्त है। डयोढ़ी से थोड़ी दूर ऊपर राज महल था जो कई कक्षों पर आधारित था। महल दो भागों में था।- जनाना और मर्दाना। मर्दाना भाग में दीवाने आम था। किन्तु भूंचालों ने इस महल को हिला कर रख दिया। अब यहाँ बच्चों का विद्यालय बनाया गया है। महल के बाद एक मैदान है। अब यहाँ छात्रा बास बना है। यहाँ से एक गली दक्षिण की ओर मुढ़ती है और इसके आगे भड्डु का बाज़ार आरम्भ होता है जिसमें चालीस के करीब दूकानें हैं। बाजार के पूर्वो भाग में गलियाँ हैं जिनमें आर-पार मकान हैं। बाज़ार के निचले भाग में सरोवर है जो चारों ओर से दुकानों और मकानों से घिरा है। इस सरोवर का दृश्य अति लुभावना है। सरोवर के पूर्व और दक्षिण में गलियाँ हैं जिन में घरों की लम्बी लम्बी पंक्तियाँ हैं। गाँव के निचले सिरे में शिव मंदिर है। भड्डु का चौगान गाँव के नीचे है। अब फैंतर से भड्डु के लिए सड़क है। सड़क आने के बाद गाँव के विकास में गति आई है और अब यह बड़ी तेजी से विकसित हो रहा है।

भड्डु के मंदिर- भडवाल राजा शिव भक्त थे, अतः उन्होंने भड्डु में तीन शिव मंदिर बनवाये जिन में दो छोटे और एक बड़ा है। बड़ा शिव मंदिर दर्शनीय है। इस की योजना में महामण्डप, गर्भ गृह और प्रदक्षिण पथ है। मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से एक पूर्ण मंदिर है। सरोवर के तट के साथ भी दो छोटे-छोट शिवालय हैं जो प्राचीन लगते हैं। गाँव में महल के नीचे ढलान में कुलदेवी नागरु का मंदिर है। यह मंदिर समाधि शैली में है। इसमें पुरानी टाकरी का जो शिलालेख है वह ऐतिहासिक महत्व का है।

पंजतीर्थीः- यह भड्डु का तीर्थ स्थल है। यहाँ पांच नदियों का संगम है जिन के नाम हैं:- उज्झ, चीनी, तरवाह, सूतर तथा तुनारी, यहाँ एक ऊँची चट्टान के ऊपर एक शिव मंदिर है। चेत चतुर्दशी के दिन इस संगम स्थल पर बहुत बड़ा मेला आंयोजित होता है जिस में तहसील विलावर के कई ग्रामों के लोग स्नान करने आते हैं।

इसके अतिरिक्त एक शिव मंदिर डडवारा में और दूसरा फैंतर में है।

साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों का नगर

भड्डु को यह गौरव प्राप्त है कि यह नगर डोगरी के आदि कवि देवदत की जन्म भूमि है। कवि देवदत दत्तु कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे महाराजा रणजीत देव के समकालीन और राजा वृजराजदेव के गुरु थे। भड्डु का राजा पृथ्वीपाल भी उनका बहुत आदर और सम्मान करता था। उन्होंने हिन्दी, डोगरी और संस्कृत में लिखा। उनकी रचनाओं में ब्रजराज पंचासिका, वीर-विलास, भूपवियोग, कृष्णाष्टक, ज्योतिष प्रकांश, गोपी-वियोग, रघुचन्द्रिका आदि उल्लेखनीय है। इनका एक स्मारक 'दत्तु-भवन' भड्डु में निर्मित है।

कवि दतु के छोटे भाई नन्दलाल के पुत्र शिवराम भी श्रेष्ठ कवि थे। इस गाँव के संतराम उपाध्याय महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में राजस्व मंत्री थे। रामलाल उपाध्याय संयुक्त राष्ट्र संघ में निदेशक रहे हैं। मदनलाल गुप्ता अमेरीका में, संजीव कुमार सपोलिया कनेडा में रमेश चन्द्र उपाध्याय जर्मनी में उच्चपदों पर काम कर चुके हैं। डॉ. शांति यादव हरियाणा राज्य में सरकार की सलाहकार थीं। शिक्षा के क्षेत्र में भी इन लोगों ने नाम अर्जित किया है। डॉ. भारत भूषण, हुक्मचन्द लखनपाल तथा ईशर दास सोनी डुग्गर के विख्यात शिक्षा विदों में परिगणित हैं।

भड्डु कवियों, संगीतकारों और विद्वानों की भूमि है।

नगरोटा पृथ्वीपाल (परनाला)

बिलावर से अनुमानित: 18 कि.मी. की दूरी पर पूर्व की ओर बसा यह उपनगर विलावर-बसोहली सड़क के आर-पार स्थित है। इस गाँव के मध्य में एक नाला प्रवाह मान है। नाला के पार नगर का जो भाग है उसे पर नाला कहते हैं। इसे भड्डु के राजा पृथ्वीपाल भडवाल ने बसाया था, अत: इसका नाम नगरोटा पृथ्वी पाल पड़ा।

220 के करीब घरों और 2700 की आबादी वाला यह कस्बा सुन्दर बावलियों के कारण चर्चा में रहा है। इस के आस-पास जो खेत हैं वे बारह महीने सर-सब्ज रहते हैं इससे यह नगरोटा अति सुहाना लगता है।

परनाला की प्रसिद्धि का कारण यहाँ निर्मित नृसिंह मंदिर है जो बताय जाता है कि यह इस क्षेत्र का सबसे प्राचीन मंदिर है। इसका पुर्न-उद्धार राजा सुचेत सिंह ने तब करवाया जब वह भड्डु जीतने में सफल हुआ। नागर शैली में निर्मित इस मंदिर का शिखर लम्बवत है। मंदिर के साथ ही पहाड़ी शैली में बनी बावा लच्छी राम की समाधि है। यह समाधि बौद्ध स्तूप आकार में है। मंदिर परिसर में एक दुमंजली धर्म शाला है। परनाला का नृसिंह मंदिर इस क्षेत्र में सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र है। बाबा केलू इस क्षेत्र का प्रतिष्ठित लोक देवता है। लोगों की आस्था और विश्वास ईश्वर, धर्म, रुढ़ियों और परम्पराओं में है। इन का मुख्य व्यवसाय कृषिकर्म, व्यापार और नौकरी है। डुग्गर के सभी पर्व और त्योहार यहाँ भी आयोजित होते हैं।

संगीतकारों की जन्म भूमि:- जिस प्रकार भड्डु कवियों की भूमि है उसी प्रकार नगरोटा पृथ्वीपाल संगीतकारों की भूमि है। यहाँ गीत-संगीत, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता रहता है। डुग्गर के महान संगीतकार मन-मोहन पहाड़ी इसी ग्राम के सपूत हैं। मन मोहन पहाड़ी ने न केवल परनाला का अपितु पूरे राष्ट्र में डुग्गर का नाम अपनी संगीत विद्या से रोशन किया है।

बल्लपुर

स्थिति:- जम्मू के पूर्वोतर में 120 कि.मी. दूर, कठुआ के उतर में

80 कि.मी. , बसोहली के पश्चिम में 60 कि.मी. रामकोट से 35 किलोमीटर दूर शिवालिक श्रृंखला की छोटी सी पहाड़ी की गोद में बसा यह नगर डुग्गर का प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। इस के दक्षिण में नाज नदी प्रवाहमान है। यह 32.36 अक्षाश और 75^0.36 रेखांश के बीच में है। सन 2001 की जन गणना के अनुसार इस की आबादी 4640 थी।

नामकरणः- इस नगर के नामकरण के विषय में विद्वान एक मत नहीं है। काह्नासिंह बलौरिया के अनुसार बिल्लू राणा ने इसे अपने नाम पर बसाया और नाम रखा बिल्लपुर जो बाद में बल्लपुर नाम से प्रचलन में आया। एक अन्य पुस्तक में उल्लेख मिलता है कि इसे वली थान पाल नामक राजा ने बसाया। लोक परम्परा के अनुसार बल्लपुर का नाम वहाँ विलवा वृक्षों की बढ़ोतरी के कारण पड़ा। एक मत यह है कि यहाँ भगवान विल्वेश्वर का मंदिर था अतः इसे बल्लपुर कहा गया। सभी इतिहासकार यह मानते हैं कि आठवीं सदी में यह नगर बस चुका थ।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिः- बल्लपुर के राजाओं का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। बल्लपुर के राज पुरोहितों के पास जो वंशावली है उसमें 43 राजाओं के नाम हैं। काह्नसिंह बलौरिया ने 14 नाम दिए हैं। डॉ. सुखदेवसिंह चाड़क द्वारा प्रस्तुत वंशावली भी संदिग्ध है। इस वंशावली में शाक्य और पाल वंशीय राजाओं को एक ही सूची में दिखाया गया है। लगता है कि पालवंशीय राजाओं से बहुत पहले शाक्य वंशीय राजाओं का राज्य बल्लपुर में रहा है। पाल बहुत बाद में शायद 11वीं सदी में इस क्षेत्र में आए। राजतरंगिणी में बल्लपुर के जिन राजाओं के नाम हैं उन में शाक्य या पाल वंशीय राजाओं के नाम नहीं हैं। कश्मीर के राजा अनन्तदेव (1028-63) और राजा हर्ष (1063-89) के शासन काल में बल्लपुर में जो राजा हुए उनके नाम राज तरंगिणी में कलश, पदमक, आनन्द, विक्रम और गुल्हण आदि उल्लिखित हैं। ये ऩाम वल्लपुर के राजाओं की वंशावली में नहीं हैं अतः माना जा सकता है कि पाल इनके बाद बल्लपुर में आए हैं। बल्लपुर का इतिहास अभी पूर्ण नहीं है। अतः इसमें संशोधन तथा शोध की आवश्यकता है।

काह्नसिंह बलौरिया के अनुसार बल्लपुर का आदिशासक राजा भोगपाल था। उसके बाद नागपाल, साम्भपाल, भोजपाल, सत्याधिक पाल, लक्ष्मणपाल, शंकर पाल, मानशक्य, देव शाक्य, भोज शाक्य अपर शाक्य, गुण

शाक्य, त्रिलोक शाक्य, कलसपाल बल्लपुर के राजा वने। डुग्गर के इतिहास के अनुसार मानशाक्य ने बसोहली के राणा विस्सु को लड़ाई में पराजित कर के बसोहली को भी अपने राज्य में मिला लिया। बाद में पालवंशीय राजाओं ने सुरक्षा की दृष्टि से बल्लपुर से अपनी राजधानी बसोहली स्थानान्तरित की और इसका परिणाम यह निकला कि बल्लपुर का वैभव बसोहली में स्थानान्तरित हो गया।

बल्ल पुर का उल्लेख अल्वेरुनी (1030 ई.) ने अपनी पुस्तक में तो किया है किन्तु उसमें इस नगर के राजवंश पर विशद चर्चा नहीं है। सन् 1834 में बसोहली के राजा भूपेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद बसोहली राज्य कमजोर पड़ गया तो खालसा सरकार ने इसे अपने अधिकार में ले लिया। जब बसोहली का विलय जम्मू कश्मीर में हुआ तो बल्लपुर भी जम्मू कश्मीर का एक अंग बन गया। बल्लपुर को अब बलौर, विलावर आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यह नगर अब जिला कठुआ के अन्तर्गत एक तहसील का मुख्यालय है।

नगर संरचनाः- बल्लपुर की संरचना एक पहाड़ी नगर के रुप में की गई है। यह नगर नाज नदी के तट के साथ बसा है। पहले नदी के साथ छोटी ढक्की थी। ढक्की चढ़ते ही छोटा सा मैदान था। वहाँ अब बस अड्डा बना है। इसी अड्डा के साथ डाक बंगला तथा और भी कई भवन और दूकानें हैं। बस अड्डा से जो बाजार ऊपर जाता है वह पहले पश्चिम में फिर पूर्व में और अन्त में उतर की ओर मुढ़ता है। बाज़ार आज भी पहाड़ी माल की मंडी है। बाज़ार एक कि.मी. लम्बा है। इसके मध्य में एक खुले मैदान में भगवान हरिहर का अति भव्य और प्राचीन मंदिर है। मंदिर परिसर के साथ तंग मैदान है। इसमें एक और राधाकृष्ण मंदिर है। हरिहर मंदिर के इसी मैदान में बैसाखी का मेला आयोजित होता है। नवरात्रों की रामलीला भी यहीं होती है। मंदिर के आगे पीछे कई गलियाँ है जिन में घनी आबादी है। पहले मकान कच्चे थे अब नवे प्रतिशत पक्के हैं। बाज़ार के अन्त में एक खुला लम्बा और चौड़ा चौगान है। चौगान के ऊपर राजमहल हैं और उनके ऊपर नहान है। अब यह नगर दूर-दूर तक फैल गया है और इसका फैलाव दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है।

जनजीवनः- बल्लपुर जिसे आज विलावर कहते हैं शताब्दियों से

डुग्गर का एक सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। यहाँ राजपूत जिन में बलौरिया, भडवाल, सुम्बड़िये हैं अधिक संख्या में रहते हैं। खजूरिया, पाधा ब्राह्मणों के अतिरिक्त 'नाथ' जोगी इत्यादि भी रहते हैं। धीवरों के नगर में कई घर हैं। मुसलमान भी हैं। सभी सम्प्रदायों के लोगों में भाई चारा, स्नेह-भाव तथा अपना पन है।

रीति-रिवाजः- डॉ. सत्यपाल श्री वत्स के शब्दों में बिलावर के इलाके की सांस्कृतिक परम्परा में धर्म के विश्वासों को समानता का अधिकार प्राप्त है। दूसरे शब्दों में इस में सभी धार्मिक विश्वासों का समन्वय है। जहाँ बिलावर के शिव मंदिर के आगे हिन्दू मुसलमान सिक्ख सभी श्रद्धा से अपना सिर झुकाते हैं, वहाँ यत्र-तत्र बने पीर खानों के आगे हिन्दू लोग सिर झुकाते हैं। वे अपने घरों सें गाय-भैंसें का दूध-दही पीरखाने चढ़ा कर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

यहाँ जलाशयों, बावलियों तथा नदी तटों में प्रधान रुप से शिव तथा नाग एवं अन्य देवी-देवताओं की किसी न किसी रुप में मूर्तियाँ विराजमान हैं। लोग इनके प्रति नित अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

घरों में कुल देवता तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित होती हैं। लोग प्रतिदिन पर्व और त्योहारों पर इनकी पूजा करते हैं।

मच्चघो त्योहार- यह विलावर का कृषि सम्बन्धी त्योहार है। किसान रवी तथा खरीफ की फसलों की बुहाई से पहले मच्चघो त्योहार मनाते हैं। इस दिन हल तथा कृषि उपकरणों की पूजा की जाती है और बैलों को फूलों की मालाएँ पहना कर उनके फसल की बुहाई तक स्वस्थ रहने के लिए देवताओं से प्रार्थना की जाती है। इस दिन घरों में पकवान बनते हैं और पूरा परिवार अच्छी बर्षा, अच्छी फसल के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है।

खानपानः- मकई, चावल गेहूँ तथा दालों का प्रयोग खानों में किया जाता है। लोग सर्दियों में टोडा तथा गर्मियों में चावल और चबाती खाना पसंद करते हैं। लस्सी, दही, मद्दरा, अम्बल, सब्जियों का प्रयोग भी खाने में होता है। पर्व-त्योहार पर परांठा, पूरी, घियूर, सुच्चियाँ बनाने की प्रथा भी है। जो लोग मांसाहारी हैं वे बकरे तथा मुर्गे का मांस पसंद करते हैं। कई घरों में

भोजन बनाने से पहले रसोई घर को गोबर से लीप कर पवित्र किया जाता है। कुलीन घरों की महिलाएँ रसोई में पाँच यज्ञ करती हैं। पाँच यज्ञों के अन्तर्गत पाँच छोटी छोटी टिक्कियाँ बनाई जाती हैं और गाय आदि पशुओं को खिलाई जाती हैं।

देव-आराधना- लोग अनिष्ट से बचने तथा सुख-समृद्धि के लिए कुलदेवों, पीरों और इष्ट देवों की पूजा करते हैं। मनौती, सुक्खन या सरीनी मनाते हैं। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से संकट टल जाते हैं।

संस्कारः- सन्तान उत्पति से पहले ठुआ या नुआं प्रथा निभाई जाती है। इसे रीतियाँ भी कहते हैं। इसके अर्न्तगत गर्भवती को पीढ़ा पर बैठा कर कई अनुष्ठान इस आशय से कराये जाते हैं कि बच्चे का जन्म देते समय गर्भवती को कष्ट या पीड़ा न हो। पुत्र जन्म पर बधावे गाये जाते हैं। नामकरण को सूतरा कहा जाता है। मुंडन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कार पूरे उत्साह से मनाये जाते हैं। मृत्यु के बाद प्रेत संस्कार मनाने की प्रथा तो थी किन्तु अब बंद है। **व्यवसायः-** विलावर के लोगों के मुख्य व्यवसाय व्यापार, दुकान-दारी, नौकरी, पशुपालन, कृषि, पुरोहिताई, आदि हैं। लोग कृषि कर्म को भी पसंद करते हैं और खेतों में सब्जियाँ और फल भी उगवाते हैं। मूलतः लोग परिश्रमी और कामकाजी हैं। भिन्न-भिन्न व्यवसाय के लोग यथा सुनार, लुहार, तरखान, मोची आदि अपना-अपना काम निष्ठा से करते हैं।

कलात्मक जीवनः- बिलावर के लोग कला प्रेमी रहे हैं। चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत कला, काव्यकला इत्यादि में इनकी रुचि है। संग्रामपाल तथा अमृतपाल चित्र कला के संरक्षक माने जाते हैं। पंडित सुखदेव बिलावर के महान संगीतकार थे। राज बिलावरी एक अच्छे अभिनेता, कवि, कहानीकार रंगकर्मी हैं। शिव नन्दन पाधा तांत्रिक के रुप में विख्यात हैं।

ऐतिहासिक स्मारक- बल्लपुर एक ऐतिहासिक नगर है, अतः इस में कई ऐतिहासिक स्मारक हैं जिनमें निम्न उल्लेखनीय हैं:-

सी-परोलः- लगता है यह सिंह परोल का विकसित रुप है। राजस्थानी में किले के मुख्य दरबाजे को परोल कहा जाता है। लगता है कि बल्लपुर मूल रुप से एक दुर्ग नगर था। नाज़ नदी की ओर दीवार थी जिस

में पाँच द्वार थे जिनमें मुख्य द्वार सी परोल था। पहले नाज नदी से जो पगडंडी आती थी वह इसी द्वार से होकर गुजरती थी, किन्तु अब पगडंडी वह गई है किन्तु द्वार खडा है। यह द्वार गोल-आकार में है और इस की चौड़ाई 2.65 मी और ऊँचाई पाँच मीटर है।

बिलावरिया राजाओं के महल:- ये महल नगर के चौगान के निकट एक पहाड़ी टीले पर बने हैं। इन सुदृढ़ दुमजिला महलों की दीवारें जीर्णावस्था में आज भी खड़ी हैं। ये महल पकनाल 13 मरले भूमि में परिव्याप्त हैं। ये दो भागों में हैं और बड़े-बड़े कक्षों पर आधारित हैं। इनका वास्तुशिल्प राजस्थानी शिल्प से प्रभावित लगता है। जनाना महल छोटा लगता है जबकि मर्दाना महल भव्य और आकर्षक है। कई इतिहासकारों के अनुसार इन महलों का निर्माण राजा कृष्णपाल ने 17वीं सदी में करवाया था।

गुरनाल की बावली:- यह बावली नाज़ नदी के दक्षिणी तट के साथ शिव मंदिर के पश्चिम में एक खुले स्थान पर बनी है। यह चारों ओर से दीवार से घिरी है। इसके अन्दर चार अर्ध स्तम्भ बने हैं। कहते हैं कि बिलावर के राजा गर्मियों में इन अर्द्धस्तम्भ पावो पर पलंग बिछा कर सोने का आनन्द लूटते थे। इस में तीन ओर से पानी गिरता था। यह बावली मूल-अवस्था मे आज भी देखी जा सकती है।

रिकिंया तथा नाड़रियां की बावलियाँ:- ये दोनों बावलियाँ भी ऐतिहासिक महत्व की हैं। रिकिया की बावली का एक नाम राजा की बावली है। इस की लम्बाई 6.82 मी. है। इसमें एक नागमूर्ति जड़ित है जो दर्शनीय है। नाड़रियाँ की बावली सुन्दर मूर्तियों के कारण प्रसिद्ध है। इसमें नृत्य मुद्रा में गणेश की मूर्ति बहुत ही कलात्मक और आकर्षक है।

बल्लपुर के मंदिर:- बल्लपुर में कई मंदिर हैं जिन में निम्न अति प्रसिद्ध हैं:-

विल्केश्वर महादेव:- यह डुग्गर का अकेला ऐसा मंदिर है जिस की परिगणना विश्वदाय स्मारकों में की जाती है। यह ऊँचे चबूतरे पर बना है जिस की लम्बाई 19 मीटर और चौड़ाई 13 मी. है।

यह सप्तरथ योजना पर निर्मित है जिसके भद्ररथ कलात्मक हैं। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार है और इसमें स्थापित शिवलिंग पंचमुखी है। मंदिर के भीतर कलात्मक देवमूर्तियाँ हैं। मंदिर का शिखर उभरवा उकेरी के अलंकरणों से सुसज्जित है। यह प्रस्तर खंडों से निर्मित है और एक हज़ार बर्ष से भी पुराना है।

शिव मंदिर-गुरनालः- यह कलात्मक शिव मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से पहाड़ी शैली में लगता है। इसकी योजना में मण्डप और अन्तराल नहीं है। यह त्रिरथ योजना पर बना है और इसकी ऊँचाई पाँच मीटर के करीब है। इस मंदिर का विशेष आकर्षण सुप्तावस्था में गंगा की मूर्ति है।

राधाकृष्ण मंदिरः- शिला खंडों से बना यह नव निर्मित मंदिर विल्केश्वर मंदिर के पार्श्व में है। दक्षिणोन्मुख इस मंदिर के गर्भगृह में राध ाकृष्ण की मूर्ति स्थापित है।

हनुमान की विशाल मूर्तिः- यह विशाल मूर्ति नाज़ नदी के मध्य में एक बड़ी चट्टान को उत्कीर्ण करके तैयार की गई है। मूर्ति पालवंशीय राजाओं के शासनकाल की बताई जाती है।

सुकराला मंदिरः- यह शक्ति मंदिर बिलावर से 9 कि.मी. दूर सुकराल ग्राम में है। जिला कठुआ में यह सबसे बड़ा शक्ति स्थल माना जाता है। मंदिर ऊँचे टीले पर है और महा मण्डप से युक्त है। इसके अन्दर जो पिण्डी है वह अंगूठे के आकार में है। यहाँ लाखों की संख्या में प्रति वर्ष श्रद्धालु आते हैं।

मस्जिदः- बिलावर की यह मस्जिद बस अड्डा से आधा किलोमीटर दूर बिलावर सुकराला सड़क के तट के निकट बनी है। पूर्वोन्मुख यह मस्जिद चार मीनारों से सुसज्जित है। जुमें के दिन सैकड़ों की संख्या में मुसलमान नमाज़ पढ़ने आते हैं। यहाँ ईद के त्योहारों पर बड़ी चहल पहल होती है। आस-पड़ोस के ग्रामों के मुसलमान भी बड़ी संख्या में आते हैं।

महानगर

डुग्गर की शिवालिक पहाड़ियों के मध्य में बसा यह छोटा सा

उपनगर बसोहली- बिलावर सड़क के लगभग ठीक मध्य में है। बिलावर से इसकी दूरी 24 कि.मी. है।

कहा जाता है कि बल्लपुर के राजा मान शाक्य ने यह नगर सुरक्षा की दृष्टि से बसाया। ऐतिहासिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि यह कस्बा कुछ समय के लिए बल्लपुर राजाओं की राजधानी भी रहा किन्तु बाद में उन्होंने अपनी राजधानी बसोहली बदल ली। यह महत्वपूर्ण उपनगर पालवंशीय राजाओं के अधिकार में रहा है। तारीख डोगरा देश के अनुसार महाराजा गुलाब सिंह की माता तथा किशोर सिंह की पत्नी इसी गाँव की थी और उसने यहाँ एक शिव मंदिर तथा एक सराय का निर्माण करवाया।

महान पुर कस्बा डुग्गर के अन्य पहाड़ी उपनगरों की भाँति कहीं ढलान में, कहीं टीले पर तो कहीं समतल मैदान में बसा है। सड़क बनने के बाद बाज़ार सड़क पर आ गया है। महानपुर एक गाँव के रुप में कम किन्तु एक नगरोटा के रुप में अधिक आकर्षक लगता है। गाँव सड़क के पूर्व में है और एक कि.मी. से भी अधिक लम्बा है। अढ़ाई सौ के करीब इसमें घर हैं और डेढ़ हज़ार जन संख्या है। मकान अब पक्के हैं और आधुनिक जीवन शैली के अनुरुप हैं। सभी जातियों के लोग यहाँ रहते हैं जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। कुछ लोग नौकरी भी करते हैं।

दर्शनीय स्थलः- महानपुर में दर्शनीय स्थल जगदम्बा मंदिर है जो पहाड़ी शैली में बना है। आकार में चाहे यह मंदिर छोटा है किन्तु इसका वास्तु विन्यास अद्भुत और विलक्षण है। मंदिर की दीवारों में देवी देवताओं, सामंतों तथा पक्षियों की मूर्तियों के अतिरिक्त डोगरी में एक शिलालेख भी है जिस के अनुसार इस मंदिर का निर्माण वि.स. 1583 तदानुसार 1525 ई. में राय मानसिंह के शासन काल में हुआ। शिलालेख की लिपि टाकरी है। माड़ा का मंदिर- महानपुर से चार कि.मी. पूर्व में माड़ा नामक ग्राम में भी भगवान शिव का एक भव्य, तथा विलक्षण मंदिर है। इसमें लिंग के नीचे से जल प्रवाह मान है। यह मंदिर भी दर्शनीय है।

बनीः- यह पहाड़ी कस्बा बसोहली के उतर-पश्चिम में हिमालय पहाड़ की मध्यवर्ती शाखा के बीच में ऐसा लगता है जैसे अंगूठी में नगीना। बसोहली से इस की दूरी 86 कि.मी. है। यह एक स्वास्थ्य बर्द्धक स्थान है

और पर्यटन की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। शिव दोवलिया के शब्दों में यह छोटा कश्मीर दिखाई देता है। यहाँ के निवासियों की वेश भूषा गर्म पट्टु का कोट, सिर पर सफेद साफा (पगड़ी) पट्टू का ही पायजामा कमर में काली डोरी, सर्दियों में लम्बा चोगा है। लोगों का मुख्य व्यबसाय कृषिकर्म तथा पशुपालन है। धूप, मुशक बाला, कुट्ठ, स्यूल, बजरभंग, दरेऊ, राजमाष, अखरोट, गुच्छियाँ, फरनी (पहाड़ी प्याज़), कुडिया, बुन बकरी, कसरोड़, फफरु यहाँ प्रकृति की देन है। वनों से प्राप्त इन वस्तुओं का संकलन करके लोग उन्हें बाज़ार में बेच कर खूब पैसे कमाते हैं।

बनी सेवा नदी पर बसा एक छोटा सा कस्बा है। यह तहसील बसोहली के अन्तर्गत है। अब यह उपतहसील का मुख्यालय है। यहाँ कई सरकारी कार्यालय हैं जिस कारण इसका दिन प्रतिदिन विकास हो रहा है। अब कई दूकानें खुल जाने से यह कस्बा एक पहाड़ी मंडी के रुप में विकसित हो रहा है।

शिव दोवलिया के मतानुसार यह कस्बा पहले चारों ओर से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों तथा पहाड़ियों के मध्य में भयानक बन होने के कारण 'बनी' कहलाया। किन्तु उनका यह मत स्वीकार्य नहीं। डुग्गर में लोकदेवताओं के मंदिर के साथ जो बनस्थलियां विकसित होती हैं, उन्हें बनी कहा जाता है। लगता है यहाँ भी किसी लोक देवता का स्थान रहा होगा। स्थानीय लोगों के अनुसार यहाँ सबसे पुराना मंदिर शक्ति माता का है। माता की पिण्डी प्रति बर्ष नापी जाती है। कहते हैं कि वह स्थापना समय से बढ़ रही है।

यहाँ तक इस स्थान की ऐतिहासिकता का सम्बन्ध है उसके विषय में केवल इतनी ही जानकारी मिली कि सन् 1615 ई. में राजा भूपतपाल किश्तवाड़ पर आक्रमण करने जाने लगा तो वह बन्नी के शक्ति मंदिर में आया और उसने मनौती माँगी कि यदि वह किश्तवाड़ जीत गया तो देवी का नया मंदिर बनायेगा। देवी कृपा से उसने किश्तवाढ़ जीत लिया और अपनी विजय के उपलक्ष्य में बनी में शक्ति माता का मंदिर बनवाया।

बनी समुद्रतल से 3410 फुट ऊँचाई पर है। यहाँ अधिक संख्या में पशुचारक रहते हैं। यहाँ के मूल निवासी रुडेर कहलाते हैं। यहाँ कई घर मुसलमानों के हैं जिन्हें 'भ्राजी' कहते हैं। हरिजनों की भी संख्या अच्छी है।

लोग परम्परावादी हैं और जादू-टोने में विश्वास करते हैं।

यहाँ पीर बाबा भेठा का पुराना मज़ार भी है उसके नाम का दंगल यहाँ प्रति बर्ष होता है।

बसोहली

डुग्गर संस्कृति तथा चित्रकला के लिए विश्व प्रसिद्ध यह पहाड़ी नगर रावी नदी की तटीय पठार पर एक छोटे से भूखंड में बसा है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई 1876 फुट है। भौगोलिक दृष्टि से इस की स्थिति $32^0.31$ अक्षांश उतर में और $75^0.51$ रेखांश पूर्व में है। जम्मू से इसकी दूरी 120 कि. मी. उतर पूर्व में है।

नाम करण:- एक मत यह है कि बसोहली का नगर 'बसो' नामक राणा ने बसाया, अत: बसो के नाम पर इसका नाम बसोहली प्रचलन में आया। दूसरा मत यह है कि इसका पूर्व नाम 'विश्वस्थली' था और बसोहली उसी का विकसित रुप है। किसी भी ऐतिहासिक पुस्तक में विश्वस्थली नाम उल्लिखित नहीं है। अत: यह कवि कल्पना लगता है।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि:- काह्नसिंह बलौरिया और नृसिंह दास नरगिस का मत है कि दसवीं सदी में बल्ल. पुर के राजा मणिशाक्य ने (910-940 ई.) ने बसु राणा को लड़ाई में पराजित करके उसे बसोहली से भगा दिया और उसने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया जो उन्नीसवीं सदी तक चला। किन्तु राजदर्शनी में उल्लेख मिलता है कि जम्मू के राजा अवतार देव (1009-1053 ई. वि. तदानुसार 952-996 ई.) ने राजा जयपाल के पुत्र आनन्दपाल को जोकि, मुहम्मद गजनवी से पराजित होने के बाद भागकर पहले सतीसर (कश्मीर) चला गया था और फिर वहाँ से जम्मू आया, उसे शरण दी और बाद में बसोहली की जागीर प्रदान की। लगता है राजदर्शनी के तथ्य सही हैं। बसोहली के इतिहास में राजा जयपाल के नाम का उल्लेख लगता है राजा अजय पाल के नाम से हुआ है। राजा जयपाल के उतराधि कारियों के जो नाम पुस्तकों में मिलते हैं वे हैं:- पृथ्वीपाल, महिपत पाल, हरिपाल, विनयपाल, उदयपाल, सिद्धपाल, भागपाल, जयद्रथपाल, अंचलपाल बहुल पाल, दौलतपाल, गर्न्धवपाल, यशपाल, कृष्ण पाल तथा भूपतपाल।

भूपतपाल के बाद इन राजाओं के शासन काल का क्रमिक इतिहास मिलता है जो इस प्रकार है:-

1. भूपतपाल (1598 - 1635 ई.)
2. संग्राम पाल (1635 - 1673 ई.)
3. हिन्दाल (1673 - 1678 ई.)
4. किरपाल पाल (1678 - 1693 ई.)
5. धीरजपाल (1693 - 1725 ई.)
6. मेदनी पाल (1725 - 1736 ई.)
7. जीतपाल (1736 - 1757 ई.)
8. अमृतपाल (1757 - 1776 ई.)
9. विजयपाल (1776 - 1806 ई.)
10. मोहिन्द्र पाल (1806 - 1813 ई.)
11. भूपेन्द्र (1813 - 1834 ई.)
12. कल्याणपाल (1834 - 1857 ई.)

राजा कल्याणपाल जब सिंहासन पर बैठा तो वह अल्प व्यस्क था। गुलाबसिंह ने बसोहली पर अधिकार करके कल्याण सिंह की पेंशन लगा दी। उसकी कोई सन्तान नहीं थी, अत: बसोहली के पालवंशीय राजाओं की बंशावली यहीं समाप्त हो गई।

बसोहली के राजा किसी न किसी रुप में कभी मुगलों के तो कभी जम्मू तो कभी खालसा दरवार के अधीन रहे। ये बहुत ही कला प्रेमी थे। इनके शासनकाल में बसोहली चित्र कला का चरम विकास हुआ। संगीत कला, मूर्तिकला, काव्य कला के क्षेत्र में भी बसोहली का नाम चर्चा में रहा।

नगर संरचना:- बसोहली एक अति सुन्दर नगर रहा है। इसकी नगर योजना भी सराहनीय थी। शहर के ऊँचे टीले पर राजा के महल थे। महल के साथ चौगान था। चौगान में एक ऊँचे चबूतरे पर भगवान नीलकंठ का मंदिर था। चौगान बसोहली का सांस्कृतिक केन्द्र भी था। यहीं सेना परेड़ करती थी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी यहीं होना था। राम लीला का मंचन भी होता है और रावण दहन का कार्यक्रम भी यहीं आयोजित होता है बसोहली का बाजार चाहे बहुत बड़ा नहीं है किन्तु इस में जीवनोपयोगी सभी वस्तुएँ उपलब्ध हैं। कभी यहाँ पसमीना की कई खड्डियाँ भी थी जिस कारण यह

बाज़ार शालों की मंड़ी थी। बाजार के पीछे मकान थे गलियाँ थी। किन्तु पुरानी बसोहली अब बिल्कुल बदल गई हैं। महल धाराशायी है। चौगान का बहुत बड़ा हिस्सा लोगों के अनाधिकार में है। कई छोटे-छोटे नये बाज़ार शहर के साथ जुड़ गए हैं। नये मुहल्ले उदित हुए हैं। कई नए लोग बसोहली में आ बसे हैं। अब इस नगर का विकास चहुंमुखी हो रहा है। नगर का रुप बदल रहा है।

जन संख्या :- सन 2001 की जनगणना के अनुसार इस कस्बे की कुल आबादी 5945 थी जिस में 3209 पुरूष और 2736 महिलाएँ थी।

लोक जीवन:- बसोहली में कई जातियों के लोग रहते हैं। ब्राहमणों की भी कई जातियाँ हैं यथा सल वालन, कठयालू, बसौत्रा, बालिये, खिदड़िए, साघ पाठक ,दोवलिये, परंगोलिए, मिसर, डोगरा, सपोलिये, पाधे तथा ब्रह्मी इत्यादि। इन में कई जातियाँ स्थानीय है। इसी प्रकार खत्री भी कई शाखाओं में विभाजित हैं, यथा:- त्रडा, फन्दा, घावन, कनोत्रा, बटालिये, घेई, नैयर, मेहता तथा सोली आदि। इन के अतिरिक्त राजपूतों में बलोरिये, मनकोटिए, और सुम्बड़िये यहाँ के निवासी है। धीवर, नाई, कुम्हार, तरखान, जुलाहे आदि व्यवसायिक जातियों के लोग भी बड़ी संख्या में रहते हैं। हरिजनों और मुसलमानों के भी कई घर हैं।

खान-पान:- बसोहली में खान-पान में मकई गेहूँ की रोटी तथा चावल का प्रयोग होता है। यहाँ के लोग तीन दालें पसंद करते हैं:- माष मुंगी तथा चन्ने की दाल, दो मद्धरा का प्रचलन है। राजमा का मदृरा और रोंग का मद्रा। महानी का प्रयोग लोग अम्बल के रुप में करते हैं। विवाह तथा पर्व त्योहारों पर थोथरु की प्रचलन भी है जो एक प्रकार का खमीरा होता है। अन्य पकवान दूसरो जैसे ही है। सब्जियाँ, दूध, दही, घी, पनीर रसोई में प्रयुक्त होते हैं।

पर्व और त्योहार:- वैसाखी के दिन रावी नदी में स्नान करने की प्रथा है। वैसाखी का मेला भी यहीं तट के साथ ही लगता है। लोग बडेतन स्थान में इकट्ठे होकर पितरों के नाम घड़े दान करते हैं। कृष्ण जन्माष्टमी का त्योहार बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इस दिन लोग खिरपू अवश्य पीते हैं।

रक्षा बन्धन एक परम्परागत पर्व है। इस दिन यज्ञ का आयोजन भी

किया जाता है। नाग पंचमी के दिन घर की दीवारों में पाँच भिन्न-भिन्न रंगो में पांच नाग बनाये जाते हैं। पहली करवाचौथ मायके में मनाने की प्रथा है। यहां टिक्का का पर्व दो दिन में मनाया जाता है। पहले दिन माँ बेटे को टिक्का लगाती है और दूसरे दिन बहन भाई को टिक्का लगाती है। यहाँ टिक्का लगाने का ढ़ग अलग है। बहन पहले भूमि में घी का चौका फेरती है फिर उस में बादाम रखती है। फिर दायें पाँव का अंगूठा जोड़ कर हाथ के दरवाजों में बन्ना के पत्र बांधे जाते हैं। दशहरा यहाँ 9 दिन तक चलता है। इन दिनों राम लीला का आयोजन होता है। होली के दिन रंग का मटका धीवर उठाता है। शाम को होली दहन होती है। लोहड़ी के दिन भी आग जला कर पूजा की जाती है। होई के दिन धीवर बैसनी लिखने घर-घर जाते हैं। चेत-चतुर्दशी के दिन रावी नदी में स्नान करते हैं।

संस्कारः- बच्चे के नाम करण संस्कार के बाद यहाँ मुंडन संस्कार अलग-अलग रीति-रिवाजों से आयोजित होता है। कई घर में छुप कर बच्चे के बाल उतारते हैं, कई देवस्थान पर जाकर यह संस्कार सम्पन्न करते हैं। कई भोज पर आमंत्रित करते हैं और कईयों के घरों में भोज नहीं दिया जाता। यज्ञोपबीत संस्कार के भी अलग रीति-रिवाज़ हैं। जिस लड़के को यज्ञोपबीत पहनाना हो पहले उसका ब्राह्मण मित्र बनाया जाता है और उसे यज्ञोपबीत पहनाया जाता है। बाद में माता-पिता अपने बच्चे को यज्ञोपवीत पहनाते हैं। विवाह संस्कार डोगरा ढ़ग से ही आयोजित होता है। अन्तर केवल इतना है कि जब बहू घर आती है तो मुर्गे की बलि देते हैं। विवाह के दूसरे दिन बध ू का हाथ कु'नी (छोटा घड़े आकार का वर्तन) में डलवाते हैं। वहू नहा-ध ो कर हल्वा तैयार करती है और सबको खिलाती है। उसी दिन एक बड़ी पत्तल में खाना परोसा जाता है और सभी महिलाएँ मिल कर खाना खाती हैं। लड़की के विवाह मे उबट्टन मलने की क्रिया को समूहत कहते हैं। लड़कियों को कलीरे केवल वेदी में पहनाये जाते हैं।

मृत्यु संस्कार-मृतक बच्चे का यदि मुंडन संस्कार न हुआ हो तो उसे रावी नदी में प्रवाहित करते हैं। यदि बड़ा होतो उस का संस्कार रावी के किनारे किया जाता है। मृतक विवाहित हो या कुंवारा उस की अस्थियों को उसी दिन उठा लिया जाता है। परिवार के लोग अस्थि चयन तक चिता के पास ही बैठे रहते हैं।

बसोहली चित्रकला- बसोहली की चित्रकला विश्व-प्रसिद्ध है। विश्व में शायद ही ऐसा कोई चित्रकला संग्रहालय होगा यहाँ बसोहली के चित्र प्रदर्शित न हों। बसोहली चित्रकला का आरम्भ इतिहासकार राजा संग्रामपाल के शासनकाल से मानते हैं। संग्राम पाल ने सन् 1661 से 1673 तक चित्रकला के विकास में महत्व पूर्ण योगदान दिया। इसके बाद पालवंश के अन्त तक किसी न किसी रुप में चित्रकला का क्रम चलता रहा।

· **विशेषताएँ:-** परसराम पूर्वा के शब्दों में - बसोहली कलम के चित्रों का अपना पृथक वजूद है तथा यह कांगड़ा या राजस्थानी चित्र शैली से अलग पहचाना जा सकती है। बसोहली चित्र कला में चाहे कांगड़ा-चित्रकला के गुण, सूक्ष्मता तथा बारीकी नहीं है किन्तु ये चित्र बड़े सशक्त और अपनी सादगी में बड़े अनोखे हैं। रस मंजरी तथा गीत गोविन्द का सार इन चित्रों में देखा जा सकता है। इन चित्रों के चौखटे गूढ़े लाल रंग के हैं कहीं-कहीं पीले रंग का प्रयोग भी हुआ है। लाल, पीला तथा नीले रंग का प्रयोग इन चित्रकारों ने खुलकर किया है। बादल, बिजली तथा वारिश को चित्रित करना इन चित्रकारों की विशेषता है। इन चित्रों में आकाश में पतले-पतले बादल तथा इनमें सर्प की भाँति बल खाती बिजली की चमक दिखाई गई है। इसके लिए चित्रकारों ने कहीं सफेद तो कहीं सुनहरे रंगों का प्रयोग किया है। इन चित्रों की एक और विशेषता है- वृक्षों का प्रयोग, वृक्षों में अनार, आम गुलमोहर का प्रयोग चित्रकारों ने अधिक किया है। सफेदों को भी इन्होंनें चित्रित किया है। बसोहली चित्रकला में नारियों की आँखें बड़ी-बड़ी चित्रित हैं। उनके चेहरे भी आकर्षक दिखाये गए हैं, नारियों को आभूषणों से सुसज्जित दिखाया गया है। मकानों के चित्र भी बड़े आकर्षक तथा मोहक हैं। मकान डोगरा शैली में हैं तथा इन के मुंडेर भी दिखाये गए हैं। पक्षियों में तोता और कबूतर चित्रित हैं जो प्रेम के प्रतीक हैं।

बसोहली शैली के अन्तर्गत बने चित्रों में पुरुष और नारी के कद एक जैसे चित्रित हैं। इन चित्रों में सिर लम्बा तथा पीछे की ओर झुका हुआ दिखाया गया है। पुरुषों के सिर पर राजस्थानी ढ़ग की पगड़ी, कमर में कमर बंद, चूड़ीदार तंग पायजामा पहने हुए चित्रित किया है। नारी को चोलड़ी, घगरा, घगरे के अन्दर सुत्थन और जाली दार बारीक चादर ओढ़े हुए दिखाया गया है। पौराणिक पुरुषों यथा राम और कृष्ण को सिर पर मुकुट पहने दिखाया गया है। मुकुट के ऊपर तीन कलियाँ भी दिखाई गई हैं।

कला विदों के अनुसार बसोहली-चित्र शैली न तो पूर्ण रुपेण मुगल शैली से प्रभावित है और न ही काँगड़ा तूलिका से। बसोहली कलम अखड़, तेज़, प्रौढ़ और स्वाभाविक लगती है। इस शैली के अन्तर्गत बने चित्रों में तेजी और तीक्ष्णता अधिक है। कांगड़ा चित्रशैली में प्रकृति के दृश्यों का अकन प्रतीकात्मक रुप में हुआ है। प्रकृति से दूरी बसोहली उपशैली की प्रधान विशेषता है। बसोहली चित्रकला में एक और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इन चित्रों में सूफियाना रंगों का अभाव है। यह चित्र शैली गूढ़े रंगों के कारण प्रसिद्ध है।

बसोहली चित्रशैली को उच्च-शिखर तक पहुँचाने का श्रेय प्रख्यात चित्रकार देवी दास को दिया जाता है। उसने अपने चित्रों को 'रस मंजरी' नाम से संग्रहित करके बसोहली के राजा को सन 1685 ई. में भेंट किया। बसोहली चित्र शैली को राज्याश्रय प्राप्त रहा। बसोहली राज्य का विलय जब जम्मू राज्य में हुआ तो उचित संरक्षण न मिलने के कारण यह शैली लुप्त हो गई। जम्मू में इस शैली के कुछ चित्र जम्मू आर्ट गैलरी में देखे जा सकते हैं। कई चित्र विदेशों में भी चले गए हैं और वहाँ अजायव घरों की शोभा बढ़ा रहे हैं। कई संस्थाएँ इस चित्रकला को पुर्नजीवित करने में प्रयास रत हैं।

पुरातत्वः- पुरातत्व की दृष्टि से बसोहली के निम्न स्थल उल्लेखनीय हैं:-

विश्वेश्वर गुफाः- यह गुफा बसोहली से डेढ़ कि.मी. पूर्व में रावी नदी के पश्चिमी तट पर एक उठवां कठोर चट्टान को उकेर कर बनाई गई है। पूर्वोन्मुख इस गुफा के संकरे द्वार तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ हैं। गुफा के अन्दर पहले एक कक्ष बाद में उसके साथ सटा दूसरा कक्ष दिखाई देता है। पहले कक्ष की उतरी दीवार में दो मीटर ऊँची पत्थर की मूर्ति है जो इस गुफा मंदिर की विशिष्टता है। इस मूर्ति के विषय में कहा जाता है कि यह राजा भूपतपाल की है। कईयों का कथन है कि यह विश्वकर्मा की मूर्ति है। यदि इस मूर्ति का समीक्षात्मक अध्ययन करें तो लगता है कि यह मूर्ति बौद्ध तांत्रिक देवता बुद्ध कपाल की है। दूसरा कक्ष सामान्य है। इसके गर्भगृह के मध्य में भद्रपीठ पर शिवलिंग स्थापित है। बसोहली में इस गुफा के साथ ही एक छोटी गुफा और है जिसे शीतला माता की गुफा कहते हैं। किन्तु अब इस गुफा ने रंजीत सागर बनने के बाद जल समाधि ले ली है।

राजमहल:- बसोहली के राममहलों को विदेशी पर्यटकों ने पहाड़ों का अजूबा लिखा है। ये महल भव्य और कलात्मक थे। इनको तीन भागों में विभाजित किया गया था जिन के नाम थे- दरवार हाल, शीश महल और रंग महल। सन् 1870 में बीट्स ने जब इन्हें देखा तो ये जीर्णावस्था में थे। राजा भूपेन्द्र पाल के शासनकाल में खालसा सेना ने जब बसोहली को घेरा तो इन महलों को भी क्षति पहुँची और आज स्थिति यह है कि यह किला नुमा राज महल मलवे के कारण मिट्टी का एक ऊँचा टीला दिखाई देते है। इसकी बड़ी दीवार 75 फुट ऊँची थी। उसका कुछ भाग बाहर निकला हुआ दिखाई देता है।

देवी कीला:- बसोहली का यह लघु किला बसोहली के ऐतिहासिक स्मारकों में परिगणित है। उतरोन्मुख यह किला एक पहाड़ी टील के ऊपर बना है जो चारों ओर से ऊँची दीवारों से आवेष्टित है। इस किले के अन्दर कई आवासीय कक्षों के अतिरिक्त बसोहली के राजाओं की कुल देवी 'चैंचलों' का भी एक मंदिर है।

सन् 1870 में वीट्स ने जब इस लघु किले को देखा तो उस समय यह एक जीवंत किला था और इसमें 50 सैनिक रहते थे और नगर की सुरक्षा के लिए यहाँ तीन तोपें रखी गई थी। अब यह किला जीर्ण-शीर्ण अवस्था में खड़ा है। इसके भीतर बने कक्ष भी भग्नावशेष लगते हैं। इसके संरक्षण की आवश्यकता है।

पुराना किला:- बसोहली का यह किला राजमहल के साथ ही निर्मित था। इतिहास में उल्लेख मिलता है कि यह नगर के मध्य में एक रेतीले टीले पर बना था। भूविन्यास की दृष्टि से यह वर्गाकार था और वीस कनाल भूमि में परिव्याप्त था। इसके प्रत्येक कोण में ऊँचे-ऊँचे बुर्ज थे। यह मुगल शैली में बना था किन्तु अब केवल एक खंडहरों का ढेर लगता है। इस किले के पास ही एक झील भी थी किन्तु अब उस झील के निशान भी नहीं हैं।

चट्टानों में उत्कीर्ण मूर्तियाँ:- बसोहली में एक चट्टान को काट कर देवी की मूर्ति बनाई गई है जिस में देवी को शेर पर आरुढ़ दिखाया गया है। इसमें देवी की चार भुजाएँ दिखाई गई हैं। चट्टान पर उत्खचित यह मूर्ति लोक कला का सुन्दर नमूना कही जा सकती है। रामचन्द काक ने

एन्टीक्वीटीज़ आफ बसोहली एंड राम नगर में इस स्थल का उल्लेख किया है। इसी प्रकार की कुछ मूर्तियाँ रावी नदी के किनारे स्थित चट्टानों में भी खचित हैं। इन मूर्तियों में राधा कृष्ण, ब्रह्मा, नारद तथा शीतला देवी की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

पुरातत्व की दृष्टि से बसोहली एक महत्वपूर्ण नगर है।

लखनपुर

रावी नदी के तट पर बसा लखन पुर एक ऐतिहासिक स्थल है। अब यह जम्मू-कश्मीर राज्य का प्रवेश द्वार है। यह पठानकोट और कठुआ के मध्य में बसा है। पठानकोट से इस की दूरी 11 कि.मी. और कुठआ से 13 कि. मी. है।

राजदर्शनी के अनुसार इस उपनगर की नींव राजा लक्ष्मण चन्द ने रखी। किन्तु तारीख डोगरा देश के अनुसार जसरोटा के राजकुमार संग्राम देव को यह क्षेत्र जागीर के रुप में मिला। उसने अपने इस नये राज्य की राजधानी लखनपुर में स्थापित की। संग्राम देव का राज्य जनश्रुतियों के अनुसार रावी नदी से लेकर उज्झ नदी तक था। संग्रामदेव जसरोटा के राजा कैलाश देव का कनिष्ठ पुत्र और प्रताप देव का छोटा भाई था। राजा कैलाश देव दुर्ग का निर्माण करवाया और इसके निकट ही उसने अपने आवास के लिए महल बनवाया। महल के साथ ही पहाड़ी शैली में उसने एक शहर बसाया जो पहले रावी नदी के तट के साथ-साथ फैला था। किन्तु रावी में बाढ़ों के कारण दुर्ग और महलों को क्षति पहुँची जिस कारण इस नगर का समय-समय पर स्थानान्तरण होता रहा। राजा कैलाश देव के वंशज लखनपुरिये कहलाये। लखनपुर का उल्लेख मुगल इतिहास में भी मिलता है। लखनपुर का राजा उन पहाड़ी राजाओं में एक था जिसने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया। सतारहवीं सदी में लखनपुर नूर पुर राज्य के अधिकार में चला गया और दो सदियों तक उनके राज्य का एक अंग रहा। सन् 1846 ई. में अमृतसर संधि के अनुसार जब गुलाब सिंह को चम्बा के बदले लखनपुर और पंजग्राई का क्षेत्र मिला तो गुलाबसिंह ने लखनपुर पर अधिकार करने के तुरन्त बाद यहाँ एक लघु दुर्ग का निर्माण करवाया जो अपने मूल रुप में अब भी अपने स्थल पर खड़ा है। यह एक लघु किला है और केवल सीमा पर चौकसी रखने के लिए इसका

निर्माण हुआ है। लखनपुर में अब निरीक्षण केन्द्र के साथ-साथ एक बाज़ार उदित हुआ है जिस में साठ-सहतर दुकानें हैं। नगर में डेढ़ सौ के करीब घर हैं। अधिकांश घर पक्के हैं। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि कर्म, दुकानदारी और नौकरी है। प्रायः सभी जातियों के लोग इसमें आवाद हैं पुराने लखनपुर शहर के पुरावशेष रावी नदी के तट के साथ-साथ आज भी द्रष्टव्य हैं। इनकों देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कितना महत्वपूर्ण शहर था।

मरोली

डुग्गर का यह छोटा सा कस्बा तहसील कठुआ के अन्तर्गत कठुआ से 9 कि.मी. की दूरी पर एक पहाड़ी पर बसा है। कभी यह कस्बा लखनपुर से विघटित एक छोटे से राज्य की राजधानी था। मरोली के विषय में कहा जाता है कि इसे जसरोटा के राजा संग्राम देव के पोते ने तब बसाया जब यह क्षेत्र उसे एक जागीर के रुप में मिला। मरोली के विषय में यह भी कहा जाता है कि यह लखनपुर के राजाओं की छुपने की जगह थी। जब नूरपुर की सेना लखनपुर पर ताबड़तोड़ आक्रमण करती तो राज परिवार के लोग ऐसी स्थिति में इस स्थान को सुरक्षित मानकर यहीं आ जाते। एक मत यह भी है कि लखनपुरिये राजाओं के हाथ से जब लखनपुर निकल गया तो उन्होंने अपनी नई राजधानी मरोली को बनाया और फिर वे यहीं से शासन चलाने लगे। अब यह कस्बा एक ग्राम के रुप में परिवर्तित है। सन् 1846 ई. में राजा गुलाबसिंह ने इस क्षेत्र पर अधिकार करके इसे अपने राज्य में मिलाया। गुलाबसिंह द्वारा निर्मित 'शिव मंदिर' इस ग्राम की शांन है।

मेहताव पुरः- जिस प्रकार मरोली लखनपुर से अलग हुई बैसे ही मरोली के मेहतावसिंह ने अपने लिए एक जागीर प्राप्त की जिस की राजधानी उसने अपने नाम पर मेहताव पुर बसाई। मेहतावपुर कठुआ मोड़ से 5 कि. मी. दूर है। यहाँ एक नाला के तट के साथ एक भव्य महल के पुरावशेष विखरे पड़े हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि वे मेहताव सिंह के महल थे। मेहताव सिंह मेहतावपुर को एक नया तथा आधुनिक नगर के रुप में विकसित करना चाहता था। उसने इस नगर का प्रारूप भी तैयार कर लिया था। किन्तु जसरोटा के राजा हीरा सिंह के गुरु जल्ला पंत से उसका टकराव हो गया परिणाम स्वरुप जल्ला पंत के आदेश पर मेहताब सिंह की हत्या कर दी गई। कहा जाता है कि मेहताव सिंह जब अपने महल बनवा रहा था तो

उसने थोलू नामक ब्राह्मण लड़के की नींव के नीचे बलि दी थी जिस कारण लोगों ने उस का विरोध किया। कहा जाता है कि मिंया डीडो मेहताव सिंह का मुसेरा भाई था। उसने एक किला भी बनवाया था जिसे कुमरी कठेरा का किला कहते हैं। इस किले के पुरावशेष लंगेर से 13 कि.मी. दूर एक पहाड़ी पर देखे जा सकते हैं।

कठुआ

डुग्गर का नदी तटीय यह नगर रावी नदी के पश्चिम में नदी से 5 कि.मी. जम्मू के पूर्व दक्षिण में 81 कि.मी. पठानकोट के पश्चिम में 24 कि. मी. तथा लखनपुर से 9 किलो मीटर की दूरी पर बसा है।

नामकरणः- कई विद्वानों का मत है कि यह नगर 'कठ' कबीलें की राजधानी था। 'कठों' के विषय में कहा जाता है कि यह डुग्गर का एक युद्ध प्रिय कबीला था और इसने सिकन्दर से टक्कर ली थी। किन्तु कठों की राजधानी के इस नगर के आसपास अवशेष नहीं मिलते और न ही इस कबीले के लोग यहाँ आवाद हैं, अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। लेखक मन्साराम चंचल का मत है कि पाँच गाँवों को जोड़ कर कठुआ बना है। यहाँ आज कठुआ का मुख्य नगर है पहले वहाँ तजोवाल और भजोवाल गाँव आवाद थे।

नगर की संरचनाः- कठुआ नगर की संरचना मैदानी नगर के रुप में की गई है। इस नगर के मध्य में एक नाला प्रवाह मान है। नगर का जो भाग नाला के पार है उसे पारली बंड और जो भाग पश्चिमी तट पर है उसे रुआरली बंड कहते हैं। मन्साराम चंचल के अनुसार नगर के मध्य भाग का नाम मंझली बंड था। पारली बंड को कई लोग पुराना कठुआ मानते हैं और कईयों का मत है कि असली प्राचीन नगर तो रावी नदी के तट के साथ था, जो अब वह गया है। सम्भव है कि नदी के साथ कोई ग्राम रहा हो किन्तु यहाँ तक नगर का सम्बन्ध है न तो उसके अवशेष हैं और न ही उसका कोई उल्लेख किसी पुस्तक में मिलता है। वर्तमान कठुआ का अधिकांश भाग रुआरली बंड में है। इसी भाग में एक बाज़ार है जो पौन किलोमीटर लम्बा है। बाज़ार के चौक से कई गलियाँ निकलती हैं जिनमें घनी आवादी है। गलियों के भी जाति या स्थान के आधार पर अलग-अलग नाम हैं। बाज़ार तथा

गलियाँ पक्की हैं। अब तो कठुआ में दो-तीन नए बाज़ार विकसित हुए हैं। एक बाज़ार काली बड़ी से बस अड्डा तक अढ़ाई कि.मी. लम्बा है। दूसरा बाज़ार पारली बंड के बस अड्डा से राष्ट्रीय राज पथ तक है। तीसरा बाज़ार नगरी परोल सड़क के साथ है। कठुआ में अब कई नई बस्तियाँ ,कालोनियाँ, मुहल्ले बने हैं जिनसे इस नगर का रुप बदल गया है। सन 1981 में इस नगर की जन संख्या 30171 थी। सन 2001 मे यह बढ़कर 59706 हो गई।

सरकारी कार्यालयः- कठुआ जिला का मुख्यालय है। यहाँ सरकारी कार्यालय के लिए एक छोटा सचिवालय भी है किन्तु अधिकांश कार्यालय पूरे नगर में फैले हुए हैं। इनके अतिरिक्त इस नगर में दो डिग्री कॉलेज और तीन वी.एड कॉलेज तथा दो दर्जन से अधिक शिक्षा केन्द्र हैं।

जन जीवनः- मन्साराम चंचल के शब्दों में चूंकि यह नगर कुछ गाँवों से विकसित होकर एक शहर का रुप चाहे धारण कर चुका है फिर भी यहाँ का बातावरण रहन-सहन और आकार प्रकार प्रायः गाँवों जैसा है। कठुआ का नगरी करण होने के बावजूद यहाँ के अधिकांश लोगों के धन्धे खेतीबाड़ी, व्यापार या उद्योग हैं।

भाषा की दृष्टि से कठुआ की भाषा ठेठ डोगरी है जैसा कि जिला के कंडी क्षेत्र में बोली जाती है। लेकिन पंजाब के निकट होने से पंजाबी मिश्रित डोगरी भी कई घरों में बोली जाती है।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह नगर डुग्गर के रीति-निवाज़ों, रहन-सहन और त्योहार आदि को बैसे ही अपनाए है, जैसा कि पूरा डुग्गर प्रदेश। पंजाब की भाँति यहाँ बैसाखी के दिन भारी मेला लगता है। राम लीला, दशहरा, राम नवमी, कृष्ण जन्माष्ठमी के अलावा दूसरे त्योहारों पर भी झांकियां निकाली जाती हैं। मंदिरों में भारी चहल-पहल होती है और प्रभात फेरियां निकाली जाती हैं। गुरु पर्वो पर गुरुद्वारों में अखंड पाठ चलते हैं।

धार्मिक स्थलः- कठुआ के मुख्य बाज़ार के मध्य में श्री आशा पूर्णी माता का प्रमुख मंदिर है। इसके अतिरिक्त भगवती दुर्गा, भगवान शिव, विष्णु तथा श्री राम के कई मंदिर हैं। बावा सुरगल, गुग्गा व अन्य कुलदेवताओं के भी मान्य स्थान हैं। पारली बंड में पीर बावा की दरगाह है। शहर के मुख्य

चौक में गुरुद्वारा सिंहँ सभा सिक्ख सम्प्रदाय के लिए आस्था और श्रद्धा का प्रमुख आकर्षण है।

साहित्यिक गतिविधियाँ:- कठुआ अब साहित्यिक क्षेत्र में भी अग्रणी है। यहाँ की संस्थाएँ भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित हैं। स्थानीय कवियां तथा लेखकों में मन्साराम चंचल, विजय शर्मा, ओंकार पाधा, एस.डी सिंह, जनक सिंह जनक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आकाशवाणी कठुआ का इस क्षेत्र में सहयोग सराहनीय है।

नगरी परोल

कठुआ के पश्चिम में 13 कि.मी. की दूरी पर एक प्रवाहित नाला के पश्चिमी तट पर बसा नगरी-परोल डुग्गर का एक प्राचीन नगर है। डुग्गर के इतिहास से सम्बन्धित जितने भी ऐतिहासिक ग्रंथ हैं उनमें इस नगर का विवरण किसी न किसी रुप में मिलता है। हिन्दी में लिखित 'डुग्गर का इतिहास के अनुसार इस नगर का संस्थापक राजा अग्नि गिर था। राजा अग्निगिर के विषय में कहा जाता है कि वह सूर्यवंशी था। राजा रामचन्द्र की परम्परा से था। वह पहले अयोध्या से अज़मेर आया और अज़मेर से हरिद्वार चला गया। हरिद्वार से वह नगर कोट और नगर कोट से रावी नदी पार करके इस क्षेत्र में आया। उसने रावी नदी के साथ का कुछ क्षेत्र अपने अधिकार में किया और एक छोटे राज्य की स्थापना की जिस की राजधानी 'भूपनगरी' थी। अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि यही 'भूप नगरी' नगरी परोल है। इसका नाम नगरी परोल इसलिए पड़ा कि डोगरी में नगरी राजधानी के पर्याय के रुप में और परोल किले के पर्याय रुप में प्रयुक्त होती है। नगरी में किला था, अत: इसे नगरी परोल कहा गया।

अग्निवर्ण के आठ पुत्र थे वायालोचन, जम्बूलोचन, हेमालोचन, रुपालोचन तथा सुर्गलोचन आदि। अग्नि वर्ण के बाद उसका वेटा वायालोचन जब गद्दी पर बैठा तो उसे मद्रेश के राजा चन्द्रहँस ने लड़ाई में मार डाला। मद्रदेश और भूपनगरी में बढ़ते तनाव और लड़ाईयों से तंग आकर यह परिवार जम्बू की ओर चला गया यहाँ उसने जम्मू नगर बसाया।

नगरी-परोल में राजा अग्नि वर्ण या बाहुलोचन के शासन काल का

कोई भी पुरावशेष उपलब्ध नहीं है। नगरी परोल में पुरानी हवेलियों, महलों तथा भवनों के जो अवशेष हैं वे जसरोटा राजाओं के सामंतों के हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि वे मूल रुप से इस नगर के थे और उन्होंने अपने पैतृक-नगर में स्मृति रुप में इनका निर्माण करवाया।

नगरी परोल समतल मैदान में बसा अढ़ाई-तीन सौ घरों पर आधारित एक छोटा सा कस्बा है। इसमें साठ-सहतर दुकाने हैं जो मुहल्लों में बनी हैं। नदी पार करने के लिए जो पुल है, वह सामान्य है। गाँव में सभी जातियों के लोग रहते हैं, आर्थिक दृष्टि से सामान्य हैं। यह उपनगर लगभग एक कि.मी. लम्बाई में फैला है। पहले घर कच्चे थे किन्तु अब इस का रुप बदल रहा है। यह तीन ओर से सड़क से जुड़ने के कारण विकासोन्मुख है। नगरी में ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रकाश फैल रहा है लोगों में जागृति आ रही है और उनकी मानसिकता बदल रही है।

नगरी परोल में दर्शनीय स्थल बाला सुन्दरी का मंदिर है जिसके विषय में बताया जाता है कि वह मुगल कालीन है। मंदिर का पुर्न-उद्धार कई बार हुआ है अत: इसका स्थापत्य भी बदला है। मंदिर परिसर में कई भग्न भवनों के अवशेष भी मिलते हैं जिनके अवलोकन से लगता है कि उसके आस पास आवासीय कक्ष थे। इस मंदिर के पुजारियों के पास जो शिलालेख है वह शारदा का ही कोई रुप लगता है। नगरी का लक्ष्मी नारायण मंदिर बहुत बाद की निर्मिति है।

एरमां के मन्दिर:- नगरी से चार कि.मी. की दूरी पर पशिचम दिशा में एरमाँ ग्राम में मंदिरों का एक समूह है। इनमें जो प्रमुख मंदिर है उसे नीलकंठेश्वर महादेव मंदिर कहते हैं। ये मंदिर मिश्रित शैली में हैं और इन का शिखर गुंवदाकार का सा लगता है। मंदिर की द्वारशाखाओं में योरुपीय वेश-भूषा में जिस दम्पति की मूर्तियाँ बनी हैं। वे दर्शनीय हैं। एरमां के सभी मंदिर दर्शनीय हैं। इस मंदिर परिसर में एक जलकुंड भी बना है जिसे गंगा माता कहते हैं। पर्व त्योहारों पर सैकड़ों की संख्या में श्रद्धालु यहाँ स्नान करने आते हैं। यहां खुदाई मे मिली ईंटें नालिंदा की ईंटों से मिलती हैं। सन् 1976 में लेखक ने बड़े मंदिर के प्रवेश द्वार के साथ एक मीटर पत्थर की बनी महात्मा बुद्ध से मिलती जुलती जो मूर्ति देखी थी, वह अब वहाँ नहीं है।

जसरोटा

डुग्गर का यह विरान और उजडा़ हुआ नगर कठुआ से लगभग 22 कि.मी. उतर पश्चिम में और राजपुरा से सात कि.मी. उतर में उज्झ नदी के तट पर खड़ी एक ढलवां पहाड़ी पर बसा है। आज से डेढ़ सौ बर्ष पूर्व यह डुग्गर का महत्वपूर्ण नगर था किन्तु आज स्थिति यह है कि यह खंडहरों का शहर रह गया है।

नामकरण:- इस नगर की स्थापना तारीख डोगरा देश के अनुसार सन 1019 ई. में राजा जसदेव ने मुहम्मद गजनवी के नगर कोट पर आक्रमण के बाद सुरक्षा की दृष्टि से की।

ऐतिहासिक पृष्ट-भूमि:- जसरोटा डुग्गर का महत्वपूर्ण राज्य रहा है। तारीख डोगरा देश के अनुसार मुहम्मद गजनवी का वेटा रावी नदी पार करके जब इस क्षेत्र में प्रविष्ठ हुआ तो उसे स्थानीय राजाओं ने आगे नहीं बढ़ने दिया। उसे रावी के पार धकेल दिया। लगता है उन स्थानीय राजाओं में जसरोटा का संस्थापक राजा जसदेव भी रहा होगा। डुग्गर का इतिहास में उल्लेख मिलता है कि जसरोटा की जागीर जसदेव ने अपने भाई कर्ण देव को प्रदान की। कर्णदेव के वंशज ही बाद में जसरोटा राजवंश से सम्बन्धित होने के कारण जसरोटिया कहलवाये।

कर्णदेव के वंशजों ने तारीख डोगरा देश के अनुसार सन् 1019 से लेकर 1836 ई. तक शासन किया और इस अवधि तक उन की राजधानी जसरोटा ही रही।

जसरोटा के इतिहास में जिन राजाओं के नाम मिलते हैं उनके नाम क्रमश: इस प्रकार हैं। कर्णदेव, रायप्रताप देव, अतारदेव, विभुदेव (1580-1600) भोजदेव, फतेहदेव, तेजदेव, सुखदेव, ध्रुवदेव, कृपाल देव, रत्नदेव, भागदेव, अजायवदेव, लाल देव रणधीर देव तथा भूरिदेव। राजा भूरिदेव जसरोटा का अंतिम राजा था। इसी राजा के शासन काल में खालसा सेना ने जसरोटा पर सन् 1834 ई. में पूर्ण अधिकार किया। बाद में पंजाब नरेश महाराजा रंजीत सिंह ने जसरोटा हीरा सिंह को जागीर के रुप में प्रदान किया। 23 दिसम्बर सन 1844 ई. में हीरा सिंह की मौत के बाद खालसा सेना ने इस नगर में

बहुत तबाही मचाई, अन्ततः जसरोटा खालसा सेना के अधिकार में आ ही गया। सन् 1846 ई. में अमृतसर संधि के अन्तर्गत जसरोटा जम्मू का अंग बना और खालसा राज्य का जसरोटा से सम्बन्ध टूटा। जम्मू-कश्मीर के महाराजा गुलाब सिंह ने इसे जिला का दर्जा दिया। सन् 1922 में इस जिले को पूरी तरह कठुआ में स्थानान्तरित किया गया। परिणाम स्वरुप यह नगर उजड़ने लगा और सन् 1947 के बाद यह पूरी तरह से उजड़ गया। अब यह केवल खंडहरों का शहर लगता है। जसरोटा के इतिहास में राजा विभुदेव (1580-1600 ई.) का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। मुगल इतिहास में भी इसका उल्लेख हुआ है। राजा विभुदेव ने मुगल सम्राट अकबर की सेना से टक्कर लेकर सिद्ध किया कि डोगरा जाति परतन्त्रता का जीवन पसंद नहीं करती। 'अकबरनामा' में जसरोटा का नाम जसरुना और जसूना तथा राजा का नाम 'भाबु' (विभु) लिखा है और उसे विद्रोहियों का नेता माना है।

डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क ने जसरोटा के राजा कृपाल देव (1735. 66) तथा राजा रत्नदेव (1766-1780 ई.) की बहुत प्रशंसा की है और इन्हें योग्य प्रशासक माना है।

विदेशी पर्यटकों की दृष्टि में जसरोटा:- जिन विदेशी पर्यटकों ने जसरोटा को अपनी डायरी में उतारा उन में आस्ट्रियन मूल के एक पर्यटक चार्ल्स हयुगल के संस्मरण उल्लेखनीय हैं।

वह पठानकोट से कठुआ होता हुआ सन् 1834 में जसरोटा आया था। किन्तु उसने इस नगर की राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक स्थिति पर विशेष प्रकाश नहीं डाला। कनिंघम, आर्चर, फेड्रिक ड्रयु आदि विदेशी विद्वान चाहे जसरोटा को पूरी तरह देख न पाये फिर भी उन्होंने इस नगर तथा जसरोटा राज्य पर अपनी पुस्तकों में प्रकाश डाला है। स्थानीय लेखकों में काहन सिंह बलौरिया, दीवान नर सिंह दास नरगिस, शाहमत अली, सुखदेव सिंह चाड़क तथा मन्सा राम चंचल भी हैं जिन्होंने जसरोटा पर विस्तार से लिखा है।

नगर संरचना:- जसरोटा नगर कई बार बसा और कई बार उजड़ा अतः इस नगर का रुप तथा भूगोल भी बदलता रहा। सम्राट अकबर के समय में यह नगर वर्तमान नगर से नीचे था। नगर में दो दुर्ग थे, एक धान के खेतों में और दूसरा पहाड़ी के ऊपर था। नगर जाने के लिंए मार्ग बन में से जाता

था। मुगल सेना ने जसूना (जसरोटा), पहुँचने के लिए बन साफ किया तब वे 20 से 30 गज चौड़ी सड़क बना पाये। मुगलों ने जसूना को तो आग लगा कर साड फूंक दिया किन्तु फिर भी इस नगर का अस्तित्व मिटा नहीं मुगल आक्रमण के बाद यह फिर आवाद हो गया।

जसरोटा के राजा ध्रुव देव (1660-1675 ई.) ने पुराना जसरोटा त्याग दिया और उसने जम्मू की अनुकृति पर नया जसरोटा बसाया जिसके पुरावशेष आज भी दृष्टिगत हैं। इस नये नगर में प्रवेश के लिए जो मुख्य डयोढ़ी बनी, उसका नाम दिल्ली दरवाजा रखा गया। इस दरवाजा के भग्नावशेष आज भी द्रष्टव्य हैं। दिल्ली दरवाजा से कुछ आगे भगवती का मंदिर था। वह मूल अवस्था में आज भी खड़ा है। इस मंदिर से जसरोटा का बाजार आरम्भ होता था। इसके दोनों ओर दुकाने थी। बाजार चौड़ा था और इसमें कई दुकानें पक्की थी। यह चारों ओर से प्राचीर से घिरा था। मंदिर और प्राचीर आज भी खड़े हैं। किन्तु मंदिर की मूर्तियों को नीचे स्थानान्तरित किया गया है। वहाँ उन्हें जिस मंदिर में रखा है, उसे भी जगन्नाथ मंदिर कहते हैं। किन्तु यह मंदिर नया है।

इस मंदिर से आगे बाज़ार कुछ अधिक चौड़ा दिखाई देता था। बाज़ार के साथ गलियाँ थी। गलियों में जो मकान थे उनमें कई कच्चे और कई पक्के मकान थे। कच्चे मकान तो गिर चुके हैं किन्तु पक्के मकानों के अवशेष देखे जा सकते हैं। इनमें कई मकान हवेली शैली में हैं। यहाँ बाज़ार समाप्त होता था वहाँ भी पश्चिम में एक शिव मंदिर था, जो आज भी है और पूजा भी हो रही है। इसके आगे एक खुला मैदान है। शायद यही जसरोटा का चौगान था। चौगान के आगे महलों का क्रम आरम्भ हो जाता था। महलों से पहले चौगान के साथ दो बड़े-बड़े सरोवर थे वे अब भी देखे जा सकते हैं। महलों की ओर दो मार्ग भी थे। किन्तु तब महलों की ओर जाना वर्जित था। महलों के अन्त में नगर की नगरानी के लिए वुर्ज था, जो अब भी टूटी-फूटी अवस्था में खड़ा है। जसरोटा महलों के साथ ही एक बाग भी था जो अति रमणीक था। किन्तु अब सब नष्ट हो चुका है न बाग है, न फल हैं और न फूल हैं केवल एक राजवाग बचा है जो बाग से एक गाँव में बदल चुका है।

जसरोटा के ऐतिहासिक स्मारक

जसरोटा ऐतिहासिक नगर है, अतः इस नगर में कई ऐतिहासिक

स्मारक बिखरे पड़े हैं जिन में निम्न उल्लेखनीय हैं:-

दिल्ली दरवाजा:- यह जसरोटा का प्रवेश द्वार है। दक्षिणोन्मुख यह द्वार 4.65 मीटर चौड़ा और अनुमानत: साढ़े सात मीटर ऊँचा है। यह प्रस्तर शिलाओं से निर्मित है। इसका निर्माण राजा ध्रुवदेव ने कीर्ति स्तम्भ के रुप में करवाया।

राजा हीरासिंह का महल:- यह महल किला नुमां है। इसमें प्रवेश के लिए दक्षिणोन्मुख एक डयोढ़ी है जिस की ऊँचाई लगभग दस मीटर है। इसके दायें बायें नानकी ईटों की एक लम्बी दीवार है। डयोढ़ी के साथ प्रहरियों के कक्ष हैं। उनके आगे ऊँचे स्थान पर यह महल निर्मित है। इस महल की ओर एक विधि जाती है। सरोवर महल के सहन के नीचे है। यह वर्गाकार है और सुन्दर अट्टारिकाओं से सुसज्जित है। सरोवर से एक विथि असला खाना की ओर जाती है। असला खाना की दीवारें मोटी और सुदृढ़ हैं। महल में प्रवेश के लिए तीन मेहरावी द्वार हैं, जो सुन्दर स्तम्भिकाओं से सुसज्जित हैं। इनके साथ एक-एक बड़ा कक्ष है और उसके दायें-वायें कोठरियाँ हैं। इन कोठरियों में कई भूमिगत कमरे हैं जिन की दीवारें जीर्ण-शीर्षावस्था में हैं। महल की दीवारों में चूना-सुर्खी का बज्रलेपन है। यह महल एक ओर से तिमंजिला और दूसरी ओर से दोमंजिला है। इसके कक्षों में पच्चीकारी की गई है। दीवारों में भीति चित्रों के लिए पैनल तो हैं किन्तु चित्र गायव हैं। इस महल का मुख-भाग 21 मीटर चौड़ा है।

पुराना महल:- यह महल हीरा सिंह के महल से आधा कि.मी. दूर है। वास्तव में यही जसरोटिया राजाओं की ऐतिहासिक निशानी है। यह महल दक्षिणोन्मुखी है। दुमंजिले इस महल का शिल्प राजस्थानी लगता है। यह महल कलात्मक दोहरे स्तम्भों, स्तम्भिकाओं तथा पल्लवाकार द्वारों से सुसज्जित है। इसमें सहन के साथ बना जो महाकक्ष है उसे दीवार खाना कहते हैं। महल में दूसरी मंजिल में जो कक्ष बने थे वे धराशायी हैं।

जगन्नाथ मंदिर:- यह मंदिर नगर के मध्य में है। एक सुदृढ़दीवार से घिरा है। इसके भीतर तीन कक्ष हैं। मध्य का कक्ष बड़ा है और उसके दायें-बायें बने कक्ष छोटे हैं। मंदिर में अब कोई मूर्ति नहीं है। पुरावेताओं का मत है कि यह भवन मंदिर नहीं हो सकता।

इसकी बनावट असलाखाना जैसी है। किन्तु असला खाना नगर के मध्य में नहीं होता, अत: इस भवन पर शोध की आवश्यकता है।

जसमेर गढ़ (हीरा नगर)

जम्मू से अनुमानत: 65 कि.मी. पूर्व दक्षिण में और कठुआ से 24 कि.मी. पश्चिम दक्षिण में डुग्गर का एक ऐतिहासिक नगर था- जस मेर गढ़। लोकश्रुति है कि पंजाब के मिसल सरदारों ने जब जसरोटा पर एक के बाद एक आक्रमण शुरु किए तो जसरोटा की सुरक्षा के लिए जसरोटा के सामंत जसमेर देव ने जसरोटा और पंजाब की सीमा पर एक नगर बसाया जिसका उसने नाम रखा- जसमेरगढ़। नगर के ऊपरी भाग में एक छोटे से मिट्टी के टीले पर सामंत ने दुर्ग की भी रचना की किन्तु सन 1812 के बाद महाराजा रणजीत सिंह की खालसा सेना ने जसरोटा पर अधिकार करने के लिए इस किले पर भी इतने जोरदार हमले किए जिससे नगर में आग लग गई और किला नष्ट-भ्रष्ट हो गया। जसमेर गढ़ के लोग अपने प्राण बचाने के लिए बनों में जा छुपे।

सन 1836 ई. में महाराजा रंजीत सिंह ने जसरोटा की जागीर अपने प्रधानमंत्री ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह को प्रदान की तो हीरासिंह की ओर से कुछ अधिकारी इस जागीर में घूमें फिरे और उन्होंने हीरा सिंह को सलाह दी कि जसरोटा की रक्षा के लिए जसमेरगढ़ दुर्ग की मुरम्मत आवश्यक है, अत: दुर्ग के पुर्नोद्धार के साथ-साथ नगर को भी दोवारा बसाया जाए। किन्तु नगर जलकर राखा हो चुका था और मकान खंडहरों का ढ़ेर थे उन्हें हटाना और साफ करना सम्भव नहीं था, अत: हीरासिंह ने पुराने शहर से 2 कि.मी. पूर्व की ओर स्थित बन को साफ कराया और वहाँ उसने अपने नाम पर एक नया नगर बसाया जिसका नाम रखा- हीरानगर। समझा जाता है कि यह नगर सन 1840 के लगभग आबाद हुआ। पहले इस में थोड़े मकान बने किन्तु जसरोटा के उजड़ने के बाद बहुत से लोगों ने यहीं मकान के लिए ज़मीनें खरीदी और मकान बना कर रहने लगे। देखते ही देखते गाँव से हीरा नगर एक उपनगर बन गया। महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल में जब कठुआ को जसरोटा के स्थान पर जिला का मुख्यालय बनाया गया तो हीरानगर को उसकी एक तहसील बनाया। तहसील बनने के बाद यह नगर चारों ओर से फैला और इसका विस्तार दो कि.मी. तक हुआ। सन 2001 में इस कस्बा की जनसंख्या

8437 थी।

हीरानगर संरचना की दृष्टि से एक मैदानी शहर लगता है। इसकी मुख्य सड़क के साथ-साथ सरकारी कार्यालय हैं तथा लड़कों का हायर सैकंड्री स्कूल है। नगर मुख्य सड़क से तीन सौ मीटर पीछे है। पहले नगर जाने के लिए गलियाँ थी किन्तु अब यह सड़क से जुड़ गया है। नगर में एक लम्बा चौड़ा और खुला बाज़ार है जिसके दोनों ओर बड़ी-बड़ी दूकाने हैं। बाज़ार के मुख्यचौक में एक चबूतरा तथा छोटा सा मैदान है। राम लीला इसी मैदान में होती है। अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी यहीं होता है। इसी चौक से गाँव की गलियाँ आरम्भ होती हैं। जो पूर्व-पश्चिम और दक्षिण की ओर जाती हैं। नगर में कई कुएँ और मंदिर हैं। लोग स्नान करके मंदिरों में पूजा अर्चना करने जाते हैं। धार्मिक वृति के होने के कारण ईश्वर भीरु हैं। इस नगर के विघायक तथा पूर्व वित मंत्री गिरधारी लाल डोगरा ने इस नगर तथा लोगों के अर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक विकास के लिए सराहनीय योगदान दिया है। इस नगर के लोगों का जीवन स्तर कई उपनगरों के लोगों से श्रेष्ठ है। लोग व्यावहारिक हैं और उन्नति करना जानते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय नौकरी, व्यापार, ठेकेदारी, दुकानदारी तथा कृषिकर्म है। इनका सांस्कृतिक जीवन डोगरों जैसा है और ये ठेठ डोगरीबोलते हैं। संतराम 'संत' हीरानगर के डोगरी के साधक थे।

हीरानगर में कई दर्शनीय स्थल भी हैं जिन में उल्लेखनीय हैं:- किला जसमेर गढ़, झांडी का बाग (जिसे छोटा कश्मीर भी कहते हैं) भैय्या का शक्ति मंदिर, राजपुरा का रघुनाथ मंदिर, घगवाल का नृसिंह मंदिर, त्रेली का गंगा माता मंदिर तथा मढ़ीन का प्राचीन शिव मंदिर। यहाँ एक शहीदों का स्मारक हैं जहाँ मेला लगता है।

हीरानगर एक विकासान्मुख शहर है।

राजपुरा

हीरानगर के पश्चिम में सात कि.मी. घगवाल से 2 कि.मी. झांडी से 3 कि.मी. की दूरी पर डुग्गर का एक और ऐतिहासिक नगर है जिसे राजपुरा नाम से अभिहित किया जाता है। अब तो यह एक गाँव सा दिखाई देता है

किन्तु जसरोटिया शासनकाल में इस नगर को विशेष महत्व प्राप्त था। कहते हैं कि उन दिनों जसरोटिया राजाओं ने सीमा पर दृष्टि रखने के लिए एक सैनिक शिविर भी यहाँ स्थापित किया था। जन श्रुतियों के अनुसार राजपुरा में हाथी भी रखे जाते थे। यहाँ आज राजपुरा का स्कूल है वहाँ पहले जसरोटिया राजाओं का महल था।

इस गाँव में अब मुख्य रुप से जसरोटिया राजपूत, मसनोतरे, बदियाल, सांगड़े अधिक संख्या में रहते हैं। हरिजन भी हैं किन्तु मुसलमान 1947 के बाद पकिस्तान चले गए हैं। लोगों का जीवन निर्वाह कृषि पर है और वे छोटे-मोटे काम धन्धे करके अपनी जीविका चलाते हैं।

जहाँ तक राजपुरा का प्राचीन इतिहास है उसे ढूढ़ने और खोज करने की आवश्यकता है। लोक परम्परा के अनुसार इस क्षेत्र का आदि शासक नाग राजा भव्रुवाहन था। उसके नाम की यहाँ एक प्राचीन बावली भी है जिसमें पर्व और त्योहारों के अवसर पर लोग स्नान करते हैं। इस बावली के साथ ही गंगा माता का एक प्राचीन और एक नव निर्मित मंदिर है। इस स्थान को त्रेली नाम से पुकारा जाता है।

राजपुरा के पश्चिम में अरंगल और मटोर दो प्राचीन ऐसे स्थान हैं जिनके विषय में कहा जाता है कि वहाँ प्राचीन नगर आवाद थे जो किसी कारण नष्ट हो गए। अरंगल एक छोटी सी पहाड़ी पर है और मटोर भी उसी के पास है। यहाँ पुराने भवनों के पुरावशेष हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि जसरोटिया राज्य की स्थापना से भी वे पहले के हैं।

इसी क्षेत्र में जो नगौर ग्राम है वहाँ भूमितल से बीस फुट नीचे से एक पुराना कुआँ मिला और उसके निकट से मिट्टी के वर्तन भी मिले हैं। लगता है कि यहाँ प्राचीन नगर सोया हुआ है जिसे उत्खनन से जगाया जाना चाहिए।

राजपुरा के दर्शनीय स्थलः-

राममंदिर-नागर शैली में ऊँची जगती पर बना यह उच्च-शिखर का मंदिर महाराजा प्रतापसिंह की निर्मिति है। कहते हैं कि पहले राजपुरा बहुत ही घना ग्राम था। महाराजा ने यहाँ मंदिर निर्मित करके लोगों का हृदय जीत लिया।

इस मंदिर के अन्दर राम, सीता और लक्ष्मण की मूर्तियाँ सिंहासन पर संप्रतिष्ठित हैं। मंदिर शोभा शाली है। इसके परिसर में और भी कई कक्ष हैं।

नृसिंह मंदिर घगवालः- वास्तव में राजपुरा का ही विकसित रुप घगवाल है। राष्ट्रीय राजपथ पर स्थित होने के कारण इसे अधिक महत्व मिला। राजपुरा के ही लोग यहाँ आ बसे। घगवाल में सबसे बड़ा आकर्षण नृसिंह जी का मंदिर है जो एक विशाल सरोवर के पूर्वी तट पर निर्मित है। यह एक दर्शनीय मंदिर है। एक ऊँचे चबूतरे पर बने इस मंदिर के अलंकृत गर्भगृह में भगवान नृसिंह की मूर्तियाँ हैं। अब मंदिर के साथ एक स्कूल भी है। मंदिर शिखर हीन है और इस का छत सपाट है। इस मंदिर में बर्ष में रथ बदलने पर दो मेले आयोजित होते है जिस में हज़ारों की संख्या में श्रद्धालु भाग लेते हैं।

झांडी का बागः- यह छोटा कश्मीर हीरानगर और घगवाल के मध्य में अवस्थित है। जिन दिनों जसरोटा में देवी सिंह महाराजा गुलाबसिंह की ओर से प्रमुख प्रशासक थे, तभी उन्होंने गिलगित क्षेत्र में प्राप्त विजयों के उपलक्ष्य में अपने गाँव में यह स्थान विकसित किया। यहाँ बड़ी-बड़ी हवेलियाँ और पक्की अट्टालिकायें हैं जिन्हें देखकर पर्यटक दंग रह जाता है। झांडी में एक पुराना महल एक शिव मंदिर और एक सुन्दर बाग है। यहाँ पानी का चश्मा भी है जो प्राकृतिक है।

नन्दक (साम्बा)

स्थितिः- डुग्गर का यह बहुचर्चित उपनगर जम्मू से अनुमानतः पच्चास किलोमीटर की दुरी पर बसन्तर नदी के पूर्वीतट पर एक पहाड़ी टीले सहित तीन किलोमीटर क्षेत्र में बसा है। इसके उत्तर में छोटे-छोटे पहाड़ हैं जिस कारण इस नगर का प्राकृतिक सौंदर्य अनुपम लगता है।

नामकरणः- यह नगर नन्दनी पहाड़ियों के दामन में बसने के कारण नन्दक नाम से प्रसिद्ध हुआ। माना जाता है कि प्राचीन नगर चीची माता की पहाड़ी के आस-पास बसन्तर के तट के साथ बसा था किन्तु बाढ़ और तूफानों के कारण लोगों ने तंग आकर स्थान बदल लिया और वे महेश्वर मंदिर के मैदान में जा बसे। तब तक इसका नाम नन्दक ही प्रचलन में रहा। किन्तु

बाद में जब यह नगर मुसलमानों के आक्रमण से बचने के लिए पहाड़ी पर बसा तो इसका नाम सांबा पड़ा। सांभ कौन था? जिसने नया नगर बसाया। कईयों का मत है कि इस नगर का संस्थापक 'साम्भ' कोई अन्य नहीं, भगवान कृष्ण का पोता था। उसे कुष्ट रोग हो गया था अत: किसी ऋषि के कहने पर वह बसन्तर नदी में नहाने आया था। कहते हैं कि जब वह ठीक हो गया तो उसने अपने नाम पर 'साम्भ' नगर बसाया जो बाद में बदलते-बदलते सांबा हो गया। इस नगर का अवलोकन करने से यह नहीं लगता कि यह महा-भारत कालीन नगर है।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि:- जनश्रुतियों के अनुसार 'नन्दक' मूल रुप से नाग राजाओं की राजधानी थी। यह राज्य बसन्तर नदी से लेकर मानसर झील से भी कुछ आगे तक परिव्याप्त था। नागवंश का अन्तिम राजा गौरसेन था। उसके शासनकाल में बलवन के पुत्र महमूद ने इस नगर पर आक्रमण किया जिस कारण राजा गौरसेन भागकर मानसर की ओर चला गया।

मुस्लिम इतिहास में उल्लेख मिलता है कि सन् 1294 में 'साम्भ' नामक छोटे नगर पर महमूद ने आक्रमण किया और उसे जीतने के बाद कैह्लदेव (1294-1320 ई. अनुमानित) को जागीर में दे दिया। नन्दक का नाम 'साम्भ' क्यों पड़ा इसका तो पता नहीं चलता किन्तु इतनी बात मानी जा सकती है कि सांबा क्षेत्र में कभी नाग संस्कृति का प्रभाव था। 'चीची' एक नागदेवी है और 'मानसर' नागदेवता। इन दोनों का नंदक राज्य में होना यह प्रमाणित करता है कि इस क्षेत्र में नाग पूजा होती रही है।

'सम्वयाल वंश और सांबा' पुस्तक के लेखक डॉ. जगदीप सिंह के अनुसार राजा केह्लदेव को राजसुख भोगते देख त्रिकोट के राजा मल्लदेव को अच्छा न लगा। उसके अनुसार सांबा जसरोटियों का था और वह उन्हीं के वंश का था, अत: उससे सांबा पर हल्ला बोला और इसे अपने अधिकार में ले लिया। मल्लदेव के वंशज साम्बा में रहने के कारण सम्बेयाल कहलाये। मल्लदेव के वंशजो ने साम्बा में कोई बाईस मंडियाँ बसाई जिस कारण सांबा का विस्तार दूर-दूर तक हुआ।

साम्बा का उल्लेख मुगल इतिहास में भी मिलता है। डुग्गर के राजाओं ने जब अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसका दमन करने मुगल

सेना साम्बा भी आई और उसने इस पर अधिकार करने के बाद इसके चार कोस दूर एक किला भी बनवाया। सन् 1822 ई. में साम्बा राजा सुचेत सिंह को एक जागीर के रुप में मिला। उसने यहाँ एक किला बनवाया। सन 1844 में राजा सुचेत सिंह की हत्या के बाद सांबा जम्मू राज्य का भाग बना। महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल में इसे तहसील का मुख्यालय बनाया गया। आजादी के बाद लोगों ने इसे जिला बनाने की माँग की तो सरकार ने इसे 'उपजिला' बना दिया। जिस कारण सांबा में दर्जनों की संख्या में सरकारी कार्यालय खुले और इसका विकास हुआ। अब यह नगर एक जिता का मुख्यालय बनने जा रहा है।

नगर संरचनाः- साम्बा एक छोटी सी पहाड़ी के ऊपर बसा एक नगर है। इसकी संरचना अजटिल किन्तु सरल है। नगर में प्रवेश करते ही सबसे पहले किले की ऊँची-ऊँची दीवारें दिखाई देती हैं। कहते हैं कि यहाँ यह किला है, वहाँ पहले नागराजा का महल था। वर्तमान महल राजा सुचेत सिंह द्वारा निर्मित है। यह महल दर्शनीय है। अब यहाँ बच्चों का विद्यालय है। महल के साथ छोटा सा मैदान है। इस मैदान के साथ ही शुरु होता है सांबा का बाज़ार गलियाँ और गलियों पर आधारित मुहल्ले। लगभग तीन किलो मीटर में फैले इस नगर में पहले बाज़ार और गलियों में पत्थर लगे थे, अतः इसे पत्थरों वाला शहर भी कहते थे। किन्तु अब घर बाज़ार और गलियाँ पक्की हैं। शहर ढलान में है, अतः साफ सुथरा लगता है। तहसील मुख्यालय के अतिरिक्त यहाँ कई अन्य सरकारी कार्यालय खुल चुके हैं जिस कारण इसका विकास बड़ी तीव्रता से हो रहा है। सन 2001 में इस उपनगर की जन संख्या 5914 थी।

जन-जीवनः- कहते हैं कि सांबा सम्बेयालों का है, यह बात सही भी है। इनकी बाईस मंडियाँ हैं। इन्हें अब हम बाईस मुहल्ले भी कह सकते हैं। इन मंडियों के निवासी राजपूत हैं जो स्वभाव से उग्र किन्तु वीर योद्धा और दानी भी हैं। ब्राह्मणों में मिश्र बाहर से आए हैं शेष स्थानीय हैं। महाजन, खत्री, हरिजन भी यहाँ बसते हैं। कुछ घर बौद्ध भी हैं। किन्तु इन सबमें भाईचारा तथा सहयोग की भावना है। सांबा कभी शींवा जाति के लोगों का गढ़ था। वे राजा सुचेत सिंह के समय बाहर से बुलाये गए थे। उनका काम था- खड्डियाँ चलाना। नगर कपडा उद्योग के लिए प्रसिद्ध था। रेशमी काम यहाँ आज भी हो रहा है। लोग परिश्रमी हैं। जीवन शैली डोगरा है। मुख्य व्यवसाय

सिपाही गिरी, व्यापार, दुकानदारी, नौकरी और ठेकेदारी है। लोगों की आर्थिक स्थिति सामान्य है। सांबा के लोगों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये स्वाभिमानी हैं और इनका दमन नहीं किया जा सकता।

सांबा के तालाब और कुंए:- साँबा तालाब और कुओं के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पानी की तंगी के कारण सांबा निवासियों ने यहाँ गली-गली-मुहल्ले-मुहल्ले में कुँए खोदे हैं और तालाबों का निर्माण किया है। साँबा का सबसे बड़ा तालाब महेश्वर का तालाव है। इसे पवित्र माना जाता है। इसके अतिरिक्त मग्याल तालाब, बुधवानी तालाब, सुनारकी तालाब, रौल की, तालाब, त्रिलोक तालाब, बन्न तालाव, राय ज़ादों का तालाब अतिप्रसिद्ध हैं। इसी पुकार चन्नन खूह, किले वाला खूह, कैह्ली वाला खूह, हिरखैदा खूह्, देई वाला खूह, फातो दा खूह्, मंदेहरे का खूह् तथा मसीत का खूह प्रसिद्ध हैं।

मंदिर:- सांबा में सबसे प्राचीन मंदिर महेश्वर है। यह नागर शैली में हैं और इसमें एक प्राचीन शिलालेख है। इस के अतिरिक्त चौटाला मंदिर चर्तुभुज मंदिर, रकुआला वाला मंदिर तथा हनुमान मंदिर प्रसिद्ध हैं। इनके इलावा कई छोटे-बड़े मंदिर मंडियों में भी हैं। इन मंदिरों में सबसे बहुचर्चित मंदिर चीची माता मंदिर है। इस मंदिर परिसर में कई भवन, कई विशाल कक्ष तथा कई अन्य भवन हैं। महाजनों की कई जातियाँ चीची माता को अपनी कुल देवी मानती हैं। बच्चों के मुंडन संस्कार भी वे यहीं सम्पन्न करते हैं अतः इस मंदिर में सारा बर्ष श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती है।

दर्शनीय स्थल:- पर्यटकों के लिए सांबा में देखने योग्य स्थान बसन्तर नदी के तट पर रानियों की समाधियाँ, महेश्वर तालाब और मंदिर, चीची माता मंदिर, नड्ड के निकट ऐतिहासिक महत्व के भरत पुर और मौहर गढ़ के किले हैं। एक किला गढ़ मंडी में भी है। मौहर गढ़ के किले संख्या में चार हैं और ये मुस्लिम वास्तुकला के अति सुन्दर भवन हैं। सैकड़ों की संख्या में शोधकर्ता, इतिहासकार, कलाप्रेमी इन किलों को देखने जाते हैं।

रामगढ़

डुग्गर का यह सीमावर्ती उपनगर साम्बा से 15 कि.मी. तथा विजय

पुर से केवल चार कि.मी. दक्षिण में बसा है। यह समतल मैदान में स्थित है। अतः इस की परिगणना मैदानी नगर के रुप में की जाती है।

नामकरणः- रामगढ़ का प्राचीन नाम 'खिरड़ी' था। यहाँ घास-फूस के पच्चीस-तीस झोंपड़े थे। महाराजा रणवीर सिंह (1857-87) ने अपने शासन काल में यहाँ एक सीमावर्ती दुर्ग बनाया जिसका नाम उसने अपने मझले पुत्र राम सिंह के नाम पर रामगढ़ रखा। समझा जाता है कि इस किले का निर्माण 1860 ई. के लगभग किया गया। पहले इस स्थान को खिरड़ी रामगढ़ कहते थे किन्तु बाद में केवल रामगढ़ का ही प्रचलन रहा। **जन संख्या :-** 2001 मं इस उपनगर की जन संख्या 5020 थे जिस 2820 पुरूष और 2200 महिलाएँ थी।

नगर की संरचनाः- रामगढ़ मैदानी नगर है। अतः इसकी संरचना भी पंजाब की भाँति मैदानी नगर के रुप में हुई है। यहाँ एक छोटा सा बाज़ार है जिसमें लगभग सौ दुकानें हैं। दूकानों के साथ ही कुछ मकान हैं। कुछ मकान गलियों में या बाज़ार से दूर भी हैं। रामगढ़ की संरचना एक बड़े ग्राम के समान है। यहाँ उन लोगों की संख्या अधिक है जो सन् 1947, 1965 और 1971 के युद्धों के कारण शरणार्थी रुप में इस क्षेत्र में सरकार द्वारा बसाये गए हैं। इस उपनगर में जाटों की संख्या अधिक है। इन में सिक्ख-जाट भी समाहित हैं। उपनगर में सिक्खों के दो गुरुद्वारे तथा हिन्दुओं के भी दो मंदिर हैं। रामगढ़ ऐतिहासिक उपनगर है, अतः पुरातत्व, की दृष्टि से इसके आस-पास का क्षेत्र महत्व पूर्ण है।

रामगढ़ का किलाः- यह किला रामगढ़ के दक्षिण में एक ऊँचे टीले पर निर्मित है। किले के सामने एक खुला मैदान है जिस में शक्ति का मंदिर है। यह मंदिर पहले किले के भीतर था और बाद में चौगान में स्थानान्तरित किया गया। किले की दीवारें टेढी-मेढी और तिरछी हैं। इसमें जो अट्टालक हैं वे छत-हीन हैं। मंदिर की योजना में खाई भी है जो बहुत गहरी नहीं है। इसके भीतर जो कक्ष थे वे अब धराशायी हैं। महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में इस किले को पहले कैद खाना और बाद में थाना बनाया गया। अब यहाँ सुरक्षा दल का एक शिविर है।

बाबा बुद्धिगिरि का आश्रमः- यह आश्रम नगर के पूर्व में है और

चहारदीवारी से घिरा है। आश्रम सुंदर और दर्शनीय है। आश्रम में कई कक्ष हैं जिन में यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था है। इसके साथ ही एक विकसित वाटिका है। इस आश्रम का संचालन बावा सेवागिर ने महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में किया। कहा जाता है कि महाराजा अपनी रानियों के साथ इस संत के दर्शन करने आए थे। जन श्रुति है कि उनकी चिकित्सा से उन की पहली रानी सिबा पुत्रवती बनी। सेबा गिर के बाद रामगिर और उनके बाद बावा बुद्धिगिरि इस आश्रम के मंहत बने। लोक सेवा इस आश्रम का लक्ष्य है।

अवताल- डुग्गर का यह रमणीक और आकर्षक गाँव रामगढ़ से तीन कि.मी. दूर है। यह भी जाटों का गाँव है। इसमें कुल 175 घर हैं जिन में 130 घर जाटों के और 45 घर हरिजनों के हैं। गाँव में दो गुरुद्वारे और तीन कुएँ हैं। अन्न-उत्पादन की दृष्टि से गाँव चर्चा में रहा है।

अवताल मंदिरः- अवताल का विशेष आकर्षण गाँव में निर्मित रघुनाथ मंदिर है जो नागर शैली में है। मंदिर का उच्च-शिखर दूर-दूर तक दिखाई देता है। मंदिर की योजना में गर्भगृह-शिखर, प्रदक्षिणा पथ और खुला प्रांगण है। मंदिर परिसर के निकट कई कक्षों के पुरावशेष बिखरे पड़े हैं। भारत-पाकिस्तान की लड़ाईयों के कारण इस मंदिर को कई बार क्षति पहुँची है। यह मंदिर धर्मार्थ ट्रस्ट के संरक्षण में है।

भामु चक्क का मंदिरः- डुग्गर का यह अद्भुत मंदिर अवताल से डेढ़ किलो मीटर दक्षिण में निर्मित है। इसे भामुशाह का मंदिर भी कहते हैं। नौशिखरों वाला यह मंदिर चारों ओर से चहार दीवारी से घिरा है। इस के अन्दर और प्रदक्षिणा-पथ में जो भीति-चित्र बने हैं, वे प्रत्येक दृष्टि से उच्च कोटि के हैं।

भाभुचक्क में सलारिया मुसलमानों के सैकड़ों की संख्या में घर थे। सन 1947 में वे पाकिस्तान चले गए। तब से यह गाँव और मंदिर खाली पड़े हैं।

रख-अवतालः- यह स्थान राजा सुचेत सिंह के संरक्षण में था। उसका एक सैनिक दल भी यहाँ रहता था। राजा सुचेत सिंह ने यहाँ एक तोरण

और भवन बनाया जिसके खंडहर आज भी बिखरे पड़े हैं।

नंगे का मंदिरः- यह मंदिर रामगढ़ से चार कि.मी. दूर नंगा गाँव में है। राधाकृष्ण को समर्पित यह मंदिर दर्शनीय है।

विश्नाह

डुग्गर का यह मैदानी उपनगर जम्मू के पूर्व दक्षिण में 21 कि.मी. की दूरी पर बसा है। वासमती के कारण इस की प्रसिद्धि पूरे उतर-भारत में है। विश्नाह जिला जम्मू की तहसील है, अतः यह उपनगर तहसील का मुख्यालय भी है।

नामकरणः- इस नगर के नाम करण के पुष्ट और स्वीकार्य कारण नहीं मिले हैं। कहा जाता है कि यह दो शब्दों के जोड़ से बना है और वे हैं- विश + नाह। विश का अर्थ है वैश्य और नाह का अर्थ है किनारा अर्थात वैश्यों से बंधा हुआ नगर। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं - वैश्य नगर। इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है- वैश्य नगरी अर्थात् व्यापारियों की मंडी। विश्नाह को सदियों से एक मंडी माना जाता रहा है, अतः इसे 'विश्नाह' नाम से अभिहित किया जाता है। एक मत यह है कि इस उनगर का सस्थापक डोगरा काल मं चर्चित विशना नामक एक सेना नायक था। इसे यह क्षेत्र एक जागीर के रूप में मिला था।

इतिहासः- विश्नाह का कोई स्थानीय इतिहास नहीं है। कहा जाता है कि यह सदियों से जम्मू के साथ जुड़ा है। अतः जो जम्मू का इतिहास है, वही विश्नाह का इतिहास है। विश्नाह में एक प्राचीन महलनुमा भवन है जिस के विषय में कहा जाता है कि वह सरदार सद्धा सिंह का है। बताया जाता है कि सद्धासिंह विश्नाह का निवासी था। वह बाल्यावस्था में अनाथ हो गया तो उसकी विलादरी के लोगों ने उसकी माँ को इतनी यातनाएँ दी कि वह अपने बच्चे को लेकर ऐमनावाद चली गई। वहाँ उसे एक प्रतिष्टित सरदार परिवार का संरक्षण मिला जिसने उसके लड़के को पढ़ा लिखा कर सेना में भर्ती कराया। लड़का योग्य निकला। महाराजा रंजीत सिंह की सेना में सेवारत रहते उसने बहुत उन्नति की और वह उच्च पद पर आसीन हुआ। वह अपनी माँ को लेकर विश्नाह आया और उसने यहाँ यह महल वनवाया जो आज भी सिर

ऊँचा किये उसकी कीर्ति गाथा सुनाता है। सरदार सद्धा सिंह की एक हवेली गोपाल मंडी लहौर में और दूसरी झूठा बाज़ार अमृतसर में थी। उसका पुत्र काह्न सिंह विश्नाह में भी आता जाता रहा किन्तु उसका पोता प्रताप सिंह क्रूर स्व़भाव का था जिस कारण उसका टकराव लोगों से होता था कहते हैं कि सरदार सद्धा सिंह की स्थिति विश्नाह में एक जागीरदार की सी थी और सभी लोग उस का मान और सम्मान करते थे। **जन संख्या :-** सन 2001 में इस की जनसंख्या 18,196थी।

जन-जीवन:- विश्नाह एक समृद्ध उपनगर है। यहाँ उतम कोटि की वासमती की मंडी है। विश्नाह का चावल विदेशों में भी भेजा जाता है। इसी कारण विश्नाह का किसान खुशहाल है। विश्नाह व्यापार की भी मंडी है। अतः यहाँ के व्यापारी, दुकानदार, मिलों के स्वामी सभी समृद्ध तथा सम्पन्न हैं। प्रायः अधिकांश लोगों के मकान पक्के हैं। जीवनोपयोगी सभी वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध हैं। यहाँ ब्राह्मण, महाजन, जाट, राजपूत, हरिजन, वटवाल सुखपूर्वक रहते हैं। ब्राह्मणों में विश्नाह के सढोत्रे आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न हैं। ये भूपति हैं और सरकारी नौकरियाँ और व्यापार भी करते हैं।

दर्शनीय स्थल:- मुरारिचक्क का मंदिर:- विश्नाह क्षेत्र में सबसे प्रसिद्ध मंदिर मुरारि चक्क में निर्मित रघुनाथ मंदिर है जो दुमंजिला है। इस मंदिर का निर्माण जम्मू-कश्मीर के प्रधान मंत्री ज्वाला सहाय के पौत्र विशनदास ने सम्वत 1898 तदानुसार सन् 1842 ई. में करवाया। इस मंदिर की विशेषता यह है कि पूरा मंदिर भीति-चित्रों से अंलकृत है। नागर शैली में बने इस मंदिर के गर्भगृह में राम,सीता और लक्ष्मण की जो मूर्ति है, वह दर्शनीय है।

बौद्ध-विहार:- तहसील जम्मू में विश्नाह ही ऐसा नगर है यहाँ तिमंजिला बौद्ध-विहार है। यह विहार बस अड्डा के निकट स्थित है। इस में कई भीति-चित्र हैं जिन में महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन को भिन्न-भिन्न रुपों में दर्शाया गया है। इसमें प्रतिष्टित महात्मा बुद्ध की मूर्ति दर्शनीय है। मंदिर के पार्श्व में बावा साहव अम्बेडकर की विशाल मूर्ति भी अति मोहक है। इस विहार का निर्माण सन् 1965 ई. में स्थानीय बौद्ध-अनुयायियों ने करवाया।

रिहाल के मंदिर- विश्नाह का रिहाल ग्राम विश्नाह में एक सांस्कृतिक केन्द्र के रुप में प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इस ग्राम में पहले एक किला भी था जो अब धराशायी है। अब यहाँ मंदिरों का एक समूह है जो श्रद्धालुओं की आस्था का प्रतीक है। यहाँ विष्णु मंदिर के अतिरिक्त एक पुराना शिव मंदिर है।

श्री प्रताप सिंह पुराः- यह स्थल पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस का प्राचीन नाम 'ललियाना का टीवा' था। इसके नीचे एक नाला प्रवाह मान है। इस टीवा की ज़मीन के नीचे से पुरा तत्व महत्व की कई वस्तुएँ मिली हैं जिन में मिट्टी के वर्तन भी हैं। कहा जाता है कि वहाँ पहले एक बड़ा नगर आवाद था जो भूचाल के कारण नष्ट हो गया। बाद में इसे वीरपुर के चाड़कों ने आवाद किया। महाराजा प्रतापसिंह ने इसका नाम प्रतापसिंह पुरा रखा किन्तु यह एक नगर के रुप में विकसित नहीं हो सका।

पुरमंडल

डुग्गर का यह सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक स्थल जम्मू के पूर्वोतर में पौराणिक देविका नदी के दोनों तटों में बसा है। इस पावन स्थल का उल्लेख पद्मपुराण में 'पुर' नाम से हुआ है। माना जाता है कि पुर और मंडल दोनों ग्रामों से मेल से पुरमंडल शब्द संयोजित हुआ है। मंडल से पुर 7 कि.मी. सड़क के मार्ग से है। मंडल जम्मू से 40 कि.मी. दूर है।

पुरमंडल को डुग्गर की काशी भी कहते हैं। महाराजा रणवीर सिंह ने यहाँ पंचकोशी यात्रा का प्रावधाान भी किया था डोगरा राजाओं ने इस स्थान के महत्व को समझते हुए देविका तट के साथ-साथ मंदिरों की जो श्रृंखला आरम्भ की उससे यह स्थान वास्तव में एक महान तीर्थ बना।

पुरमंडल में मंदिरों का क्रम इन्द्रेश्वर मंदिर से प्रारम्भ होता है जो पुर मंडल से 6 कि.मी. की दूरी पर पहाड़ी पर स्थित है। यह मंदिर नागर शैली में है। इस मंदिर के साथ ही तीन विशाल मानव निर्मित गुफाएँ हैं जो कई कक्षों पर आधारित हैं। पुरमंडल की देविका यहीं से निसृत है। इसके बाद छोटे-छोटे कई और मंदिर भी हैं किन्तु विशेष रुप से उल्लेखनीय मंदिर उमापति महादेव का है जिस का निर्माण महाराजा गुलाबसिंह ने जम्मू का राजा बनने के बाद करवाया। यह भव्य विशाल और आकर्षक मंदिर है। इस मंदिर

परिसर में छोटे-छोटे और भी कई दर्शनीय मंदिर हैं।

पुरमंडल में उमापति महादेव के अतिरिक्त रणवीरेश्वर, अभिमुक्तेश्वर, वीरेश्वर, खड्गेश्वर, विल्केश्वर, भूतेश्वर, महा मण्डलेश्वर आदि मंदिर हैं। इन मंदिरों का क्रम उतर वाहिनी तक चलता है और देविका तट पर जो अन्य मंदिर दृष्टिगत होते हैं वे हैं:- काशीश्वर महादेव, गयेश्वर महादेव, प्रागेश्वर महादेव, और विष्णु का गदाधर मंदिर। गदाधर मंदिर सब मंदिरों में विशाल है और यह चौसठ स्तम्भों पर खड़ा है। इस मंदिर परिसर में दशावतारों के मंदिर भी हैं।

पुर मंडल से उतर वाहिनी तक के बीच एक नन्दकेश्वरी मंदिर भी उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त महाराजा रणवीर सिंह ने उतर वाहिनी में जिस संस्कृत महा विद्यालय की संस्थापना की थी उसके खंडहर भी उतर वाहिनी में द्रष्टव्य हैं। पुरमंडल से उतरवाहिनी तक पाँच गुफा मंदिर और भी हैं जो अपना अलग महत्व रखते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी पुरमंडल का विशेष महत्व रहा है। कहते हैं कि किसी वेनीदत राजा ने यह नगर बसाया और मंदिर का निर्माण किया। किन्तु इस राजा का उल्लेख किसी ऐतिहासिक ग्रंथ में नहीं मिलता। कहा जाता है कि अकबर का सेनापति महानसिंह, गुरुगोविन्द सिंह, महाराजा रणजीत सिंह और उनकी पत्नी तथा राजकुमार भी इस तीर्थ में स्नान करने आ चुके हैं।

डोगरा इतिहास में उल्लेख मिलता है कि मिंया गुलाबसिंह के दादा की पुरमंडल जागीर थी और गुलाब सिंह पुरमंडल में आता जाता रहता था। यही कारण है कि जब वह जम्मू का राजा बना तो सबसे पहले वह यहीं आया और उसने इस तीर्थ को विकसित तथा प्रचारित किया। डोगरा राजाओं के शासनकाल में देविका तट के साथ-साथ 47 भव्य और बड़ी-बड़ी सरायें थी किन्तु अब वे धीरे-धीरे खंडहर बनती जा रही हैं। इस तीर्थ - स्थल के संरक्षण की अत्याधिक आवश्यकता है।

रणवीर सिंह पुरा

डोगरा शासन काल में जो नए नगर बसाये गए उन में नगर संरचना की दृष्टि से रणवीर सिंह पुरा का स्थान पहला है। यह उपनगर जम्मू के दक्षिण में 27 कि.मी. की दूरी पर एक समतल मैदान में स्थित है।

नामकरणः- इस नगर का नामकरण जम्मू-कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह (1857-85 ई.) के नाम पर किया गया है। 'तारीख कश्मीर' के लेखक गोपाल कौल के अनुसार महाराजा रणवीर सिंह ने सन 1876 ई. में इस नगर की नींव की।

इतिहासः- जनश्रुतियों के अनुसार यहाँ पहले केवल झांड़ियाँ और कांटे दार वृक्ष थे। थोड़ी सी झोंपड़ियाँ भी थी जिन में कुछ हरिजन परिवार रहते थे। महाराजा ने जब रणवीर नहर का काम आरम्भ करवाया तो उसे लगा कि इस लम्बे चौड़े गैर-आवाद मैदान को यदि आवाद किया जाए तो इससे एक तो सीमा क्षेत्र पर दृष्टि रखी जा सकती है और दूसरा यह पूरा क्षेत्र अन्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सकता है। अतः उन्होंने इस जंगल को साफ़ करवाया और मकानों के लिए भूमि आवंटित की। कई लोगों ने महाराजा के जीवन काल में ही मकान बना लिए और कई मकान बनाने की योजनाएँ बनाने लगे किन्तु महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में जैसे ही रणवीर नहर चली, इस क्षेत्र की ज़मीन ने सोना उगलना शुरु किया। देखते ही देखते धान की खेती होने लगी जिससे अन्न उत्पादन की दृष्टि से यह स्थान जम्मू प्रान्त में प्रथम स्थान में परिगणित होने लगा। आज स्थिति यह है कि रणवीर सिंह पुरा धान के उत्पादन में सबसे आगे है।

कृषि प्रधान नगरः- रणवीरसिंह पुरा की पहचान आज कृषि उत्पादन के कारण है। इसे जम्मू का छोटा पंजाब माना जाता है। उतम मिट्टी और उतमजल के कारण इस के खेत बारह-मास लहलहाते दृष्टि गत होते हैं। यहाँ के किसान खेती-बाड़ी वैज्ञानिक ढ़ग से करते हैं जिस कारण दिनप्रति दिन उत्पादन में वृद्धि हो रही है। इसी कारण शेर-ए-कश्मीर विश्व-विद्यालय ने यहाँ अपना केन्द्र खोल रखा है।

जम्मू-कश्मीर सरकार ने यहाँ पहले कृषि कॉलेज खोला था।

नगर संरचनाः- रणवीर सिंह पुरा एक आधुनिक नगर है। इसका बाज़ार चौड़ा है। बाज़ार के दोनों ओर दूकानें हैं। यहाँ की गलियाँ पक्की हैं। अधिकांश मकान भी पक्के हैं। सिक्ख, हरिजन, महाजन, क्षत्रीय सभी जातियों के लोग यहाँ बसते हैं। लोग अति परिश्रमी, कर्मठ, व्यवहार कुशल, निष्ठावान तथा कर्तव्यपरायण हैं। कृषिकर्म के कारण यहाँ न तो धार्मिक आडम्बरों का

प्रदर्शन है और न साम्प्रदायिक तनाव है। लोग सच्ची लग्न से अपने कामों में व्यस्त रहते हैं। इन का आर्थिक जीवन उन्नत है। जनसंख्याः- सन 2001 मे इस नगर की जनसंख्या 14324 थी।

धर्मस्थलः- रणवीर सिंह पुरा में मंदिर, गुरुद्वारा, ठाकुर द्वारा, लोक देवी-देवताओं के देहरे निर्मित हैं। लोग पर्व-त्योहार भी उत्साह पूर्वक मनाते हैं। वे अनुष्ठानों के प्रति भी सचेत हैं।

दीवान मंदिरः- रणवीर सिंह पुरा का यह मंदिर वास्तु विन्यास की दृष्टि से द्वितलीय है यह डियोढ़ी, सहन, मंडप, अन्तराल,गर्भ गृह और कलात्मक शिखर में समायोजित है। इसका मंडप आकर्षक है। इसका वरामदा अर्द्ध गोलाकार है। इसके चहुँ ओर कोठरियाँ हैं जिनकी संख्या 39 है। मंदिर के गर्भ गृह में राधा कृष्ण की मूर्ति संस्थापित है जो सुन्दर सिंहासन के ऊपर है। इस मंदिर का निर्माण ज्वाला सहाय ने करवाया जो जम्मू-कश्मीर राज्य का प्रधान मंत्री था।

पत्थरेश्वर महादेव मंदिरः- यह मंदिर दीवान मंदिर के सामने जो सरोवर है उसके तट पर निर्मित है। भगवान शंकर का यह मंदिर शैली और स्थापत्य की दृष्टि से सामान्य कोटि का है।

राधा-कृष्ण मंदिरः- यह मंदिर मीरा साहब चौक के निकट निर्मित है। इसका स्थापत्य सराहनीय है। यह ऊँची जगती पर बना है। इस मंदिर का विशेष आकर्षण भीति-चित्रों के कारण है। इन में महाराजा गुलाब सिंह और ध्यान सिंह के भिति चित्र-प्रदर्शित हैं। गर्भगृह कें सिंहासन में स्थापित राध ाकृष्ण की मूर्ति दर्शनीय है।

कजरी मेहरवानू का मंदिरः- भारत पाक सीमा पर स्थित एक कंजरी द्वारा निर्मित यह मंदिर अब जीर्णावस्थाउ था में है। कई लड़ाईयों के कारण क्षत-विक्षत यह मंदिर उस कजरी महरवान् की श्रद्धा का सूचक हैं जिसे समाज कलंकित मानता था।

नृसिंह पुरा

डुग्गर का यह प्राचीन नगर चन्द्रभागा नदी के पूर्वीतट के साथ जम्मू

के पश्चिम में अनुमानतः 27 कि.मी. की दूरी पर बसा है। जम्मू-अखनूर सड़क पर स्थित परगवाल मोड़ से इस ग्राम को सड़क जाती है। इस ग्राम में प्राचीन नृसिंह मंदिर है, अतः लगता है, इसी आधार पर इस गाँव का नाम नृसिंह पुरा पड़ा है।

इस गाँव का विशेष महत्व इसलिए है कि इसका उल्लेख हयुन्सांग के यात्रा विवरण में मिलता है। डोगरी लेखक जगदीश चन्द्र साठे के शब्दों में- वह (हयुन्सांग) जब तक्षशिला की ओर से अपनी यात्रा पूरी करके आया तो वह पहले कस्से-मी-लो (कश्मीर) की ओर गया। वहाँ से निकल कर वह फिर पश्चिम में पन-नु-त्स- (परनोत्स) आया। पुंछ से चलकर वह दक्षिण-पूर्व में होलो-शे-पुलोते होता हुआ टक देश में आ पहुँचा। यहाँ एक नगर नृसिंह नाम से था। उसके पूर्व में पलाश वन शुरु हो जाता था। उन पलाशों के जंगल को पार करने पर साकल (स्यालकोट) नगर आता था, यह नगर भी टक्क देश में ही पड़ता था।' हयुन्सांग के इस यात्रा विवरण से स्पष्ट है कि उसने जो नृसिंह पुरा देखा, वह यही कही था। चन्द्रभागा नदी के विषय में प्रसिद्ध है कि वह अपना पाट बदलती रहती है, अतः सम्भव है कि हयुन्सांग का देखा नृसिंह पुरा बाढ़ की भेंट चढ़ गया हो किन्तु ग्राम के रुप में उसका वजूद आज भी है। दूसरी बात यह है कि सन् 1947 से पूर्व नृसिंहपुरा से स्यालकोट को सीधा मार्ग जाता था और सैकड़ों व्यक्ति प्रतिदिन इस मार्ग से यात्रा करते थे। तीसरी बात यह है कि नृसिंहपुरा और साकलकोट के मध्य में आज भी घना पलाश का बन है जो पलांवाले तक फैला है। चौथी बात यह है कि नृसिंहपुरा टक्क देश का एक हिस्सा भी रहा है।

किन्तु अब स्थिति बदल गई है। मूल नृसिंह मंदिर चन्द्रभागा में वह गया है। उसके स्थान पर नई जगह नया नृसिंह मंदिर बना है जो सड़क के किनारे पर स्थित है। गाँव भी बहुत सिमट गया है। अब इस गाँव में तीस-पैंतीस घर सात-आठ दुकाने और सुरक्षा-दल का एक शिविर है। नृसिंह पुरा के अधिकांश लोग परगवाल में स्थानान्तरित हो गए हैं जो अब एक उपनगर के रुप में विकसित हो रहा है।

काह्ना चक्क

जम्मू से लगभग 18 कि.मी. पश्चिम में बसा काह्नाचक्क डुग्गर का

एक ऐतिहासिक ग्राम है। इतिहासकार काह्नसिंह बलौरिया के अनुसार जम्मू के राजा ध्रुव देव (1703-35) के तीसरे पुत्र मिंया काह्नु ने यह ग्राम लगभग 1715 ई में चन्द्रभागा नदी के तट के साथ बसाया। मिंया काह्नु का असली नाम गोपाल सिंह था और वे मुगल सम्राट के दरवार में तीन हज़ारी का पद रखते थे। उन्होंने यहाँ जो हवेली बनवाई वह उनके वंशज़ों के पास बहुत समय तक रही। बाद में वहाँ पहले थाना और अन्त में तहसील का मुख्यालय खोला गया।

मिंया काह्नु के बाद क्रमशः प्रेमसिंह, अतरसिंह, बख्तार सिंह और उसके बाद मिंया दरगाह सिंह काह्ना चक्क के जागीरदार बने। दरगार सिंह का पुत्र राय केसरी सिंह राम नगर के राजा सुचेत सिंह की सेना का सेना पति बना। उसने काह्नाचक्क में अपने रहने के लिए जो नया महल बनाया उसके अवशेष आज भी गाँव में देखे जा सकते हैं। यह महल कई कक्षों पर आधारित है और इसके सामने एक खुला मैदान है। इस महल के निकट ही एक प्राचीन शिवालय है जिस के विषय में कहा जाता है कि उसका निर्माण मिंया काहनु ने करवाया था। काह्ना चक्क डुग्गर के मैदानी गाँवों जैसा एक विशाल गाँव है। पहले कई घरों की छतें छप्पर की थीं किन्तु अब स्थिति बदल गई है। अधिकांश लोग पक्के घरों में रहते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है।

काह्नाचक्क के निकट ही सिम्बल सूई है और उससे कुछ आगे बुर्ज हैं। यहाँ दोनों स्थानों में रघुनाथ मंदिर हैं जो भीति-चित्रों के कारण प्रसिद्ध हैं। झिडी का झाड़ भी काह्ना चक्क के पास है। बावा जितो के स्मारक मंदिरों के रुप में इसी ग्राम में हैं।

ललियाल के खंडहर- काह्नाचक्क से तीन किलोमीटर की दूरी पर चन्द्रभागा के तट के साथ एक प्राचीन बस्ती के पुरावशेष बिखरे पड़े हैं। इस स्थान को ललियाल कहते हैं। कहते हैं कि ललियाल बहुत बड़ा ग्राम था जो चन्द्रभागा की बाढ़ की लपेट में आकर बह गया। अव इसकी केवल कुछ निशानियाँ ही बची हैं।

बाहुस्थली (बाहुनगर)

डुग्गर का यह गौरव शाली, प्राचीन एवम ऐतिहासिक नगर जम्मू से

केवल पाँच किलोमीटर की दूरी पर तवी नदी के पूर्वी तट पर स्थित एक पठार में बसा है। इस नगर का विस्तार कभी बढ़ा है और कभी घटा है।

नामकरण:- तारीख डोगरा देश तथा जनश्रुतियों के अनुसार इस नगर की स्थापना जम्बूलोचन के बड़े भाई बाहुलोचन ने की। किन्तु गणेश दास बटैहड़ा रचित राजदर्शनी के अनुसार इस नगर का संस्थापक ज्योति प्रकाश था। राजदर्शनी के अनुसार सर्वप्रकाश और ज्योति प्रकाश दोनों सगे भाई थे। वे दोनों एक बार योगी वेश में जम्मू की ओर आए। उन दिनों बाहु के आसपास चाड़क रहते थे। गुम्मट की पहाड़ी पर एक दैत्य रहता था वह चाड़कों को बहुत तंग करता था। चाड़कों ने दोनों भाईयों से उस दैत्य से मुक्ति दिलवाने के लिए कहा। तब सर्वप्रकाश वहीं रहा और ज्योति प्रकाश गुम्मट की ओर गया। उसने दैत्य से युद्ध किया और उसे मार डाला। वह मरे हुए दैत्य का बाजू काट कर चाड़कों की वस्ती की ओर आया। उसने जिस चट्टान पर वह बाजु पटका उसका नाम ही 'वाहुस्थल' प्रचलित हो गया। बाद में चाड़कों ने ज्योतिप्रकाश को अपना राजा मान लिया। राजदर्शनी के अनुसार ज्योति प्रकाश के बंशज ही बाहुस्थल के राजे कहलाये।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि:- राजतरंगिणी में बाहु के राजा का नाम 'शूर' उल्लेखित है। उस की वंशावली ज्ञात नहीं। तारीख डोगरा देश में जो लिखा है उसके सन्दर्भ में इस नगर के इतिहास की चर्चा की जाए तो मानना पड़ेगा कि कभी जम्मू और बाहु अलग-अलग राज्य थे फिर इनका एकीकरण हुआ और राजा कपूरदेव के शासनकाल में मुगल-सम्राट अकवर ने इस एकीकृत राज्य का पुन: विघटन करवाया और कपूरदेव के दूसरे वेटे जगदेव को बाहु का राजा बनवाया। जगदेव के बाद परसराम देव (1585-1610 ई.) कृष्णदेव (1611-1635) अज़्मतदेव (1635-60) कृपालदेव (1660-75) अनन्तदेव, रत्नदेव (1745) वाहु के राजा बने। रत्नदेव के बाद उसका चाचा बसन्त देव उसके बाद उसका वेटा शाहंजादा और अंत में उसका वेटा गम्भीर देव बाहु के राजा बने। गम्भीर देव के शासनकाल में खालसा सैनिकों ने बाहु पर अधिकार किया और बाहु को खालसा राज्य का अंग बनाया। गम्भीर देव ने खालसा सेना से डट कर मुकावला तो किया किन्तु अन्त में वह मारा गया। इस प्रकार इस वंश का कोई उतराधिकारी नहीं बचा। अन्ततः जब गुलाब सिंह जम्मू का राजा बना तो उसे बाहु का क्षेत्र भी खालसा सरकार से मिला इस प्रकार सन् 1822 में इन दोनों राज्यों का पुन: विलय हुआ।

नगर संरचना बाहुनगर की संरचना के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह नगर आरम्भ से ही कई मुहल्लों में विभाजित था। इसके मूल निवासी राजतरंगिणी के अनुसार चाड़क थे। उनका अपना अलग ही मुहल्ला था। उनका मुख्यव्यवसाय कृषि कर्म था, अतः वे अपने- अपने खेतों में मकान डाल कर रहते थे। उनके मकान दूर-दूर थे। फिर भी वे संगठित थे। उनकी जीवन शैली एक सी ही थी। वेज़मी दार थे अतः कृषकों जैसा जीवन व्यतीत करते थे। तवी नदी के तट के साथ सरैरों का मुहल्ला था। ये लोग चाड़कों की असामिया कहलाते थे। उन के खेतों में काम करके अपनी आजीविका चलाते थे। एक मुहल्ला ब्राह्मणों का था। उनमें खजूरिया ब्राह्मण राजपरिवार के कुल पुरोहित थे। उनका समाज में स्थान ऊँचा था। वे दुर्ग के नीचे वहाँ रहते थे जहाँ आज कल बाबा अम्बों का स्मारक है। राज परिवार राज महल में रहता था और उसके परिवार के लोगों की हवेलियाँ दुर्ग के आगे-पीछे थी। इनके अतिरिक्त महाजन और खत्री भी यहाँ बसे किन्तु माना जाता है कि वे बहुत बाद में आए। मुसलमानों के विषय में भी कहा जाता है कि उनका आगमन बहुत बाद में हुआ किन्तु वे इस क्षेत्र में इस्लाम धर्म को फैलाने में सफल रहे। बाहु का पुराना बाज़ार कहाँ स्थित था, इस बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं किन्तु इतना माना जाता है कि बाज़ार महल से बहुत नीचे था। लोगों को महल की ओर झाँकने की अनुमति नहीं थी। नगर में छोटे-छोटे घरेलु उद्योग केन्द्र पहले भी थे और आज भी हैं। व्यवसायिक जातियों के लोग नगर के बीच ही रहते थे और वे अपने-अपने व्यवसाय में व्यस्त रहते थे।

किन्तु आधुनिक बाहुनगर का रुप और स्वरुप ही बदल गया है। अब यह मात्र एक ग्राम ही नहीं अपितु एक उपनगर का रुप धारण कर चुका है। जिस का समुचित ढ़ग से विकास हो रहा है।

बाहुस्थल के दर्शनीय स्थान

बाहुदुर्गः- डुग्गर का यह नामी और ख्याति प्राप्त दुर्ग है। यह एक आयाताकार दुर्ग है और स्थापत्य की दृष्टि से मुगल शैली से प्रभावित है। इसकी पूर्व से पश्चिम की ओर निर्मित दीवार 95 मीटर और दक्षिण की ओर बनी दीवार की लम्बाई 150 मीटर है। यह दीवार प्रस्तर खंडों से निर्मित है। इसके कोणों और मध्य मेंजो बुर्ज हैं उनकी दीवारों में मारकरन्ध्र कई तलों में

हैं। इसका प्रवेश द्वार दक्षिणोन्मुखी है। किले के पूर्वी और दक्षिणी भाग में परिखा (खाई) है जिस की चौड़ाई दस मीटर और गहराई छह मीटर के करीब है। इस किले के भीतर कई कक्ष हैं जिन के अवशेष आज भी किले में बिखरे पड़े हैं। किले के भीतर एक महाकाली का मंदिर और एक पुराना महल है। इस किले का पुर्नोद्धार कहते हैं महाराजा गुलाबसिंह ने जम्मू का राजा बनने के बाद करवाया।

राजमहल- बाहु के राजमहल किले के उतर में एक ऊँची पठार पर बने हैं। इन महलों को दो भागों में रखा जा सकता है-पुराने महल और नये महल। महल का पुराना भाग पूर्वी हिस्से में है और नये महल पश्चिमी हिस्से में हैं। दोनों भागों के मध्य में सीढ़िया हैं। महल का यह भाग शिला खंडों से बना है। इस का अधिकांश भाग अब धराशायी है। नया महल ईंटों से बना है। इसका वास्तु शिल्प मुगल शैली से प्रभावित है। महल के कक्षों के आगे खुला बरामदा है जिस के द्वार महरावी हैं। नये महल में बने कमरों की संख्या बारह है। महल का यह भाग दुमंजिला है। नये महल को मनसबदार का महल भी कहते हैं।

महाकाली मंदिरः- यह भव्य मंदिर किले के उतरी भाग में निर्मित है। यह एक ऊँची जगती पर बना है। यह शिला खंडों से बना है। इस का स्थापत्य नागर शैली में है। मंदिर के दो द्वार हैं एक पूर्वोन्मुख तथा दूसरा पश्चिमोन्मुख है। मंदिर के गर्भ गृह तक जाने के लिए दोनों ओर सोपान हैं। गर्भगृह वर्गाकार है और इसमें तीन देव कोष्ठक बने हैं जिन में मध्यवर्ती कोष्ठक में काले पत्थर में बनी महाकाली की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मंदिर के पूर्वी द्वार में पहाड़ी शैली में बना एक ठाकुर द्वारा है और जगती के नीचे पशुबलि कुंड है। देवी को पशु-बलि दे तुष्ट करने की परम्परा थी। इस मंदिर का पुर्न निर्माण भी महाराजा गुलाबसिंह ने करवाया था।

शाही मस्जिदः- मुस्लिम शैली में बनी यह विशाल और भव्य मस्जिद बाहु दुर्ग के बाहरी मैदान के दक्षिण में निर्मित है। इसके चार मीनार दूर से दिखाई देते हैं। यह पक्की मस्जिद है और इसकी दीवारें सुदृढ़ हैं। इस मस्जिद के निर्माणकाल के बारे में विद्वानों में मत भेद हैं। कईयों के अनुसार इसका निर्माण कृष्णदेव ने जहाँगीर के लिए करवाया। तारीख-ए-जम्मू के अनुसार यह मस्जिद राजा जगदेव के शासन काल में बनी। एक मत यह है

कि जम्मू के फौजदार साहब खान ने इस मस्जिद का निर्माण करवाया। दूसरा मत यह है कि औरंग जेब के एक अधिकारी खली लखान के जम्मू आगमन के उपलक्ष्य में इसका निर्माण हुआ। इसका निर्माता चाहे कोई भी रहा हो किन्तु यह मस्जिद आज भी मूलरुप में खड़ी है।

बाग-ए-बाहु:- मुगलशैली में कश्मीर के बागों की अनुकृति पर बना यह बाग तवी नदी के पूर्वी तट पर ढलान में बना है। इसे दो दशक पूर्व पर्यटकों के लिए विकसित किया गया। यह अति सुन्दर बाग है। इसमें एक छोटी सी कृत्रिम झील है जिस में रबड़ की नावें चलाई जाती हैं। बाग में कई विथियाँ बनी हैं। जिनके दोनों ओर फूलों की सुसज्जित क्यारियाँ हैं। पर्यटकों के बैठने के लिए स्थान-स्थान पर पीठासन बने हैं। बाग में नई किस्म की कोमल घास उगाने से इसका फर्श मखमली लगता है और इसके ऊपर चलने पर अद्‌भुत आनन्दानुभूति होती है। बाग में जलपान के लिए कैफटेरिया भी है। वास्तव में यह अति आकर्षक सुन्दर रमणीक तथा मनमोहक बाग है।

बावा अम्बो का स्मारक:- बाहु में बावा अम्बो का स्मारक किले से नीचे है। इस स्मारक में एक नागर शैली में बना बावा अम्बों का मंदिर है जिस में बावा की मूर्तियाँ (मोहरे) संस्थापित हैं। स्मारक के भीतर श्रद्धालुओं के उठने, बैठने तथा विश्रामार्थ कक्ष बने हैं। खजूरिया पंडितों की एक शाखा बावा अम्बों को अपना कुलदेव मानती है। वास्तव में बावा अम्बो पूरी डोगरा जाति के आदरणीय संत थे जिन्होंने न्याय, परहित कल्याण तथा मानवी मूल्यों की रक्षार्थ जम्मू के राजा ध्रुवदेव के शासन काल में आत्म बलिदान किया।

डन्साल

डुग्गर का यह ऐतिहासिक और प्राचीन उपनगर जम्मू के उतर पूर्व में 36 कि.मी. की दूरी पर एक समतल मैदान में बसा है। यह स्थल कभी एक उपनगर था। जम्मू से कश्मीर जाने के लिए एक पड़ाव भी था। किन्तु जब 1912 ई. में जम्मू-श्रीनगर सड़क चालू हो गई तो इसका महत्त्व घट गया और आज स्थिति यह है कि यह एक उज़ड़ा ग्राम दिखता है।

डन्साल का राजनैतिक महत्व भी रहा है। डोगरा इतिहास में उल्लेख मिलता है कि राजा जीतदेव (1899-1909 ई.) के शासनकाल में यह

उपनगर मिंया मोटा की जागीर की राजधानी था। यहाँ बहुत चहल-पहल रहती थी। उपनगर में पच्चास से अधिक दुकानें तथा साढ़े तीन सौ घर थे। इसके उजड़ने और पुनः बसने मे अब यह फिर पूर्व स्थिति में है।

मिंया मोटा का महल वर्तमान शिव मंदिर के निकट पुरानीबावली के आस-पास था। उस महल के पुरावशेष दीवारों की नींवों के रुप में आज भी द्रष्टव्य हैं। मिंया मोटा जम्मू के राजा संपूर्णदेव और जीत देव का मुख्य सलाहकार तथा प्रमुख प्रशासक था। वह चाहे जम्मू में ही रहता था किन्तु उसकी जागीर का प्रबन्ध उसका परिवार ही करता था। राजदर्शनी में उल्लेख मिलता है कि राजा वृजराजदेव सिक्ख मिसलों के आक्रमणों से डर कर जब पहाड़ों की ओर भागा था तो वह डन्साल में मिंया मोटा के पास कई महीने रहा। मिंया गुलाबसिंह ने जब रियासी पर अधिकार किया तो वह डन्साल से ही सैनिक दल लेकर गया था। मिंया मोटा सिंह की मृत्यु के बाद उसका पोता बज्रदेव जब डन्साल का जागीर दार बना तो वह बग्गे चला गया। वहीं उसने अपना किला और महल बनवाया। किन्तु जब उसने महाराजा रणवीर सिंह की हत्या का षडयंत्र रचा तो महाराजा ने उसे चलद भेज दिया यहाँ आज भी उसके वंशज रहते हैं। उसके जाने के बाद डन्साल भी उजड़ने लगा।

डन्साल अब एक विकास शोल गाँव है। यहां तीस के करीब दुकाने और तीन सौ घर हैं। सरकार ने इसे अब उपविकास मंडल का मुख्यालय बनाया है जिस कारण कुछ रौनक है। यहाँ का राम मंदिर, शिव मंदिर, छटाली का तालाब, मंदिर और सराय दर्शनीय स्थल हैं।

जन्द्राह

डुग्गर का यह रणवांकुरों, साहित्यकारों, संगीतकारों तथा कलाकारों का नगर जम्मू जिला की उपतहसील का मुख्यालय है। जम्मू से इस की दूरी अनुमानतः 42 कि.मी. है। झज्झर उप नदी तथा तवी नदी के दो आब में स्थित होने के कारण प्राचीन समय से ही यह एक अलग उप जनपद के रुप में रहा है।

जन्द्राह का इतिहास इतना ही प्राचीन है जितना बब्वापुर का इतिहास है। इतिहास, जनश्रुतियों और लोक परंम्पराओं का अध्ययन करने से लगता है

कि तवी नदी के पार बब्वापुर के राजाओं का शासन था और जन्द्राह एक अलग जनपद था जिसके आदिशासक समसाल थे। समसालों का जनपद तवी नदी से लेकर टिक्करी चनास और झक्खड़ से भी आगे था तथा कटड़ा क्षेत्र भी इसी जनपद में समाहित था। लोकश्रुतियों में कहा जाता है कि समसालों के तीन किले थे- जन्द्राह, झक्खड़ (टिक्करी) और धाराकोट (कटड़ा) जन्द्राह का किला आज भी खड़ा है किन्तु टिक्करी और धाराकोट के किले धराशायी हैं किन्तु जिन स्थानों में वे किले थे लोकपराम्परा उन स्थानों को भी समसालों का किला ही कहती है। जम्मू के जम्बालों ने जब समसालों को हराया तो जन्द्राह जमवाल सरदारों की जागीर बनी। इन जागीरदारों में एक राजा अमर सिंह भी था जो जसरोटा में मरा था। जन्द्राह की जागीर शायद बाद में डन्साल में स्थानान्तरित हो गई।

जन्द्राह संस्कृति का भी एक केन्द्र हैं। यहाँ देविका नदी को अति-पवित्र माना जाता है। इस नदी के तट पर कई जल-कुंड हैं और प्राचीन मंदिर भी हैं। इन्हीं मंदिरों में जो पुराना मंदिर है वह दसवीं सदी का बताया जाता है। इसके अतिरिक्त एक मंदिर महाराजा रणवीर सिंह का बताया जाता है। यह भव्य शिव मंदिर स्थापत्य कला की दृष्टि बेजोड़ है। इसके अतिरिक्त कन्याला का शिव मंदिर, यक्ष मंदिर, नाभा देवी का गुफा मंदिर, सिरसी का गुफा मंदिर दर्शनीय स्थल हैं।

जन्द्राह के राजवंश के लोग जन्द्राहिया कहलाते हैं। उनके अतिरिक्त यहाँ बाह्मणों स्वर्णकारों, हरिजनों के भी कई घर हैं। विकास की दौड़ में जन्द्राह पिछड़ा है। इसका बाज़ार बहुत छोटा है और केबल तीस पैंतीस दुकानों में समाहित है। सामान्य लोगों का आर्थिक जीवन सन्तोष जनक नहीं है। यहाँ डोगरी का प्रचलन है। कुलदीप सिंह जन्द्राहिया और प्रद्युमन सिंह इस उपनगर के लोक प्रिय डोगरी कवि रहे हैं।

जम्बू (जम्मू)

स्थितिः- उतर भारत के सुन्दर, स्वच्छ और रमणीक नगरों में जम्बू की परिगणना की जाती है। यह नगर पौराणिक तौषी नदी के पश्चिमी तट पर स्थित एक ढलवां पठार पर बसा है। विश्वमान चित्र पर इसकी स्थिति 32^0. 50 अक्षांश और 33^0.30 उतर तथा $74^0$24 और 75^0.18 पूर्व के बीच है।

शताब्दियों से यह नगर डुग्गर की राजधानी है और जम्मू की राजनीति का केन्द्र यही नगर रहा है। जम्मू की वर्तमान स्थिति यह है कि यह नगर जम्मू -कश्मीर राज्य की शरद कालीन राजधानी है। सन 2001 में इस महानगर की आबादी 582291 थी।

नामकरणः- जम्बू (जम्मू) के नामकरण को लेकर विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। तारीख डोगरा देश और जन श्रुतियों के अनुसार इस नगर का संस्थापक राजा जम्बूलोचन था। इतिहासकारों ने राजा जम्बूलोचन का समय ई. पू. 14वीं सदी निश्चित किया है। जन श्रुतियों के अनुसार जम्बू लोचन शिकार खेलता हुआ जब इस क्षेत्र में आया तो उसने यहाँ एक तालाब में शेर और बकरी को इकट्ठे पानी पीते देखा। उसे लगा कि यह पावन स्थल है, अतः उसने यहाँ अपने नाम पर एक नगर बसाया जिस का नाम रखा-जम्बू जो बिगड़ते-बिगड़ते जम्मू नाम से प्रचलन में आया। जगदीश चन्द्र शास्त्री की पुस्तक बैष्णवी सिद्ध पीठ के अनुसार शेर और बकरी के इकट्ठे पानी पीने की कहानी बहुत पुरानी नहीं है। उनके अनुसार रघुनाथ मंदिर के पीछे एक तालाब था। तालाब के निकट जुम्मा नाम का मेघ रहता था। यहाँ उस की ज़मीन थी। जम्मू के मालिक पहले मेघ थे। जुम्मा ने एक चीते के बच्चे को पाल रखा था जो भेड़, बकरी तथा गायों के साथ जंगल में चला जाता था। यह वही चीते का बच्चा था जिस के साथ किसी पर्यटक ने गाय और बकरियों के साथ पानी पीते देखा था। किन्तु इस सत्य घटना को लोक परम्परा ने जम्बूलोचन के साथ कैसे और क्यों जोड़ा यह अभी खोज का विषय है।

वैसे जम्मू शब्द का प्रयोग महाभारत में भी हुआ है। वनपर्व में उल्लेख मिलता है- 'जम्बू मार्गा द उपावृत्य'। व्यासदेव जी युधिष्ठिर से तीर्थ यात्रा वर्णन में कहते हैं- हेराजन- जम्बू मार्ग को पार कर कश्मीर में जाएँ। विद्वानों का मत है कि पौराणिक साहित्य में जिस जम्बूद्वीप का प्रयोग हुआ है, वह यही क्षेत्र है। डॉ. प्रियतम कृष्ण कौल ने द्वीप का अर्थ दो आब लिया है। अल्वेरुनी ने भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है। अतः हम कह सकते हैं कि रावी और चन्द्रभागा नदियों के मध्य में जो भूखंड था, उसे ही प्राचीनकाल में जम्बू या जम्बू द्वीप कहते थे। बौद्ध साहित्य में भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। नागसेन ने मिलिन्द पनोह में लिखा है कि साकल जम्बू द्वीप के अन्तर्गत है। अतः लगता है उन दिनों इस दोआब की सीमा स्यालकोट तक रही होगी। बाद में जम्बू द्वीप का मुख्यनगर जम्बू इस

दो आव का पर्याय बन गया और जम्बूद्वीप से अभिप्राय था- जम्बू द्वीप का मुख्य नगर-जम्बू। पंतजलि के अनुसार जम्बूद्वीप का नाम यामुन के वृक्षों की अधिकता के कारण पड़ा। जम्बू (जम्मू) में यामुन के वृक्ष बहुत होते हैं, अतः इसे जम्बू या जम्मू कहा गया। यह मत भी मान्य नहीं लगता क्योंकि वृक्षों के नाम पर स्थानों के नाम पड़ने की परम्परा तो रही है किन्तु यामुन के कारण इस स्थान का नाम जम्बू या जम्मू पड़ा ऐसा माना नहीं जा सकता। जम्बू के नामकरण का एक अन्य सिद्धान्त यह है कि यहाँ जामबन्त की गुफा थी, अतः इसे जम्मू कहा गया। तारीख ए फरिश्ता के अनुसार कैद राय ने यहाँ किला बनाया और किले का नाम जम्मू रखा। फरिश्ता के अनुसार कैदराय ने जब देखा कि रुस्तम के मरने के बाद पंजाब खाली है, अतः उसने किले की आवश्यकता महसूस की और किले का निर्माण करवाया। किन्तु कैदराय ने पंजाब को छोड़ जम्मू में ही क्यों किला बनाया इस का स्पष्टि करण नहीं मिलता। ऐतिहासिक ग्रंथों में तैमूर की डायरी पहली पुस्तक है जिस में जम्मू और जम्मू के राजा का वर्णन है। राजतरंगिणी, जिस में जम्मू के आठ-दस राज्यों का उल्लेख है, उसमें भी जम्मू या जम्बू का कहीं नाम नहीं है। अतः इतिहास कारों का मत है कि जम्बू का अर्थ वह दो आव था जिस में आज जम्मू स्थित है।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमिः- जम्बू या जम्मू का कोई पुष्ट या प्रामाणित इतिहास नहीं मिलता। कर्नल शिव नाथ के अनुसार फरिश्ता की तारीख को यदि सत्य मान लिया जाए तो जम्मू पहली सदी में बजूद में आ चुका था। फरिश्ता ने जम्मू के सन्दर्भ में लिखा है कनौज के राजा राम देव राठौर ने पहली शताब्दी में कुमाऊँ से लेकर जेहलम तक के राजाओं को अपने अध ीन किया। जम्मू के राजा के विषय में उसने लिखा हैः- जम्मू के राजा ने पराजय स्वीकार नहीं की और सामना करने के लिए वह लड़ाई के मैदान में आ डटा। उसे अपनी सेना की बहादुरी पर विश्वास था। उसे कैद राज के बनाये सुदृढ़ किले पर विश्वास था। उसे विश्वास था कि दुश्मन की सेना घने जंगलो से होती हुई युद्ध सामग्री के साथ उस तक नहीं पहुँच पाएगी। किन्तु ऐसा हुआ नहीं। जम्मू का राजा हार गया कन्नौज राजा के राजा ने किले पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् राजा ने रामदेव राठौर के पुत्र को अपनी वेटी देकर संधि की। पहली सदी में घटित इस घटना के बाद जम्मू में दूसरी बड़ी घटना तब घटी जब नगरकोट के राजा मंगल चन्द ने जम्मू पर आक्रमण किया। राजदर्शनी के अनुसार तब जम्मू में राजा राजबल्लभ का राज्य

था। राजा और उसके सेना नायक बड़ी वीरता से लड़े किन्तु अन्ततः वे लड़ाई में पराजित हुए और मारे गए। तब राज बल्लभ के उतराधिकारी भानु यक्ष के पुत्र समुन्द्र गुप्त ने लड़ाई के कारण नष्ट हुए जम्मू का परित्याग किया और तवी के तट पर स्थित एक पहाड़ी पर एक नया नगर बसाया जिस का नाम उसने धारा नगरी रखा। धारानगरी कई बर्षों तक जम्मू की राजधानी रही। फिर किसी कारण से धारानगरी उजड़ गई किन्तु इसके पुरावशेष मनवाल ग्राम में अब भी बिखरे मिलते हैं। निः सन्देह तवी नदी के पार स्थित पहाड़ी को आज भी धारानगरी ही कहते हैं किन्तु वहाँ कभी कोई नगर था, इसकी चर्चा राज दर्शनी के अतिरिक्त अन्य किसी ऐतिहासिक पुस्तक में नहीं मिलती। लगता है जम्मू जब-जब उजड़ा, उसकी राजधानी बदली और बब्वापुर भी शायद इसी कारण जम्मू की राजधानी रही होगी। राजा राज बल्लभ के शासन काल का सही-सही समय तो ज्ञात नहीं किन्तु यह माना जा सकता है कि यह हमला ईसा की पाँचवीं सदी के लगभग हुआ होगा। राजदर्शनी में जम्मू से सम्बन्धित तीसरी महत्व पूर्ण घटना का विवरण जम्मू के राजा शिव प्रकाश के संदर्भ में मिलता है। शिव-प्रसाद शक्ति कर्ण की पाँचवीं पीढ़ी में हुआ। शिव प्रसाद के मामा का नाम शाल था। उसने शाल कोट दुर्ग स्थापित किया जो जम्मू से केवल 25 कि.मी. दूर था। शाल ने जम्मू पर आक्रमण करके इस नगर को नष्ट-भ्रष्ट किया। राजा शाल से भयभीत होकर जम्मू राज्य वंश के लोग पहाड़ों की ओर भाग गए और जम्मू शालकोट के अधीन हो गया।

राजा शाल के वंशज़ों ने जम्मू पर कई बर्ष राज्य किया। समझा जाता है कि ऊपरोक्त लड़ाईयों के समय जम्मू में दो किले थे। एक किला तवी नदी की ऊपरी पठार पर मस्तगढ़ में था और दूसरा अमर महल के निकट कहीं था। शत्रु सेना बार-बार इन दुर्गों को जीतने में सफल हो जाती थी। शायद यही कारण था कि जम्मू के पुराने राजाओं ने जम्मू का परित्याग किया। जम्मू के ह्रास के बाद वब्वापुर का विकास हुआ जो तवी नदी के तट पर जम्मू से केवल बीस कोस दूर था।

जम्मू का राजवंश राजा शाल और उसके उतराधिकारियों के भय से कई सदियों तक पहाड़ों में भटकता रहा। अन्त में इस वंश के एक राजा सिध राय ने पहाड़ी राणाओं की सहायता से बब्वापुर के राजा पद्मराय को युद्ध में हराया और उसके क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। सिंघरायं के वंशजों को डॉ. सुखदेव सिंह ने 'रा[illegible]वंश' का नाम दिया है। इस वंश के राजाओं को चाहे

जम्मू का राजा कहते थे किन्तु इन की राजधानी बब्वापुर ही थी। रायवंश के बाद धर वंश के राजा जम्मू की गद्दी पर बैठे किन्तु इन की राजधानी बब्वा पुर ही रही। धर वंश के अन्तिम राजा बज्रधर को सूरजदेव ने लड़ाई में हरा कर उसे बब्वापुर से भगा दिया। डॉ. सूरजदेव चाहे जम्मू का राजा था किन्तु उसकी राजधानी बब्वापुर ही थी। सूरजदेव काबुल के हिन्दू राजा कमल वर्मन के पक्ष में लड़ता हुआ शरीफखान के हाथों मारा गया तो उसका पुत्र भोजदेव, और बाद मेंविजय देव, नृसिंह देव, अर्जुन देव और जोधदेव जम्मू के राजा बने। यह बताना कठिन है कि इन की राजधानी बब्वापुर में थी या जम्मू में स्थानान्तरित हो चुकी थी। जोध देव के बाद जम्मू की राजगद्दी पर माल देव सिहासनारुढ़ हुआ। कई इतिहासकार मालदेव को ही जम्मू का पहला राजा मानते हैं।

तारीख रियासत जम्मू-कश्मीर (हिस्सा अवल जम्मू पहला बावइब्तदाई ज़माना) में राजा मालदेव के सन्दर्भ में लिखा है- 'इसके ज़माना में जब तैमूर ने हिन्दोस्तान पर हमला किया तो जाते-जाते जम्मू की तरफ भी आया और बावलेयाना के करीब सख्त लड़ाई हुई यहाँ से वह वापस चला गया।'

राजा माल देव के सिहासना रुढ़ होने का विवरण देते हुए इस पुस्तक के लेखक ने लिखा है- अब तक इस खानदान के किसी हुक्मरान ने वाकयदा तौर पर राजा की पदवी हासिल नहीं की थी। मालदेव पहला राजा था जिसने राज तिलक लिया।

इसी पुस्तक के अनुसार-राजा मल देव ने राजा बनने का इरादा किया तो वह तवी से एक भारी पत्थर उठा लाया और इसे अपने मकान के सामने डाल दियां। राजा ने अपनी बरादरी के तमाम लोग जमा किए और उनके साथ गद्दी, ठक्कर, और दूसरी कौमों के पंचों को भी तलब किया। फिर इनसे कहा-किसी को अपना राजा बना लें। सबने इसी को पसंद किया और इसके इस कदर भारी पत्थर उठाने से यह नतीजा निकाला कि देवता भी इसके राजा बनने की ताईद करते हैं। जब सब लोग राजी हो गए तो मल देव इस पत्थर पर बैठ गया और एक बूढ़े राजपूत ने इसे राजतिलक दिया। इस तरह मालदेव मुल्क का राजा करार पाया। जो इलाका उसके मत हत था वह तवी और चनाव के दरम्यान वाक्या था।' तारीख जम्मू व कश्मीर में दिए गए इस विवरण को यदि सही मान लिया जाए तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा जम्मू

का पहला राजा मालदेव ही था। (यह पुस्तक प्रकाशित है और उर्दू में लिखित है। लेखक को यह पुस्तक पैंथल के कुनेयाँ ग्राम से इन्ताल राजपूतों के घर से प्राप्त हुई।)

मल्फूज़ात-ए-तिमूरी में भी तैमूर के जम्मू पर किए गए आक्रमण का विवरण मिलता है। उसमें लिखा है:- जम्मू के काफिर, ने हिन्दोस्तान के सुलतान की ताबेदारी तथा हुक्म न मानने की वजह से उसे सबक सिखाने के लिए तैमूर ने जम्मू पर चढ़ाई की। जम्मू का राजा लड़ाई में ज़ख्मी हुआ और उसे बन्दी वना लिया गया। लगता है यह लड़ाई बाहुदुर्ग के आस-पास कहीं हुई।

जोगराज की राजतरंगिणी में मालदेव का उल्लेख हुआ है। इस ग्रंथ के अनुसार माल देव मद्र देश का राजा था। इसकी वेटी का विवाह कश्मीर के राजा से हुआ था। राजकुमारी की कोख से जो चार पुत्र हुए उनके नाम थे- आदम खाँ, है ज़ाखाँन, जस्सुरथ खान तथा बहराम खान। इस पुस्तक में लिखा है कि जब खुक्खर बादशाह ने मद्र नरेश मालदेव को बंदी बना लिया तो कश्मीर के राजा ने बीचबचाव करके उसे छुड़ा लिया। जोनराज ने मद्र के इस राजा को अभिमानी लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि इस राजा ने कश्मीर के राजा को जो कश्मीर का राज्य अपने भाई को सौंप कर हज़ की यात्रा पर जा रहा था, अपनी यात्रा रद्द करने तथा अपने साथ कश्मीर लौटने के लिए मना लिया। जोनराज की राजतरंगिणी से पता चलता है कि जम्मू राज्य का एक नाम मद्रराज्य था। शिव नाथ के अनुसार मद्रराज्य के मुख्य तीन केन्द्र थे- शाक्ल (स्यालकोट) बब्वापुर और जम्मू। अतः जम्मू के राजा को मद्रनरेश लिखना सही माना जा सकता है।

जोनराज की राज तरंगिणी के अतिरिक्त चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी के इतिहास में जम्मू का नाम तारीख-ए-मुवारक शाही, तारीख-ए-कश्मीर-ए आज़म में भी मिलता है। तारीख-ए-मुबारक शाही में जम्मू के राजा राय भीम का वर्णन है। यह राजा 1414 से 1450 के मध्य जम्मू का राजा था। 1417 ई. में लिखित तारीख-ए कश्मीर-ए-आज़मी में लिखा है कि जम्मू पाँच सौ बर्ष पुरानी राजधानी है। इसका अर्थ यह हुआ कि 900 ई. में जम्मू शहर आबाद था।

'तारीख-ए-शेरशाही' के अनुसार शेरशाह सूरी ने 1542-43 में जम्मू

को अपने अधिकार में लिया। सलीम शाह (1545-53 ई.) के शासनकाल में जम्मू ने बगावत की जिसे दबा दिया गया। अकबर नामा में उल्लिखित है कि जम्मू सहित पहाड़ी राजाओं ने 1588-89 तथा 1594-95 में मुगल शासक के विरुद्ध विद्रोह कियां जिस का दमन शाही सेना ने किया। इस पुस्तक में जम्मू किले की घेराबंदी करके उसे जीतने का उल्लेख भी किया गया है। जम्मू के राजा ने पहाड़ी राजाओं से मिलकर एक विद्रोह 17वीं सदी में पंजाब के हाकम रजियावेग की क्रूरता के कारण भी किया। रजियावेग की सेना इस विद्रोह को दबाने आई तो इन राजाओं ने सामूहिक रुप से उसका मुकाबला किया और सेना को खदेड़ दिया। जहाँगीर के शासनकाल में जम्मू का राजा संग्राम पाल था। सन् 1620 ई. में उसे मुगल दरबार में सम्मानित किया गया था। मासीर-उल-उमरा में जम्मू के राजा भूपदेव, उसके पुत्र हरिदेव और उसके पुत्र गजेदेव का उल्लेख हुआ है। 1664 में वर्गियर ने जम्मू की यात्रा की। सन् 1703 में जम्मू की राजगद्दी पर ध्रवदेव बैठा। उसके बाद उसका पुत्र रंजीत देव (1750-81 ई.) जम्मू का राजा बना तो उसने काबुल के बादशाह अहमद शाह दुरानी की अधीनता स्वीकार की और दुर्रानी ने उसे जम्मू की बाईस रियासतों का सिर मौर माना लिया। 1781 में जब उस का वेटा वृजराजदेव सिंहासन पर बैठा तो सिक्ख मिसलों के सरदारों ने जम्मू पर आक्रमण आरम्भ किए और जम्मू को खूब लूटा। 1787 ई. में वृजराज देव सिक्ख भंगी मिसल के सरदारों से लड़ता हुआ मारा गया तो उसका पुत्र संपूर्णदेव जो अल्पव्यस्क था जम्मू की गद्दी पर बैठा किन्तु वह भी छोटी आयु में मरा। उसके बाद रंजीतदेव का पोता और दलेल देव का पुत्र जीतदेव को जम्मू की गद्दी मिली। वह एक योग्य प्रशासक सिद्ध न हुआ और सन् 1816 में पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह ने उसे गद्दी से उतारा और जम्मू की जागीर अपने पुत्र खड्गसिंह को दी। किन्तु मिंया डीडो और मिंया दीवानु के गोरिला युद्ध से खालसा सेना तंग पड़ गई तो महाराजा रंजीत सिंह ने सन् 1822 में जम्मू का राज्य गुलाब सिंह को प्रदान करके उसे अपने अधीन जम्मू का राजा बनाया। सन् 1846 ई. में अपनी चतुरता से गुलाबसिंह जम्मू-व-कश्मीर राज्य का महाराजा बना।

जम्मू के राजनैतिक इतिहास का अनुशीलन करने से पता चलता है कि राजा मालदेव से पूर्व जम्मू के शासकों को 'राजा' की उपाधि प्राप्त नहीं थी। बब्वापुर के शासक ही जम्मू के शासक थे। बब्वापुर का इतिहास ही जम्मू का इतिहास है। किन्तु बब्वापुर के अन्तिम राजा बज्रदेव के शासनकाल में जब

बब्वापुर का राज्य विखंडित हुआ तो कई नये राज्य उभरे जिनमें मनकोट, जम्मू हिमता, बन्दरालता, भूति आदि थे। इनका इतिहास 12वीं सदी या उसके भी बाद का है। राजा मालदेव के वंशजों का जो क्रम मिलता है, वह इस प्रकार है:-

1. राजा मालदेव	–	1359–1399 ई.
2. हमीरदेव	–	1399–1425 ई.
3. अजेदेव	–	1425–1456 ई.
4. बैरमदेव	–	1456–1501 ई.
5. खोखर देव	–	1501–1530 ई.
6. कपूर देव	–	1530–1571 ई.
7. समैलदेव	–	1571–1596 ई.
8. संग्रामदेव	–	1596–1626 ई.
9. भूपतदेव	–	1626–1652 ई.
10. हरिदेव	–	1652–1688 ई.
11. गजेदेव	–	1688–1703 ई.
12. ध्रुवदेव	–	1703–1735 ई.
13. रंजीतदेव	–	1735–1781 ई.
14. वृजराजदेव	–	1782–1787 ई.
15. संपूर्णदेव	–	1887–1797 ई.
16. जीतदेव	–	1797–1816 ई.

जीतदेव के बाद शाहज़ादा खड्गसिंह जम्मू का जागीरदार बना किन्तु पंजाब नरेश ने सन् 1817 ई. में गुलाबसिंह के पिता मिंया किशोर सिंह को 'राजगी' की उपाधि देकर जम्मू का प्रशासन उसे सौंप दिया। 17 जून 1822 को महाराजा रंजीत सिंह ने गुलाब सिंह को अपने हाथों से राजतिलक लगा कर उसे जम्मू का राजा बनाया। सन् 1846ई0 में वृटिश कोम्पनी आफ इंडिया ने गुलाब सिंह को जम्मू व कश्मीर का महाराजा माना गुलाब सिंह के वंशज़ों की सूची इस प्रकार है:-

गुलाब सिंह	–	1846–1857 ई.
रणवीर सिंह	–	1857–1885 ई.
प्रताप सिंह	–	1885–1925 ई.
हरिसिंह	–	1825–1949 ई.

(महाराजा हरि सिंह इस वंश का अन्तिम राजा था।)

इतिहासकारों एवम लेखकों की दृष्टि में जम्मू-

कल्हण की राज तरंगिणी में जम्मू का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है किन्तु कर्नल शिवनाथ का मत है कि 1003 तथा 1028 ई. के बीच तवी नदी के तट पर गज़नी के महमूद तथा काबुल के अंतिम हिन्दूशाही राजा त्रिलोचन पाल के मध्य जो लड़ाई हुई थी वह जम्मू के निकट तवी नदी के तट पर हुई होगी। इस लड़ाई के साथ ही हिन्दू शाही राज्य का अन्त हो गया। जोनराज की राज तरंगिणी में जम्मू के राजा को मद्र देश का राजा कहा गया है। श्रीवर की राजतरंगिणी में लिखा है कि 1486 ई. में, फरेखाँ ने मद्रप्रदेश की राजधानी (जम्मू) को लूटा था। उसने यह भी लिखा है कि फरेखाँ ने इसे राजपुरी के अधीन रखा था। श्रीवर ने जम्मू के लोगों के विषय में लिखा है ये लोक छोटे कद के ठिगने मनुष्य हैं जो तलवार तथा ढाल के साथ लैस लड़ाई के मैदान में उतरते हैं। इनके सामने कोई खड़ा नहीं हो सकता। उसने यह भी लिखा है कि ये लोग हरकारों का काम भी कर लेते हैं। एक अन्य स्थान पर उसने इन्हें शरारती स्वभाव का लिखा है। फरिश्ता ने जम्मू के लोगों को बहादुर तथा साहसी लिखा है। मल्फूज़ात-ए-तिमूरी में लिखा है कि- यहाँ (जम्मू) के हिन्दू लड़ाई में तेज हैं। ये बहादुर तथा खूब हट्टे कट्टे हैं। जम्मू के आस-पास की भूमि हरि-भरी है। लोग अच्छा खाते पीते हैं। जम्मू और जम्मू क्षेत्र से जुड़ी ऐतिहासिक घटनाओं के कई प्रसंग शाहनवाज़ खाकी मुल्फज़ाते तीमूरी,याहिया बिन अहमद की तारीख-ए मुबारक शाही, जिआ-उ-द्दीन बरनी की तारीख फिरोज़ शाही, यूसुफ मुहम्मद खां की तारीखे मुहम्मद शाही, निजामुद्दीन अहमद की तबकाते अकवरी, अबुल फज़ल की आइने अकवरी, अबुल-फज़ल की अकवर नामा, मुहम्मद कासिम की आलम गीर नामा, अब्दुल हमीद की बदशाह नामा, मौलाना अहमद की तारीखे अलिफी मुफ्ती अली उद्दीन की इबरत नामा, कन्हैयालाल की रंजीत नामा, गुलाममुहीउद्दीन की तारीखे पंजाब, मु. अब्दुल करीम की तारीखे पंजाब, दीवान कृपाराम की गुलाब नामा गणेश दास बडेहरा की राजदर्शनी, ठाकुर काह्न सिंह बलौरिया की तारीख राजपूत-ए-मुल्के पंजाब, तारीखे राजगान-ए-पठानियाँ, शिव निर्मोही की डुग्गर का इतिहास में कहीं संक्षिप्त तो कहीं विस्तर से मिलते हैं। इन पुस्तकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जम्मू के राजा तथा निवासी पहले काबुल और बाद में लहौर के शाही हिन्दू राजाओं के अधीन थे। मुस्लिमकाल में ये दिल्ली या लहौर के हाकिम के अधीन रहे। मुगल काल में ये मुगलों के और सिक्खकाल में खालसा दरवार के अधीन रहे। इन्हें स्वतन्त्र रुप से रहने और शासन करने का बहुत कम समय मिला।

जम्मू नगर संरचना:- जम्मू के विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह नगर कई बार बसा और कई बार उजड़ा। कभी जम्मू गुम्मट के आगे पीछे था तो कभी यह पलौहड़ा की ओर बढ़ा। एक समय ऐसा आया कि यह नई बस्ती में आवाद हुआ। इस नगर ने कई रुप बदले कई शक्लें बदली। इसके लोग बदले, मकान बदले और मुहल्ले बदले। 'तारीख कश्मीर' के लेखक पंडित हर गोपाल कौल ने 1872 में जम्मू को देखा, पढ़ा और लिखा- जम्मू, ज़िसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि किसी ज़माने में वह पलावडी (पलौहड़ा) की ओर बसा था। मेरे देखते-देखते एक उजाड़ स्थान था। उर्दू बाज़ार, गुम्मट का इलाका, हवेली बेगम, की ओर जाते हुए डर लगता था' अब कितना बदल गया। अपने राज काल में भी सरकार वाला महाराजा रणवीर सिंह ने गुमट से शेर वाले दरवाजे तक तथा योगी दरवाजे से हबेली बेगम तक आवाद करवा दिया है। मंदिर श्री रघुनाथ तथा मियां साहब के मंदिर और मिया अमरसिंह, राम सिंह, के अहाते बनवाये। बाज़ार, नये महल तथा मस्जिदें बनवाईं। पानी के पक्के तलाब बनवाये। वि. सन 1939 ई. में गदाधर जी का मंदिर तथा तालाब (मुवारक मंडी के बाहर) बनवाया। वि. से 1935 (सन् 1879 ई.) में मंडी के बाहर तार घर बनवाया। पंडित हर गोपाल कौल के इस लेख से लगता है कि नव जम्मू का निर्माता महाराजा रणवीर सिंह था। उससे पहले जम्मू एक साधारण नगर था। ईस्ट-इंडिया कम्पनी के एक अधिकारी जार्ज फारस्टर ने जब जम्मू नगर को देखा तो इसकी संरचना तथा परिदृश्य को अपने शब्दों में उतारते हुए लिखा:- 'जम्बू (जम्मू) एक पहाड़ी पर बसा है। इसके दो सीधे-सीधे भाग हैं- ऊपर का शहर तथा निचला शहर। इस पहाड़ी के चरणों को धोती है तवी नदी। इस नदी का पाट चालीस-पच्चास गज़ है। इस नदी को पतन से पैदल पार किया जा सकता है। तवी पर बहुत सी पनचक्कियाँ हैं। ये पनचक्कियाँ उन सभी पन चक्कियों से साफ सुथरी हैं जो मैंनें उतरी-भारत में देखी हैं। अपनी बिगड़ी हालत में भी यह शहर अब्वल दर्जे की तिजारिती मंडी (व्यापार केन्द्र) है। जम्मू के तिजारती मंडी बनने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए फारस्टर ने लिखा है:- नादरशाह के आक्रमण से पहले, दिल्ली से कश्मीर तक का मार्ग सरहिंद, लहौर तथा भिम्बर से जाता था। किन्तु पठानों तथा पंजाब के कुछ लोगों के हमलों तथा लूटमार के कारण खतरनाक हो गया था विशेष रुप से व्यापारियों के लिए। इसलिए रंजीत देव के समय में यारकंद, कश्मीर तथा पंजाब के बीच होने वाला व्यापार जम्मू के मार्ग से होने लगा। यह मार्ग हर ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ था, अतः घुड़ सवार लुटेरों की पहुँच से बाहर था।' फारस्टर के अनुसार नव जम्मू का निर्माता

रणवीर सिंह को नहीं रंजीत देव को माना जाना चाहिए क्योंकि उस के शब्दों में:- रंजीत देव ठीक-ठीक बुद्धिमान तथा न्याय करने वाला शूरवीर राजा था। जम्मू की खुशहाली तथा नेकनामी (ख्याति) उसी के कारण थी। जम्मू की आय, अन्य मददों के अतिरिक्त तिजारती- माल जम्मू आने तथा बाहर जाने की माल गुजारी की थी। अकेले इस मदद की आमदन पाँच लाख रुपये सालाना थी।' फारस्टर ने अनुसार महाराजा रंजीत देव ने पंजाब के कई हिन्दू और मुसलमान व्यापारियों को जम्मू इसलिए बसाया - 'राजा रंजीत देव अच्छी प्रकार जानता था कि मुसलमान व्यापारियों के जम्मू में बसने से उसे बहुत लाभ होगा। अत: उसने मुसलमानों को यहाँ बसाने के लिए बहुत सी सुविध ाएँ प्रदान की। उनके रहने के लिए जम्मू के पश्चिम में एक अलग मुहल्ला बसाया जिसका नाम मुगल पुरा रखा। मुहल्ले में एक मस्जिद भी बनवाई।'

यातायात के विषय में भी उसने लिखा है:- जम्मू-कश्मीर के मध्य तिजारती माल कश्मीरी मजदूर अपनी पीठपर उठा लेते थे। दो मजदूर एक खच्चर के बरावर बोझ उठा लेते थे। मजदूर को कुल चार रुपये प्रति मजदूर मजदूरी मिलती थी। जार्ज फारस्टर 13 अप्रैल 1783 ई. को मानसर से होते हुए जब जम्मू पहुँचा तो उसने जम्मू का जो रुप देखा वह ऐतिहासिक घटनाओं के अनुरुप है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जम्मू नगर के विकास तथा विस्तार के लिए जो सहयोग महाराजा रंजीत देव ने दिया वह सराहनीय था। महाराजा रंजीतदेव के समय पंजाब तो उपद्रवों के कारण अशान्त था। पंजाब के लोग, व्यापारी, धनाढ्य सुरक्षित स्थानों की खोज में इधर उधर भाग रहे थे, रंजीत देव ने उन्हें जम्मू बुलाया, ज़मीन दी, सहारा दिया। राज दर्शनी के अनुसार पंजाव से जो घनाढ्य व्यक्ति जम्मू आ बसे उनमें उल्लेखनीय नाम थे:-

लाला पिण्डीदास, ज्वाला नाथ, लालाहीरा नन्द, कुंजलाल तथा मिल्खी शाह। इन लोगों के आने से जम्मू के बाज़ार में रौनक आ गई। चारों ओर नये घर बने। सबसे बड़ी बात यह थी कि मुगल-सम्राट मुहम्मद शाह की बेगम मल्लिका यामिनी भी जम्मू में आ बसीं। उनके लिए जो शानदार महल बने उन्हें बेगम हवेली का नाम दिया गया। उन दिनों जम्मू को दार-उल-अमन कहते थे। जम्मू नगर के रुप को बदलने के लिए राजा ध्रुवदेव के प्रयास भी स्तुत्य कहे जाते हैं। राजा ध्रुवदेव जो महाराजा रंजीत देव का बाप था पहले पुरानी मंडी के महलों में रहता था। उन दिनों जम्मू का मुख्य केन्द्र ही पुरानी मंडी था। पुरानी मंडी में सबसे पहले काली जनी के पास राजा मालदेव ने अपना महल बनवाया था। यह महल चाहे छोटा था किन्तु सुदृढ़ता की दृष्टि से यह दुर्ग की भाँति मज़बूत था। इसकी दीवारें पत्थर की थीं। राजा और

उसका परिवार इसी महल में रहता था। राजा का राजतिलक जिस पत्थर पर हुआ था।, वह भी इसी महल के निकट था। यह महल कई कक्षों पर आधारित था। लगता है मालदेव के वंशज जब पुरानी मंडी के महल में आए होंगे तो उन्हेंने उस महल का उपयोग अतिथि शाला के रुप में किया होगा। पुराने महल की एक दीवार आज भी बची हुई है और एक कन्या विद्‌यालय इसी-भवन में है। राजपूत जमवालों और सामंतों के पुराने घर भी पुरानी मंडी के आस-पास थे। किन्तु ध्रुवदेव को लगा कि पुरानी मंडी के महल राज परिवार के लिए पर्याप्त नहीं हैं तो उसने दरवार गढ़ में नये महल बनवाये। ये महल एक खुले स्थान में थे। इनके मध्य एक मैदान था। मैदान के चारों ओर कई कक्षों पर आधारित मकान थे। यह मैदान ऊँची दीवार से घिरा था। राजा ध्रुवदेव (1703-1735 ई.) के समय में ही धौंथली मुहल्ला विकसित हुआ और जम्मू के सरदारों ने दरवार गढ़ के इर्द-गिर्द अपनी हवेलियाँ बनाई जिस कारण यह नगर मुख्य रुप से दो भागों में विभाजित हुआ- ऊपर का शहर- नीचे का शहर।

राजा ध्रुवदेव से बहुत पहले राजा मालदेव (1359-1399 ई.) के समय में तो जम्मू का आकार एक गाँव जैसा था। हम यह भी कह सकते हैं कि मालदेव ने कई गाँवों को जोड़ कर जम्मू नगर की रचना की। ये गाँव अब जम्मू के मुहल्ले हैं और इनके नाम भी बदल गए हैं। यहाँ आज रघुनाथ मंदिर है वहाँ मेघों की बस्ती थी यहाँ आज दीवान मंदिर हैं वहाँ 'डोम' तथा अन्य हरिजन रहते थे। एक वस्ती वटवालों की भी थी। कुछ घर ठाकुरों के भी थे। मालदेव और उसके बाद जम्मू के मूल निवासियों का बड़ी संख्या में स्थानान्तरण हुआ। नये-नये लोग आ कर बसते गए और पुराने हटते गए और वे धीरे-धीरे जम्मू से बाहर ही हो गए। जम्मू में जब पंजाब के धनाढ्य परिवार आ गए तो उन्होंने कई नई मंडियाँ बनाई और कई नये बाज़ार बने। दरवार गढ़ के नीचे यहाँ पक्का ढंगा था। वहां ज़मीन खाली थी। पंजाबी व्यापारियों ने वहाँ वाज़ार आवाद किया जिसे पक्का डंगा नाम दिया। जैन परिवार जिस मुहल्ले में बसे उस का नाम जैन बाज़ार पड़ा। कंजरियों और कंजरों ने यहाँ डेरे डाले उसे उर्दू बाज़ार कहा गया। ये कंजर 1947 तक जम्मू में ही थे और पाकिस्तान बनने के बाद स्यालकोट की ओर भागे। अब वहाँ राजेन्द्र बाज़ार है। शहीदी चौक के पास यहाँ रेज़ीडेन्सी का कार्यालय था उसका नाम ही रेज़ीडेसी बाज़ार पड़ा। पंजतीर्थी जम्मू का पुराना मुहल्ला था। जम्मू के कई मूल निवासी इसी मुहल्ले से सम्बन्धित थे। कनक मंडी पहले केवल गेहुँ की मंडी

थी, बाद में बाज़ार बन गई। यहाँ घास बिकती थी वह पहले घास मंडी कहलाई किन्तु बाद में जम्मू का मुहल्ला बनी। जिस मुहल्ले में पठान आकर बसे उसे मुहल्ला अफगान का नाम दिया गया। गुम्मट बाज़ार पहले से ही था। वहाँ दुकानें भी थीं किन्तु रघुनाथ बाज़ार पंजाबी व्यापारियों की देन माना जाता है। मस्तगढ़ जम्मू का पुराना मुहल्ला है। यहीं पहले एक किला भी था और किले की ओर जाने के लिए जो ढक्की थी उसे ही शायद पक्की ढक्की कहा जाने लगा। बाद में वह एक मुहल्ला बन गई। जम्मू के पुराने निवासी इसी मुहल्ले के कहे जाते हैं। महाराजा रणवीर सिंह के एक कर्मचारी जिन्हे सब उस्ताद जी कहते थे वे जहाँ बसे उसे मुहल्ला उस्ताद कहा जाने लगा। इस प्रकार जम्मू का रुप और स्वरुप बदलता गया। यह गाँव से छोटा नगरोटा बना, नगरोटा से नगर और अब नगर से महानगर बनता जा रहा है। एक मत यह भी है कि तैमूर के आक्रमण के बाद जम्मू को दुर्गनगर का रुप दिया गया। गुम्मट द्वार से एक पक्की दीवार उठाई गई जो जोगी द्वार से भी आगे तक लम्बी थी। इसमें तीन द्वार थे जिस में एक महेश्वरी दरवाजा था किन्तु अब दीवार गायव है।

महाराजा गुलाबसिंह तो युद्धों में व्यस्त रहे उन्हें तो जम्मू के विकास पर सोचने का तो मौका ही नहीं मिला। किन्तु रणवीर सिंह ने जम्मू का रुप ही बदल दिया। उसी के शासन काल में दरवारगढ़ मण्डी मुवारक बना। जम्मू को 'मंदिरों का शहर' का नाम मिला और जम्मू की जनसंख्या बढ़ी।

सन् 1847 में महाराजा गुलाबसिंह के शासनकाल में स्मिथ के अनुसार जम्मू में केवल 200 दुकानें 1600 घर और दस हज़ार जनसंख्या थी वहीं सन् 1873 ई. में महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में जम्मू की जनसंख्या 41817 तक जा पहुँची जिन में 28391 हिन्दू, 11804 मुसलमान 1622 दूसरी जातियों के लोग थे। महाराजा रणवीर सिंह ने जम्मू नगर की सफाई के लिए दर्जनों की संख्या में भंगी और पानी फैंकने के लिए माशकी रखे। महाराजा का अनुकरण महाराजा प्रतापसिंह और हरिसिंह ने भी किया और यह नगर दिन व दिन बढ़ता और फलता फूलता गया।

आजादी से पहले जम्मू नगर कई मुहल्लों में विभाजित था पंचतीर्थी, नारायणियाँ, दलपतियाँ, अफगाना, चौगान फत्तु, पक्का डंगा, मस्तगढ़, पुरानी मंडी, पहाड़ियाँ, रघुनाथपुरा, तथा प्रताप गढ़ इत्यादि। इन के अतिरिक्त जम्मू के आस पास पटोली मगोत्रेयां , राजपुरा मंगोत्रयां, सतवारी, डिगयाना के चारों ओर कई नई बस्तॅिया भी बिकसित हुई हैं।

स्वतन्त्रोपरान्त जम्मूः- भारत विभाजन के बाद राजौरी, पुंछ, मीरपुर कोटली और भिम्बर आदि सीमावर्ती क्षेत्रों में पाकिस्तान की सेना और कवाइलियों ने जो साम्प्रदायिक दंगे भड़काये और नगरों में लूट-पाट मचाई उसका परिणाम यह निकला कि इन क्षेत्रों के हज़ारों की संख्या में शरणार्थी अपने-अपने नगरों से पलायन करके जम्मू के शरणार्थी शिविरों में जमा हो गए। कई शरणार्थी मुज्जफराबाद और पंजाब से पलायन करके भी जम्मू आ गए। पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर के एक बड़े भाग पर अनोधिाकार कर लिया। इसमें पुंछ का पलंदरी क्षेत्र, मीरपुर, कोटली, भिम्बर आदि का क्षेत्र सम्मिलित था। मुज्जफरावाद भी पाकिस्तान के अधिकार में था। जो जम्मू-कश्मीर के स्थायी निवासी थे उनके लिए जम्मू-कश्मीर सरकार ने जम्मू के आस-पास कई नई कालोनियाँ बसाई जिनमें बख्शीनगर और कोटली कालोनी मुख्य थी। किन्तु शरणार्थियों की संख्या इतनी अधिक थी और जम्मू पर जनसंख्या का इतना अधिक बोझ पड़ चुका था कि पुराने जम्मू में सबका बसना सम्भव नहीं था, अतः सरकार ने जम्मू में जम्मू निवासियों के लिए भी कई नई कालोनियाँ बसाई जिन में गाँधी नगर, शास्त्री नगर, छन्नी हिम्मत, सैनिक कॉलोनी, त्रिकूटानगर, रुप नगर, जानीपुर आदि प्रमुख थीं। बहुत सी कालोनियाँ बाहुदुर्ग के पार्श्व में भी बसीं जिन में सिद्धड़ा की कालोनी भी एक है। इसके अतिरिक्त दर्जनों छोटी-मोटी गैर सरकारी कॉलोनियाँ आवाद हुई। जम्मू में बोझ बढ़ने का एक कारण यह भी था कि लोकतान्त्रिक सरकार ने नगरों में अधिक सुविधाएँ दी और ग्रामों को उन सुविधाओं से वंचित रखा। अतः हज़ारों सम्पन्न और गैर सम्पन्न ग्रामीण परिवार भी जम्मू की ओर दौड़े। परिणाम स्वरुप जम्मू में पटोली कालोनी, विकास नगर सुभाष नगर भगवती नगर आदि दर्जनों कालोनियाँ आवाद हुई। जम्मू का विस्तार अमर महल से लेकर बड़ी ब्राह्मणा तक एक ओर सुजुवां से लेकर पलौहड़ा तक दूसरी ओर हुआ। सन् 1989-90 में कश्मीर में जब आतंकवाद ने जोर पकड़ा तो घाटी से भी लाखों की संख्या में राष्ट्रवादियों ने पलायन किया जिन में हिन्दू, मुसलमान सिक्ख सभी थे। उनका बोझ भी जम्मू पर पड़ा और जम्मू की जन संख्या जो सन् 1847 में केवल दस हज़ार थी 1990 में बढ़ कर दस लाख से भी अधिक हो गई। आज स्थिति यह है कि जम्मू नगर डुग्गर प्रदेश का ही नहीं अपितु हिमालयी नगरों में सबसे भव्य-विशाल और विस्तृत नगर है।

जनजीवन (नागरिक जीवन) जम्मू मूलतः कई जातियों का नगर है। इसमें राजपूत, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, हरिजन, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन सभी मिलजुल कर भातृभाव में रहते हैं। पहले जम्मू निवासियों को

'जमवाल' ही कहा जाता था। इसमें राजपूत और ब्राह्मण दोनों पारगणित थे। किन्तु बाद मे वे यदि जम्मू के बाहर भी बसें तो भी उन्हें जम्मू वाला अर्थात् जमवाल ही कहा जाने लगा है। अब जम्मू में वलौरिया, चाड़क, हिन्ताल, डडवाल, चौहान, बन्दराल, भलवाल आदि अनेक प्रशाखाओं के लोग बस रहे हैं। पुराने जम्मू में ब्राह्मणों की संख्या भी पर्याप्त है इन में केसर, बड़ेयाल, पाधा, केरणी, बल्कुड़िये खजूरिये, लखनपाल, थर्मट्ट, सदोत्रे, सन्मोत्रे, ठप्पे, रैणा, कौल, धर, वाली, मगोत्रे, पलासर (पराशर) आदि प्रमुख हैं। माना जाता है कि जम्मू के कई क्षत्रीय पंजाबी हैं। ये भी कई शाखाओं और प्रशाखाओं में बंटे हैं जिन में आनन्द, मल्होत्रा, खन्ना, मैंगी आदि प्रमुख हैं। महाजनों की भी कई शाखाएँ हैं यथा जंडेयाल, पावे, कैलू, मलोतरे आदि। हरिजनों में मेघ, महाशे (डोम) सरैरे तथा रामदासिये (चमार) वटवाल आदि परिगणित हैं। इसी प्रकार मुसलमानों की भी कई प्रशाखाएँ हैं जिनमें गुज्जर, वकरवाल, पठान, मुगल, मीर, खान, सैय्यद, नक्सबंदी, राथर, आदि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अंचलों, क्षेत्रों तथा प्रदेशों से आए लोगों की जीवन शैली में भी अन्तर है। अंचलों के आधार पर भद्रवाही, किश्तवाड़ी, पोगली, सिराजी, पुंछी, मीरपुरी, कोटलवी, बनिहाली, रामवनी आदि कईनामों का प्रचलन है। ये लोग चाहे जम्मू की मुख्य धारा में हिलमिल गए हैं फिर भी इन की अपनी अलग बोली-भाषा, वेश, खान-पान और रीति-रिवाज़ हैं जिनका निर्वाह ये लोग परम्परागत ढ़ग से करते आ रहे हैं। जम्मू का सिक्ख समाज, जम्मू का जैन समाज, जम्मू का क्षत्रीय समाज, जम्मू का गुज्जर समाज़, जम्मू का ब्राह्मण समाज, जम्मू का राजपूत समाज, जम्मू का रामदासिया समाज, जम्मू का ईसाई समाज, जम्मू का मुस्लिम समाज ये सभी समाज छोटी-छोटी संस्थाओं में विभाजित हैं। इनके अपने-अपने केन्द्र हैं, अपने-अपने भवन हैं। वे कभी केवल अपनी विलादरी के भले के लिए ही सोचते हैं किन्तु जब संस्कृति या राष्ट्रहित की बात आती है तो ये संगठित भी हो जाते हैं।

संस्कार:- जम्मू के डोगरा परिवारों में मुख्य रुप से निम्न संस्कार सम्पन्न होते हैं:-

1. जन्म सम्बन्धी संस्कार:- बच्चे के जन्म से पहले डुग्गर में 'रीता' या डुआ संस्कार ही अब सम्पन्न होता है। गर्भ धारण के आठवें महीने और कई परिवारों में नवे महीने पहला गर्भ धारण करने वाली कुलवधु को 'पीढ़े' पर बैठाया जाता है। नाइन उसके बाल संवारती है और घर की महिलाएँ लोकगीत गाती हैं और अनुष्ठान सम्पन्न करती हैं। गर्भवती महिला को कई उपहार दिए जाते हैं जिन में वस्त्र, आभूषण, शुष्क फल इत्यादि होते हैं। देवर

भाभी के सिर पर छतरी तानता है और उपहार प्राप्त करता है। वस्त्रों के रुप में मायके के लोग भी उपहार भेजते हैं। इस दिन 'सुंड' भी बाँटी जाती है। यह एक पौष्टिकाहार है। गर्भवती महिला को भी सुंड खिलाई और पिलाई जाती है।

पहले लड़के के जन्म पर तो उत्सव मनाया जाता था किन्तु कन्या के जन्म पर मायूसी का वातावरण छा जाता था । और अब स्थितियाँ बदल गई हैं। लड़कियों को भी बेटे के समान प्यार मिल रहा है। जातक के पाँचवें दिन पंजाब और ग्यारहवें दिन 'सूतरा' होता है। मायके के लोग भी इसमें सम्मिलित होते हैं और नवजात शिशु को उपहार भेजते हैं। इस दिन किसी कन्या से बच्चे का नाम भी उच्चारित करवाया जाता है। भोज और संगीत का कार्यक्रम भी चलता है।

मुंडनः- लड़के के जन्म के साथ ही दात्री के लिए कुछ वर्जनाएँ भी आरम्भ हो जाती हैं जो मुंडन संस्कार पर समाप्त होती हैं। जैसे माता तथा पुत्र के कपड़ों का रंग परिवार तथा कुल के अनुसार अपनाया जाता है। कुछ रंग बर्जित हैं। कई परिवारों में महिला को गिद्दी बांधना पड़ती थी, किन्तु अब इसका रिवाज नहीं है। कई घरों में पति-पत्नी को इकट्ठे उठने-बैठने और सोने की भी मनाही थी, किन्तु अब ऐसा नहीं है। शुभ मुहुर्त या कुल की रीति के अनुसार मुंडन संस्कार घर में या कुल-देवता के मंदिर में जाकर किये जाते हैं। बाल संभाल कर रखे जाते हैं। भोज गाजा-बाजा और गीत संगीत भी होता है। प्रायः लड़के को पीले-वस्त्र पहनाये जाते हैं। इस अवसर पर कुल परिवार तथा सम्बन्धी इकट्ठे होते हैं और दोनों ओर से उपहारों का आदान प्रदान किया जाता है।

यज्ञोपवीतः- पहले दस, बारह या सोलह बर्ष की आयु में बच्चे का यज्ञोपवीत संस्कार आयोजित होता था। उसे विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल भेजने की परम्परा भी थी। किन्तु अब यह सब संकेतात्मक है। बच्चे को जनेऊ पहना दिया जाता है और इस अवसर पर भोज दिया जाता हैं। अब यह संस्कार भी विवाह के अवसर पर भी सम्पन्न होने लगा है।

विवाहः- महाराजा रणजीतदेव के शासनकाल में और उससे भी पहले डुग्गर में विवाह से सम्बन्धित 'निस्बत' प्रथा का प्रचलन था। इस प्रथा के अन्तर्गत कई लोग लड़की के माँ-बाप से सम्बन्ध बढ़ाते फिर उन्हें लड़की का रिश्ता करने को विवश करते। यदि माँ-बाप रिश्ता न मानते तो वे हाकम से शिकायत करते। हाकम लड़के वालों से नज़राना लेकर लड़की वालों पर दबाव डालता कि वे दंड भी भुगतें और लड़की का रिश्ता भी करें। इससे

लड़की के साथ बहुत अन्याय होता था। राजा रंजीत देव ने इस प्रथा को बंद किया और आदेश दिया कि केवल वही रिश्ते वैध माने जाएंगे जिसमें लड़की का भाई शगुन लेकर लड़के के घर जाएगा और लड़के वाले विलादरी के लोगों के सामने शगुन स्वीकार करेंगे। इस अवसर पर ढोल-बाजा बजाना और गाँव के चौधरियों को बुलाना भी आवश्यक था। ऐसा होने से लड़कियों पर अत्याचार कम हुए और उनके विवाह होने लगे यहाँ उनके माँ-बाप की इच्छा होती। जोर-जबरदस्ती का दौर समाप्त हुआ। कई समाज शास्त्रियों का विचार है कि निस्बत प्रथा एक प्रकार से कन्या विक्रय प्रथा थी और यह प्रथा कई कबीलों में अब भी प्रचलन में हैं। माँ-बाप लड़की का मूल्य लेते हैं और लड़की को दुल्हन के रुप में बेच देते हैं।

पुराने डोगरा समाज में जिस में जम्मू भी समाहित था विवाह सम्बन्ध ी कई प्रथाएँ थी जैसे:- (1) दोहरी प्रथा (2) मालिया प्रथा (3) अपहरण प्रथा, राक्षस प्रथा, धर्म-पुण्य प्रथा। दोहरी प्रथा के अन्तर्गत जिस परिवार को लड़की दी जाती थी उस परिवार की लड़की या अन्य परिवार की लड़की ली जाती थी। मालिया प्रथा के अन्तर्गत लड़की का मूल्य दिया जाता था। अपहरण में लड़का लड़की का अपहरण करता था। कई परिवार इस प्रथा को श्रेष्ठ मानते थे । उनका कथन था कि यदि भगवान कृष्ण रुक्मणि का अपहरण करके उसके साथ विवाह कर सकते हैं तो उनके अनुयायी ऐसा क्यों नहीं कर सकते। राक्षस प्रथा में लड़की की इच्छा के विरुद्ध विवाह किया जाता। धर्म पुण्य प्रथा को श्रेष्ठ माना जाता। कन्यादान को उच्च माना जाता और दान में दी गई लड़की के घर से कोई वस्तु ग्रहण नही की जाती।

मृत्यु संस्कार:- इस संस्कार के अवसर पर समधि कई अभ्रद्र व्यवहार भी करते। वृद्ध महिला अथवा पुरुष की मृत्यु पर ढोल बजाते और नाचते गाते हुए आते। बुढ़िया की मौत पर वारात लेकर आते। संतप्त परिवार के लोगों पर होली करते। मृत का शव एक कमरे में बंद कर देते और कर लेकर छोड़ते। किन्तु धीरे-धीरे सब बदल गया। संस्कार तो वही हैं किन्तु रीतियाँ वह नहीं रहीं।

पर्व-त्योहार और अनुष्ठान:- जम्मू में वैसाखी के साथ ही त्योहारों का शुभारम्भ होता। इस दिन लोग तवी नदी में स्नान करने जाते फिर नहर पर मेला देखते। मेला का विशेष आकर्षण भिन्न-भिन्न ग्रामों से आई भांगड़ा की टोलियों की प्रतियोगिता होता। इसके बाद अक्षय तृतीया आती। इस दिन लक्ष्मी नारायण की पूजा की जाती। व्रत रखा जाता। यह व्रत वैसाख मास की शुक्ल तृतीया को आयोजित होता। वैसाख की शुक्ल चतुर्दशी को नृसिंह चतुर्दशी ब्रत

का आयोजन होता और भगवान नृसिंह की पूजा की जाती। इसके बाद बड़ा व्रत निर्जल-अकादशी का आता। लोग गुड़ का पानी घर-घर जा कर पिलाते फिर आता धर्म ध्याड़ा या धर्म देह का पर्व। इस दिन नदी-नालों जलाशयों में मेले आयोजित होते। नव विवाहिताओं को उपकार भेजे जाते। यह त्योहार आषाढ़ मास की संक्रांति को आयोजित होता। इसके बाद शुरु होते रुट्ट राड़े। यह लड़कियों का त्योहार पूरा महीना चलता। लोक कला का प्रदर्शन होता। लड़कियों को उपहार देकर प्रोत्साहित किया जाता। फिर आ जाती व्यास पूर्णिमा। गुरुओं के डेरों पर बड़े-बड़े मेले लगते। भाई-बहन का त्योहार रक्खड़ी सावन महीने की पूर्णमाशी को आयोजित होता। इसके बाद चन्नन छट्ट जन्माष्टमी से दो दिन पहले आती। यह महिलाओं का त्योहार बड़ी आस्था से मनाया जाता। भादों मास की अष्टमी को जन्माष्टमी, और नौवीं को गुग्गा नौंवी का त्योहार आता। जन्माष्ठमी के दिन कृष्ण के लिए पंगूड़े बनते और गुग्गा नौमीं के दिन गुगैहल नाची जाती और सर्पपूजा की जाती। इसके बाद बच्छ-दुआह, द्रुबड़ी, नागपंचमी, हरदालका, वामन द्वादशी, अनन्त चतुर्दशी, के व्रत और पर्व वड़ी श्रद्धा से मनाये जाते। कार्तिक में आरम्भ होते नराते। लड़कियों के कई दल बनते, वे गड़वे उठा कर नहाने जातीं और अन्त में थाली फेरी जाती जिस में राधा और कृष्ण की झांकी निकाली जाती। नवरातों के बाद दशहरा आता, रावण दहन होता, शरद पूर्णिमा के दिन लोग खीर बनाते और उसे चाँदनी में रखने के बाद इसलिए खाते कि इससे शरीर रोग मिटते। उसके बाद महिलाओं के त्योहार करवा चौथ होई तथा धन त्रयोदशी का पर्व आता और फिर आती देआली। देआली को दिन ढलेत मिट्टी के दीपक सारी रात टमटमाते। गोवर्धन पूजा सामूहिक होती थी। इस पर्व के बाद जम्मू में टिक्का का त्योहार मनाया जाता। इस दिन विवाहिता बहने -अपने भाईयों के लिए टोकरों में खमीरे भर-भर कर लाती।

टिक्का के बाद आता गोपाष्ठमीं का त्योहार। यह त्योहार कार्तिक मास की शुक्ल-अष्ठमी को होता। घर की महिलाएं और पुरुष पशुओं के गले मे फूलों के हार पहना कर उनकी पूजा करते। इसके बाद अक्षय नौमी का त्योहार आता। पहले दिन पशु-पूजा और दूसरे दिन होती आंवली वृक्ष की पूजा। लोग पीली खिचड़ी बनाते और खाते। वृक्ष पूजा के बाद जम्मू के लोग पंच भीखम के दिनों नदी की पूजा करते। कार्तिक महीने की शुक्ल एकादशी से लेकर पूर्णमाशी तक यह पूजा चलती। महिलाएँ व्रत भी रखती। तुलसी की पूजा भी करतीं। कई बार तुलसी का विवाह भी आयोजित होता। वारात आती, वारातियों को खाना खिलाया जाता। 'सतसागा' उस दिन विशेष रुप से बनाय

जाता। इसके बाद आता भुग्गे का ब्रत' महिलाएँ तिली और गुड़ मिला कर लड्डु बनातीं, खुद खातीं परिवार को खिलातीं। सर्दियों में तिली से बढ़िया और पौष्टिक व्यंजन भला कौन सा हो सकता था। इस ब्रत के बाद आता ढोल और धूम मचाता लोहड़ी पर्व। पूरा जम्मू ही इस त्योहार की लपेट में आ जाता। पूरा महीना लड़के और लड़कियां लोहड़ी मांगते फिर होती आग जला कर लोहड़ी की पूजा। रात या दिन को हरिण नाच होता, छज्जा नचाया जाता, शशि मुन्नु की झलकियाँ निकलती। इस त्योहार की याद अभी लोग भूल भी न पाते मकर सक्रांति का पर्व आ जाता। खूब दान पुण्य और नदी स्नान होता। बसन्त पंचमी के दिन तो महलों में दरवार सजता, नृत्य गीत संगीत के कार्यक्रम होते, हाथी-घोड़ों पर झांकियाँ निकाली जाती। शिवरात्रि के दि- पंच वक्तर के मंदिर और पीर खोह के स्थान पर बड़े-बड़े मेले लगते। लोग शिव की आरतियाँ गाते। होली का पर्व भी कम आनन्ददायक न होता। पहले पूरे पाँच दिन होली का रंग घर-घर जाकर फैंका जाता। बच्चों का तो यह मनचाहा त्योहार होता। होली के पश्चात् राम नवमी बड़े उत्साह से मनाई जाती। इस दिन भव्य जलूस निकाला जाता और झांकियां निकलती।

आज भी जम्मू में ये सभी पर्व और त्योहार परम्परागत रुप से मनाये जाते हैं। लोगों में उत्साह भी दिखाई देता है। बहुत से प्रदर्शन भी होते हैं किन्तु जो आत्मियता, जो आस्था और श्रद्धा लोगों में पहले दिखाई देती थी, वह अब नहीं है। अब केवल एक औपचारिकता और परम्परा मात्र ही रह गई है। लोगों की सोच बदली गई है। संकल्प में वह दृढ़ता नहीं दिखती। सब बदला-बदला लगने लगा है।

मुसलमानों के त्योहारः- जम्मू में मुसलमानों के मुख्य रुप से चार त्योहार मनाये जाते और वे हैं:-

शब-ए-बरात यह त्योहार हिजरी साल की चौदहवीं-पन्द्रहवीं शबान को मनाया जाता है। इस से जुड़ी कथा के अनुसार हज़रत मुहम्मद मुस्तफा साहब के तीन भक्त थे- हज़रत बैलाल, हज़रत सदीह तथा हज़रत अवैश। हज़रत अवैश को जब यह पता चला कि हज़रत मुहम्मद साहब के चार दाँत टूट गए हैं तो हज़रत अवैश ने अपने सारे दान्त तोड़ दिए। इसी घटना के कारण मुसलमान हज़रत मुहम्मद साहब तथा हज़रत अवैश साहब को नर्म तथा मीठे पदार्थ भेंट करते हैं और न्याजए फतीहा करते हैं।

ईदः- मुसलमानों में तीन ईदें मनाई जाती हैं। पहली ईद-ए मेलाद है। ईद-उल फितर रज़मान महीने के बाद आती है, अतः इसे बहुत पवित्र माना जाता है। इस दिन मस्जिद में नमाज़ अदा की जाती है तथा निर्धनों को दान

दिया जाता है। ईद-उल-जोहा को बकरीद भी कहते हैं। इस दिन प्रिय वस्तु की कुर्बानी दी जाती है। ईद-ए-मेलाद हज़रत मुहम्मद के जन्म दिवस के रुप में मनाई जाती है। इस दिन सामूहिक नमाज़ पढ़ी जाती है तथा निर्धनों को दान दिया जाता है।

उर्स:- 'उर्स' पीरों के निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में मनाये जाते हैं। ये हिन्दू-मुसलमान और सिक्खों के सांझा त्योहार हैं। इस दिन पीरों के नाम पर जो भंडारे किए जाते हैं उसमें सभी धर्मों और सम्प्रदाय के लोग सम्मिलित होते हैं। पीरों के स्थानों में कब्बालियों का आयोजन भी होता है जिन का मूल विषय अध्यात्मवाद, मानवता वाद एवम समतावाद होता है। जम्मू में जिन पीरों के उर्स मनाये जाते हैं उनमें उल्लेखनीय नाम हैं:- बावा वुद्धन शाह, बावा रोशन शाह बली, पीर मिट्ठा, पंचपीर तथा गरीब साहब उर्स का आयोजन पीर खानों में होता है जिन्हें खानकाह भी कहा जाता है।

सिक्खों के पर्व:- सिक्ख सम्प्रदाय के सभी पर्व सिक्ख गुरुओं के जन्म-दिवस, बलिदान दिवस अथवा प्रकाश- दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित किए जाते हैं। इन पर्वों में हिन्दू भी सम्मिलित होते हैं।

बुद्ध जयन्ती:- यह पर्व पहले जम्मू के पाडर क्षेत्र में ही मनाया जाता था किन्तु अब जब से जम्मू-विश्व-विद्यालय में बौद्ध संस्थान खुला है, जम्मू में भी मनाया जाने लगा है। जम्मू में इसका आयोजन इंडियन सोसायटी फार बुद्धिस्टस्टडी' की शाखा की ओर से किया जाता है। इस दिन जम्मू में बौद्ध-दर्शन पर चर्चा होती है।

महावीर जयन्ती:- जम्मू में लगभग दो हज़ार जैनी रहते हैं। इनके जम्मू में मंदिर, औषधालय और स्कूल हैं। महावीर जयन्ती के अवसर पर जैनी बड़ी संख्या में मंदिर में इकट्ठे होकर महावीर की पूजा करते हैं। दोपहर या सायंकाल को जैन महाविद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता है जिसमें सभी धर्मों, सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त सितम्बर महीने में सामूहिक ब्रत भी रखते हैं।

गुरु रविदास का जन्म दिवस:- गुरु रविदास जी का मुख्य मंदिर कृष्णा नगर में है। प्राय: जनवरी मास में जम्मू तथा निकटवर्ती ग्रामों के लोग इस दिन मंदिर में इकट्ठे होकर सामूहिक कीर्तन करते हैं और शोभा यात्रा निकालते हैं।

क्रिसमिस:- इसाईयों मे 25 दिसम्बर से लेकर 31 दिसम्बर तक जो त्योहार मनाये जाते हैं उन्हें क्रिसमिस का त्योहार कहते हैं। इन दिनों ईसाई हर्ष और उल्लास के साथ एक दूसरे से मिलते हैं और चर्चों में प्रार्थना करने जाते

हैं। क्रिसमिस को विश्व का सबसे बड़ पर्व माना जाता है।

इन पर्व और त्योहारों के अतिरिक्त जम्मू में स्वामी दयानन्द सरस्वती की स्मृति में आर्यसमाज, गुरु नाभादास जी की याद में महाशा-सभा, विवेकानन्द की याद में राम-कृष्ण मिशन, कबीरदास की स्मृति में कबीर पंथी, गाँधी जी की स्मृति में गाँधी स्मारक निधि और स्वामी नित्यानन्द की स्मृति में स्वामी नित्यानन्द स्मारक समिति प्रकाशदिवस या जयन्तियों का आयोजन करता है जिस में बड़ी संख्या में जम्मू निवासी सम्मिलित होते हैं।

तवी पुल तथा यातायात:- जम्मू का मुख्य आकर्षण तवी नदी है। किन्तु वर्षा ऋतु में इस नदी को पार करना कठिन होता था। अत: इस नदी को या तो नाव से पार किया जाता या सनाहियों से तवी के आर पार आया और जाया जाता। कई बार नाव भी नहीं चलती थी। अत: तवी पर पुल की आवश्यकता थी। गज़ैटर आफ कश्मीर एंड लद्दाख में लिखित है- 'सन् 1875 ई. में प्रिंस आफ वेल्स के जम्मू आगमन पर किश्तियों का पुल बना था जिस पर शाही वग्गी तवी को पार करके आई थी। इसके बाद यह पुल आम हो गया। इस का रसूम एक पैसा था। अत: स्पष्ट है कि तवी पर जो पहला पुल बना वह जनता के लिए नहीं एक शाही मेहमान के आगमन पर बनाया गया जनता यदि उस पुल को पार करती तो उसे टैक्स देना पड़ता। किश्ती पुल के बहुत बाद तवी पर पक्का पुल बना। आज इस नदी पर चार पुल हैं और गाड़ियाँ-मोटरें तथा लोग बिना कर दिए इसे पार कर रहे हैं।

यहाँ तक यातायात का प्रश्न है इसी गजेटर में लिखा है:- 'स्याल कोट की सीमा से लेकर गुम्मट तक कच्ची सड़क थी जिस पर बैल गाड़ियाँ चलती थीं। उन दिनों जम्मू में भी सड़के नहीं थीं। यात्री पहले गुम्मट पहुँते चले। फिर गुम्मट की ढक्की चढ़ते आगे बाज़ार आता। फिर सिटी चौक तक बीच-बीच में दुकानें और घर थे। सिटी चौक से आगे फिर पुरानी मंडी तक ढक्की थी। कहते हैं कि महाराजा हरिसिंह के राजतिलक पर। इसे सड़क में बदला गया। जम्मू में पहली कार महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल में आई तो शहर में भी कुछ खुली कच्ची-पक्की सड़कें बनीं। इन सड़कों पर महाराजा और महारानी की कारें दौड़ने लगी। किन्तु जैसे-जैसे गाड़ियों का युग आया पूरे शहर के मुख्य बाज़ार सड़क से जुड़ गए। आज़ादी से कुछ पहले और बाद में यातायात में वृद्धि हुई। आज स्थिति यह है कि एक संस्था द्वारा करवाये गए सर्वेक्षण के अनुसार टोकियो (जापान) के बाद जम्मू ऐसा नगर है जिसकी सड़कों पर वाहन सर्वाधिक दौड़ते हैं।

व्यवसाय तथा उद्योग:- आरम्भ में जम्मू के लोगों का मुख्य

व्यवसाय कृषि और पशुपालन था। किन्तु बाद में और विशेष रुप से महाराजा रंजीत देव के शासनकाल में जम्मू व्यापार की मंडी बना तो कई लोगों का व्यवसाय दुकानदारी, व्यापार, शाहुकारी और ठेकेदारी हो गया। व्यवसायिक जातियाँ यथा रामदासिये, कुम्हार, लुहार सोची, जुलाहे, बटहरे, ठठारके, तरखान, धीवर आदि अपने अपने व्यवसाय में लगे रहे। किन्तु उद्योगों को प्रोत्साहन केवल महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में ही मिला। सन् 1876 ई. में उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए महाराजा ने जम्मू कश्मीर सड़क का निर्माण कार्य आरम्भ करवाया। महाराजा ने जम्मू में रेशम का कारखाना खोला। जम्मू में कागज़ बनाने का कारखाना लगा। एक कारखाना नील तैयार करने के लिए लगाया गया। अब स्थिति यह है कि जम्मू में सैकड़ों छोटे बड़े कारखाने हैं।

रेलः- महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में सन 1890 ई. में स्यालकोट के मार्ग से जम्मू में रेल यातायात आरम्भ हुआ। इससे जम्मू रेल से जुड़ गया जम्मू निवासियों को पंजाब तथा अन्य स्थानों में आने और जाने में सुविधा हुई। जम्मू-श्रीनगर सड़क जो पहले केवल टाँगों के लिए थी सन् 1913 को गाड़ियों के लिए भी खोल दी गई।

नहर तथा नलः- महाराजा रणवीर सिंह के आदेश पर चन्द्रभागा नदी से जिस नहर को जम्मू में लाया जाना था, वह काम सन 1912 में महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में पूरा हुआ। सन 1889 ई. में तीन लाख रुपये खर्च करके पहली बार जम्मू में नल लगवाये गए जो लोगों के लिए आश्चर्य थे।

शिक्षा केन्द्रः- जम्मू में पहले औपचारिक शिक्षा क़ी कोई व्यवस्था न थी। बच्चे पंडितों के घरों में या मंदिरों में पढ़ने तो जाते थे किन्तु पढ़ाई का समय निश्चित नहीं था। कुछ बच्चे मौलवियों के पास भी जाते थे। वहाँ उन्हें धार्मिक शिक्षा ही मिलती थी। दुकानदार तथा अन्य व्यवसायी टाकरी, डोगरी या लंडे का ज्ञान घर में या किसी बुर्जुग से प्राप्त करते थे। महाराजा रणवीर सिंह शायद पहले महाराजा थे जिन्होंने जम्मू में पाठशाला और स्कूल शिक्षा क़ा प्रचलन किया। पाठशाला का नाम रणवीर संस्कृत पाठशाला था। रघुनाथ मंदिर और रणवीरेश्वर मंदिर में एक-एक पाठशाला का संचालन धर्मार्थ ट्रस्ट करता था। महाराजा रणवीर सिंह ने जम्मू में पहला रणवीर स्कूल खोला। इससे जम्मू के छात्रों को पढ़ने का अवसर मिला। महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में जम्मू में पहला कॉलेज प्रिंस आफ वेल्स 1901 ई. में खुला। अब जम्मू में एक विश्व विद्यालय, दर्जनों कॉलेज और सैकड़ों स्कूल हैं।

मनोरंजनः- महाराजा प्रताप सिंह और उसके शासन से पहले जम्मू के लोगों के जो शौक थे वे अलग ही प्रकार के थे। उन दिनों मुर्गों की लड़ाई बटेरों में लड़ाई मेढ़ों की लड़ाई देखना मनोरंजन का मुख्य साधन था। लोग शौक के लिए तोते, बटेर, भिड्डु तथा साँप भी पालते थे। कई लोग गर्दन में साँप लटका कर भी चलते थे। किन्तु रेडियो, सिनेमा और दूरदर्शन ने लोगों की अभिरुचि को ही अब बदल दिया है। फिर भी कई लोगों के घरों में आज भी पालतु तोते, बटेर तथा साँप तो हैं किन्तु इन शौकों को अब कोई महत्व ही नहीं देता है।

छिंजः- जम्मू के लोगों की रुचि छिंजों में प्राचीनकाल से ही रही है। पीरों के नाम पर उतम खेती और वर्षा के लिए छिंजें कराई जाती रहीं है। छिंजों के लिए पहलवान तैयार किए जाते हैं। इसके लिए जम्मू में कई अखाड़े थे जिन में पीर खोह का अखाड़ा अति प्रसिद्ध था। अब जम्मू नगर में छिंजों का प्रचलन तो कम हो गया है किन्तु नए ढंग के दंगल आरम्भ हुए हैं जिन में लोगों की रुचि बढ़ रही है।

खेलें:- जम्मू में खेलने के लिए राजाओं ने एक खुला मैदान छोड़ा हुआ था जिसे परेड कहते हैं। जम्मू के बच्चे प्रायः प्रातः और सायं यहाँ खेलने एकत्रित होते हैं। पहले स्थानी खेलों को पसंद किया जाता था जिन में कबड्डी, गुल्ली डंडा, कोरड़ा शपाकी, ठीकरी-मठीरी, समुन्द्रटप्प, घाघर फिस्सी गुती, सतोलिया, किक्कली, रस्सा टप्प, खो-खो आदि प्रमुख हैं किन्तु अब इनका महत्व गौण हो गया है और इनके स्थान पर विदेशी खेल यथा क्रिकेट, फुटवाल, वालीवाल, टेनिस का प्रचलन बढ़ा है। जम्मू में खेलने के लिए अब एक नया मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद स्टेडियम भी बना है जिस में प्रत्येक प्रकार की खेलें खेलने की व्यवस्था है।

नृत्यः- भांगड़ा, फुम्मनी, गुगाहल, गिद्दां तथा जागरणा जम्मू के लोगों के प्रिय नृत्य रहे हैं। किन्तु अब फुम्मनी और गुगाह्ल का प्रचलन केवल गाँवों तक ही सीमित रह गया है।

अभिनय तथा रंगमंचः- जम्मू में महाराजाओं के शासनकाल में वृन्दावन तथा अन्य प्रान्तों से रास मंडनियाँ आती थी जो चन्दरौली, रास आदि नृत्य तथा नाटकों का प्रदर्शन करती थीं। जम्मू में पारसी थियेटर का भी कुछ समय के लिए प्रचलन बढ़ा, किन्तु स्थानीय कलाकारों ने जब संगठित होकर जम्मू में दीवान मंदिर या अन्य किसी दूसरे स्थल पर राम-लीला का खेल आरम्भ किया तो इस खेल ने जम्मू में कई अभिनेता तैयार किये और रंगमंच

के लिए भूमिका तैयार की। जम्मू रंगमंच ने राष्ट्रीय स्तर के कलाकार तैयार किये और कहा जाता है कि, सहगल और ओम प्रकाश जम्मू रंग मंच की देन है। आज़ादी के बाद जब कल्चरल अकादमी का गठन हुआ तो अकादमी की ओर से भी नाटक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाने लगा। इससे रंगमंच से जुड़ी कई संस्थाएँ सामने आई जिन्होंने न केवल जम्मू में अपितु राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की। 'नटरंग' जम्मू की एक ऐसी ही संस्था है। इसके निदेशक बलबन्त ठाकुर हैं जिन्होंने ज़म्मू रंगमंच का नाम उभारा है। दीपक का रंग युग तथा फ्रैंड्स क्लव के अतिरिक्त कई छोटी-बड़ी अनेक संस्थाएँ हैं जो रंग मंच को प्रचारित कर रही हैं। दूर दर्शन तथा सिनेमा ने रंगमंच को पीछे अवश्य धकेला है किन्तु फिर भी जम्मू का रंगमंच गौरव मंय रहा है।

चित्र एवम स्थापत्य कला:- जम्मू में चित्रकला का उदय माना जाता है कि बसोहली चित्रकला के बाद हुआ। इसे जम्मू के महाराजा रंजीत देव के भाई बलवन्त देव ने संरक्षण दिया। उसी के समय में जम्मू का प्रसिद्ध चित्रकार नयन सुख हुआ जिसने 'जम्मू कलम' को जन्म दिया। विशेषज्ञ मानते हैं कि जम्मू कलम कांगड़ा और बसोहली की चित्र कला से भिन्न है और इसमें बहुत सी बातें यथा हाशिया,रंग और मुखाकृतियाँ भिन्न हैं। जम्मू कलम में बने घनसार देव, सूरत देव तथा ध्रुवदेव के चित्र डोगरा आर्ट गैलरी जम्मू में प्रदर्शित हैं। जम्मू कलम तथा चित्रकला को आगे बढ़ाने का श्रेय जिन चित्रकारों को दिया जा सकता है उनमें संसार चन्द, देवी दास, हरिराम, ओम शर्मा सारथी तथा नृसिंह देव जमवाल के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। जम्मू में भीतिचित्र कला का विकास डोगरा राजाओं के शासन काल में बहुत हुआ। जम्मू के अधिकांश मंदिरों में जिनमें सावित्री मंदिर विशेष रुप से उल्लेखनीय है, भीति-चित्रों से सुसज्जित हैं। यहाँ तक स्थापत्य कला का सम्बन्ध है, जम्मू में इसके कई रुप मिलते हैं। जम्मू के प्राचीन महल राजस्थानी स्थापत्य से प्रभावित लगते हैं। मूर्ति कला के क्षेत्र में विद्यारत्न, विहारी लाल तथा रवीन्द्र जमवाल का योगदान उल्लेखनीय है।

भाषा और साहित्य

जम्मू की प्रमुख भाषा डोगरी है। महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में इसे 'राजभाषा' का पद भी प्राप्त रहा। डुग्गर के सभी राजा, सामंत तथा व्यापारी इसी भाषा का प्रयोग करते थे। उनमें जो पत्र व्यवहार होता वह डोगरी में ही होता। डोगरी की अपनी लिपि भी रही है जिसे पहले टाकरी और बाद में 'डोगरा अक्खर' कहते थे। इस लिपि में कई त्रुट्टियां थी जिन्हें विद्वानों ने

महाराजा रणवीर सिंह के निर्देश पर दूर किया। बाद में डोगरी के लिए देव नागरी लिपि अपनाई गई। इससे यह लाभ हुआ कि जो लोग टाकरी यां डोगरा अक्खर लिखना या पढ़ना नहीं जानते, वे भी डोगरी पढ़ लेते हैं। डोगरी के अतिरिक्त जम्मू में हिन्दी उर्दू और पंजाबी का भी प्रचलन है। आज़ादी के बाद हिन्दी जब से राष्ट्रीय भाषा घोषित हुई है लोगों का ध्यान हिन्दी की ओर अधि क जाने लगा है। आज स्थिति यह है कि जम्मू नगर के स्कूलों में नवें प्रतिशत छात्र हिन्दी का ज्ञान रखते हैं। वे अच्छी प्रकार से हिन्दी बोल, समझ और लिख सकते हैं। उर्दू राज्य की सरकारी-भाषा है। राजस्व विभाग में इसी का वर्चस्व है। जम्मू में इसका प्रचलन आज भी है। किन्तु नई पीढ़ी का झुकाव अंग्रेजी के प्रति है। पंजाबी डोगरी की पड़ोसन है। किन्तु यह खेद की बात है कि इसका जम्मू में पठन और लेखन केवल सिक्ख परिवारों में ही है। इसके अतिरिक्त मीर पुरी, कश्मीरी, पुंछी आदि बोलियों का सीमित प्रचलन जम्मू में है।

साहित्यकारः- कवि दतु को डोगरी का पहला कवि माना जाता है। वे महाराजा रंजीतदेव के राज कवि थे। उन्होंनें अठारह के लगभग हिन्दी में ग्रंथ लिखे किन्तु उ़न को जो ख्याति और मान्यता डोगरी में चार-पाँच छप्पय या पद्यांश लिखने से मिली वह अन्य किसी ग्रंथ से नहीं मिली। उनका डोगरी गीत- 'किल्लिए वतना छोड़ी दिता' डोगरी का आदि गीत माना जाता है। उन के बाद डोगरी में साहित्य सृजन का जो दौर चला उससे डोगरी-साहित्य में अभिबृद्धि ही नहीं हुई अपितु डोगरी की परिगणना राष्ट्रीय-स्तर की भाषाओं में होने लगी। आज स्थिति यह है कि भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में मान्यता प्राप्त जो भाषाएँ हैं उनमें डोगरी भी एक है।

डोगरी- साहित्य के संबर्द्धन तथा विकास के लिए कवि दतु के बाद जम्मू के जिन लेखकों तथा विद्वानों ने सहयोग दिया उन में कवि हर दत्त, मूलराज मेहता, जगन्नाथ कालरा के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन साहित्यकारों ने डोगरी को लोक तत्व से मुक्त कर साहित्यिक रुप दिया उनमें जम्मू के प्रो. रामनाथ शास्त्री, विश्वानाथ खजूरिया, धर्मचन्द प्रशांत, नीलाम्बर देव शर्मा, वेदपाल दीप, पद्मासचंदेव, यश शर्मा, नृसिंह देव जमवाल, कुलदीप सिंह जन्द्रहिया, ओमगोस्वामी,चरणसिंह, नरेन्द्र खजूरिया, वेदराही, मदन मोहन शर्मा, ओमप्रकाश शर्मा सारथी, मोहन सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन साहित्यकारों की शैली में नवीनता, अभिव्यक्ति में प्रौढ़ता तथा अनुभूति में कोमलता देखी जा सकती है। आज डोगरी एक पूर्ण भाषा के रुप में देखी जाती है और साहित्य की सभी विधाओं का साहित्य इसमें उपलब्ध है।

साहित्यिक संस्थाएँ:- डोगरी-भाषा और साहित्य के संवर्द्धन के लिए डोगरी संस्था जम्मू ने जो कार्य किया है, वह स्तुत्य और सराहनीय है। इस संस्था को यह श्रेय जाता है कि सन् 1944 से लेकर आज तक यह संस्था डोगरी-भाषा और साहित्य के प्रचार और साहित्य में कार्यरत है। इस संस्था के संचालन में प्रो. रामनाथ शास्त्री, चम्पा शर्मा, डॉ. ललित मगोत्रा तथा वीणा गुप्ता का योगदान सराहनीय है। शामलाल शर्मा, डॉ. वेद कुमारी घेई ने 'डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट' मोहन सिंह और बसन्त साठे ने 'डुग्गर मंच' हरीश कैला डॉ. ललित शर्मा ने नमीं डोगरी संस्था के द्वारा डोगरी-भाषा की जो सेवा की है उसे जम्मू का साहित्यिक समाज सदैव स्मरण रखेगा।

मंदिरों का शहर-जम्मू।

जम्मू को मंदिरों का शहर भी कहा जाता है। इस शहर में कोई ऐसा बाज़ार, मुहल्ला या गली नहीं यहाँ कोई मंदिर, गुरुद्वारा न हो। वास्तव में जम्मू को मंदिरों का नगर बनाने का श्रेय महाराजा रणवीर सिंह को दिया जा सकता है। उन से पहले जम्मू में जो दो-चार मंदिर थे वे या तो तवी के तट के साथ थे या तट के ऊपरी भाग में थे। अब जम्मू की वर्तमान स्थिति यह है कि इस नगर में पच्चास के लगभग छोटे बड़े मंदिर हैं जिन में विशेष रुप से उल्लेखनीय निम्न हैं:-

शिव मंदिर:- जम्मू में निम्न शिव मंदिर अति प्रसिद्ध हैं:- जामवन्तेश्वर गुफा मंदिर (पीरखोह) शिवनाभ मंदिर, शिव मंदिर-धौंथली, रणवीरेश्वर मंदिर, शालीमार, श्री रणवीरनाभ मंदिर-सतवारी, रानी कल्हूरी मंदिर, स्वामी दताधर मंदिर तवी, दासी का मंदिर तवी तट के साथ, पंचवक्त्र मंदिर, जंगमेश्वर मंदिर, विश्वानाथ मंदिर-पंचतीर्थी, बजीरों का मंदिर-तवी तट जम्मू, आप शम्भु शिव मंदिर- रुप नगर, शिव मंदिर- सतवारी, शिव मंदिर-रिहाड़ी तथा गाँधीनगर।

विष्णु मंदिर:- जम्मू में विष्णु से सम्बन्धित जो मंदिर हैं, उन्हें निम्न वर्गों में रखा जा सकता है:-

1. राममंदिर:- रघुनाथ मंदिर, कटोचरानी का राम मंदिर, बन्दराली रानी का मंदिर, बलौरिया रानी का मंदिर, राम मंदिर बड़ी ब्राह्मणा, सूई का राम मंदिर, बुर्ज का राम मंदिर, राम मंदिर रत्नु चक्क, राममंदिर-गुल्लु का बाड़ा। मोती मंदिर आदि।

2. कृष्ण मंदिर:- राधाकृष्ण मंदिर-पंचतीर्थी, बन्दराली रानी का मंदिर (नालेवाला मंदिर) गुलेरी रानी का मंदिर, बुआ वुटानी का मंदिर, कृष्ण द्वारा (कौडा नाई की दूकान के साथ) आदि।

3. लक्ष्मी नारायण मंदिर:- लक्ष्मी नारायण मंदिर,पंचतीर्थी, लक्ष्मीनारायण

मंदिर- गाँधी नगर जम्मू।

4. अन्य विष्णु मंदिर:- गदाधर मंदिर, मुवारक मंडी जम्मु परशुराम मंदिर- परेड, जम्मू

5. शक्ति मंदिर:- महाकाली मंदिर बाहु, महामाया मंदिर- बाहु चिंतपूर्णी मंदिर- धौंथली जम्मू, शीतला माता का मंदिर, महा लक्ष्मी मंदिर- पक्का डंगा, जम्मू।

6. हनुमान मंदिर:- हनुमान मंदिर, गुम्मट, हनुमान मंदिर प्राचीन मोती बाज़ार, हनुमान मंदिर पुरानी मंडी, जम्मू।

गुरुद्वारे:- जम्मू में मंदिरों के अतिरिक्त कई गुरुद्वारे हैं जिन में निम्न- उल्लेखनीय है:-

1. गुरुद्वारा श्री सिंह सभा:- यह गुरुद्वारा रघुनाथ बाज़ार में है। इसका निर्माण सन् 1941 ई. में हुआ। कहते हैं कि पहले सरदार साजन सिंह जिस मकान में गुरू ग्रंथ साहव का पाठ करते थे, उसी मकान में यह गुरु द्वारा बना।

2. गुरुद्वारा महात्मा निरंजनदास जी:- यह गुरुद्वारा शालामार सड़क पर बना है। इसकी स्थापना उदासी संत निरंजनदास ने की।

3. गुरु द्वारा नानक देव जी:- यह गुरुद्वारा वीर मार्ग जम्मू में स्थित है।

4. गुरुद्वारा सरदार सुन्दर सिंह जी:- इसका निर्माण सरदार सुन्दर सिंह ने करवाया।

5. पंचायती गुरुद्वारा:- यह गुरूद्वारा धौंथली बाज़ार, जम्मू में हैं।

6. गुरु द्वारा नानक नगर:- यह जम्मू का सबसे भव्य गुरुद्वारा है।

इसके अतिरिक्त गंगेआल में नांगली साहब का गुरुद्वारा पूरे जम्मू क्षेत्र में प्रसिद्ध है।

मस्जिदे:- जम्मू में कई मस्जिदे हैं जिन में मस्तगढ़ की मस्जिद सबसे पुरानी मानी जाती है। इसके अतिरिक्त जामअ मस्जिद तालाब खटीकां, मुहल्ला अफगानां की मस्जिद, बजीरनी की मस्जिद तथा गाँधी नगर की मस्जिद जम्मू की प्रसिद्ध मस्जिदे हैं। इसके अतिरिक्त पीर मिट्ठा जम्मू में एक बड़ा इमाम बाड़ा भी है।

पीर खाने तथा खानकाहें:- जम्मू में पीर रोशन शाह वली की दरगाह गुम्मट में, पीर मिट्ठा की पीर मिट्ठा मुहल्ले में, पीर वुडढ़न-अली शाह की जम्मू छावनी में और पंचपीर की दरगाह, रामनगर के जंगल में है। पीरों के प्रति सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग आस्था बद्ध हैं और उनके उर्स जम्मू में बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं।

गिरजा घर:- जम्मू में पुराना गिरजा घर बजारत सड़क पर बना है। यह स्काट् लैंड चर्च से जुड़ा है। बस अड्डा जम्मू के सामने जो गिरजाघर है वह रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। एक चर्च गाँधीनगर में और

एक इंडियन नेश्नल चर्च के नाम से रेडियो कालोनी के निकट है।

जैन मंदिरः- जैन-सम्प्रदाय ने फतु चौगान-जम्मू में एक कलात्मक जैन मंदिर का निर्माण किया है जिस के गर्भगृह में महावीर की मूर्ति संस्थापित है।

इसके अतिरिक्त जम्मू में आर्य-समाज मंदिर, गुरु रविदास मंदिर, गुरु कबीर दास मंदिर, गुरु नाभा दास मंदिर तथा राधा स्वामी मंदिर उल्लेखनीय हैं।

ऐतिहासिक स्मारक

जम्मू में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण को खुदाई में कुषाण कालीन कुछ पुरावशेष तो मिले हैं किन्तु अभी उन पर शोध-कार्य हो रहा है। डोगरा राजाओं के पूर्व जम्मू में जो ऐतिहासिक अवशेष थे, वे भी धीरे-धीरे मिट रहे हैं। पहली सदी में कैदराय का बनाया किला, मस्तगढ़ का किला, धौंथली का किला अब सभी भूमिसात हो गए हैं। पुराना जम्मू जो कभी तवी नदी के तट के साथ-साथ बसा था वह भी तवी की बाढ़ों का ग्रास बना है। अब जो बचा है वह महाराजा रंजीत देव के बाद का है। उसमें भी जो ऐतिहासिक स्मारक हैं, वह निम्न हैं:-

1. **गुम्मट दरवाजा-** राजदर्शनी में महाराजा रंजीत देव के सन्दर्भ में गुम्मट दरवाजा का उल्लेख हुआ है। लगता है यह दरवाजा या तो उसने बनवाया या उससे भी पहले का बना था। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में भी इसका पुर्नोद्वार हुआ है। यह दरवाज़ा बलुआ पत्थर की ईंटों का बना है। इसकी चौड़ाई 2.5 मी. और ऊँचाई अनुमानतः छह मीटर है। द्वार के ऊपरी भाग में छोटे-छोटे तीन श्रृंग बने हैं जिससे यह अति सुन्दर लगता है। इस द्वार के दाये-वायें बुर्ज हैं। बुर्ज और उसके साथ बनी दीवार में मारकरन्ध्र हैं जिससे यह दरवाया किसी किले का अवशेष लगता है। 'जम्मू का इतिहास' इस दरवाजा के साथ कई सदियों से जुड़ा है। दरवाजा के नीचे कई युद्ध और कई लड़ाईयाँ हुई हैं।

महाराजा रणजीत देव के शासनकाल में गुम्मट के साथ जगातखाना था। इस दरवाजे पर पहरा लगा रहता था। इस दरवाजे पर खुफ़िया नवीस बैठता था जो आने-जाने बालों पर दृष्टि रखता था। सिक्ख काल में इसके कुछ ऊपर एक थाना भी बना जो आज भी है। इस थाने से थोड़ी दूरी पर एक हनुमान मंदिर तथा दूसरी ओर पीर रोशन शाह वली की दरगाह है।

2. मुवारक मंडीः- 'डुग्गर का इतिहास' पुस्तक के अनुसार मुवारक मंडी का राजमहलों के लिए चयन सबसे पहले राजा ध्रुवदेव (1703-35 ई) ने किया। उसने इस स्थान का नाम 'दरवार गढ़' रखा किन्तु डोगरा राजाओं के शासनकाल में इसे 'मुवारक मंडी' नाम दिया गया। महाराजा रणवीर सिंह

(1857 - 85 ई) से पहले यहाँ थोड़े से एक मंजिल भवन थे। महाराजा रणवीर सिंह ने इन महलों का पुन निर्माण करवाया और इनमें से कईयों को तिमंजिला किया। कहते हैं कि महाराजा गुलाव सिंह 1857 में जब जम्मू आए तो इन महलों को आश्चर्य से देख कर बोल उठे 'अहा: कितने सुन्दर हैं ये महल, कमाल के हैं ये महल' पत्रकार और लेखक धर्मचन्द प्रशांत के अनुसार 'महाराजा रणवीर सिंह ने महलों को खूब सजाया। एक महल उन्होंने अपनी रानियों के लिए और एक अपने लिए बनवाया। रानियों के महल मे जाने के लिए तीन डियोढ़ियाँ थीं। इन महलों के प्रांगण में मियां मोटा की समाधि बनी है। इसमें एक और खुला स्थान है। इसी स्थान पर महाराजा हरिसिंह का 1926 ई. में अभिषेक हुआ था। इसी परिसर में एक संगमरमर का महल है जो अब डोगरा आर्टगैलरी के पास है। राजा रणवीर सिंह की तीन रानियों के इस परिसर में तीन अलग-अलग महल थे। वे हिमाचल की थी। इसके बाद महारानी बन्दराल और महारानी चाड़क के महल थे। पश्चिम में अमर सिंह की रानियों का रणवास था। उनकी पाँच रानियाँ थी। इन महलों में दो छोटे मंदिर थे। इन में एक मंदिर कालीवीर का और दुसरा देवी मल्ल का हैं राजा रामसिंह की रानी कठार वाली के लिए अलग महल था। महारानी चाड़क के लिए प्रतापसिंह ने आधुनिक शैली में चार मंजिल ऊँचा महल बनवाया। इसी महल के साथ एक शिव मंदिर है, यहाँ रानियाँ व्रत और पर्वों पर इकट्ठी होती थी। एक महल राजा अमर सिंह के लिए और एक तोषखाना के लिए बना था। मुवारक मंडी के चारों ओर महल थे और इसके मध्य में एक पुष्पवाटिका थी जिसमें हर प्रकार के पुष्प तथा सुगन्धित वृक्ष थे। मुवारक मंडी में ग्रीन हाल, महाराजा प्रतापसिंह का महल भी बड़े भव्य थे। मुवारक मंडी में प्रवेश के लिए तीन डियोढ़ियाँ बनी थी जो आज भी हैं। आज़ादी के बाद इस महल को सचिवालय बनाया गया। इस में आज भी कई सरकारी कार्यालय हैं। ये महल कई बार आग की भेंट हुए जिस से इन का सौंदर्य विकृत हुआ।

अमर महल संग्रहालय:- यह अति सुन्दर-भवन तवी नदी के तटीय पठार के ऊपर एक खुले स्थान में बना है। कहते हैं कि महाराजा प्रतापसिह के भाई राजा अमर सिंह ने इसे विदेशी अधिकारियों के लिए एक विश्राम स्थल के रुप में बनवाया। वे स्वयं इस महल के साथ ही रहते थे। इस महल की विशेषता यह है कि यह पाश्चात्य स्थापत्य के अनुरूप बना है। इसका बाह्य रुप आकर्षक है। इसका छत लोहे की चादरों से आवेष्टित हैं। छत ढलवां हैं।

महाराजा कर्णसिंह ने बाद में इस महल को एक स्मारक का रुप दिया। इसमें डोगरा शासकों का सोने का सिंहासन, अमूल्य चित्रा की प्रदर्शनी

तथा 25000 पुस्तकों पर आधारित पुस्तकाल है।

डोगरा-कला संग्रहालय (डोगरा आर्टम्युज़ियम) यह संग्रहालय मुवारक मंडी में है। यहाँ देखने के लिए आठ सौ अनुपलब्ध बसोहली, जम्मू कोगड़ा के चित्र, पांडुलिपियाँ, अस्त्र-शस्त्र, शिलालेख, वस्त्र आदि प्रदर्शित हैं जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हैं।

जम्मू के साथ जो उपनगर विकसित हुए हैं उन में 2001 की जनगणना के अनुसार छन्नी हिम्मत की आबादी 18125, छन्नी राम की आबादी 11901, डगियाना की आबादी 7019, गंगेयाल की आबादी 4948, कालूचक्क की आबादी 5853, मुटठ्ी की आबादी 10027, पलौड़ा की आबादी 21300 1096, गुजराल की आबादी 3051, बड़ी ब्राह्मण की आबादी 33581 थी। अब यह नगर चहुँ दिया में फैल रहा है।

प्रकाशित पुस्तकों की सूची

1. डुग्गर की लोकगाथाएँ
2. डुग्गर का लोक-साहित्य
3. डुग्गर की दन्त कथाएँ
4. डुग्गर के लोकगीत
5. डोगरा-गाँव-पैंथल
6. डुग्गर की संस्कृति
7. पाडर: लोक और संस्कृति
8. डुग्गर के लोक-देवता
9. दाता रणपत की अमर कथा
10. डुग्गर के देवस्थान
11. डुग्गर का भाषायी परिचय
12. डुग्गर के अमर सेनानी
13. डुग्गर का इतिहास
14. डुग्गर के दुर्ग
15. डुग्गर की ऐतिहासिक नारियाँ
16. कश्मीर की कहानी
17. डुग्गर के मंदिर
18. डुग्गर के गुफा मंदिर
19. डुग्गर में बुद्धमत
20. डुग्गर के दरवेश
21. डुग्गर के शिलालेख (प्रकाशनाधीन)

सहायक ग्रंथ सूची

पुस्तकें

1. तसवीर ए डोडा- असरीर
2. हिस्टरी एण्ड कल्चर आफ किश्तवाड़- डी.सी.शर्मा
3. डुग्गर का इतिहास- शिव 'निर्मोही'
4. जम्मू एण्ड कश्मीर - डिस्ट्रिक प्रोफाइलज़्- सूचना विभाग
5. राज दर्शनी- गणेश दास भटैहड़ा
6. ए शार्ट हिस्टरी आफ जम्मू किंगडम- डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क
7. पुंछ- खुशदेव मैनी
8. जसरोटा- मन्साराम 'चंचल'
9. जम्मू एण्ड कश्मीर टैरीटोरीज़्- फ्रेडरिक ड्रिव
10. राजतंरगिणी- स्टाइन
11. ए गज़्ट आफ कश्मीर- वीट्स
12. साढ़ा साहित्य-1980- कल्चरल अकादमी-जम्मू।
    (डोगरे ग्रां: सांस्कृतक अध्ययन)
13. रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ- डोगरी संस्था, जम्मू
14. डुग्गर की संस्कृति- शिव निर्मोही
15. डुग्गर का गौरवमय इतिहास- अशोक जेरथ
16. सम्वयाल वंश एवं साम्बा- जगढ़ीय सम्वयाल
17. साढ़ा साहित्य (जम्मू प्रान्त का सांस्कृतिक सर्वेक्षण)
    कल्चरल अकादमी, जम्मू
18. शीराज़ा डोगरी- कल्चरल अकादमी-जम्मू।
19. डुग्गर संस्कृति दे मूल आधार- सुखदेव सिंह चाड़क
20. श्री स्थल देवी दर्शनम्- हरिलाल शर्मा
21. डोगरा संस्कृति: एक समालोचनात्मक अध्ययन- श्यामदत पराग
22. डोगरा गाँव पैंथल- शिव 'निर्मोही'
23. खिता-ए कोहसार-डोडा- सैदुल्ला-शाद फरीदावादी
24. डुग्गर के मंदिर- शिव 'निर्मोही'
25. देवा वटाला- वलदेवसिंह चिब

26. एन्टीक्वीटिज़ आफ जम्मू- शिवकुमार शर्मा
27. इन्वेटोरी आफ मानुमेन्टस
एण्ड साइट्स आफ नेशनल इम्पौर्टस भारतीय पुरातत्व-सर्वेक्षण-कश्मीर मंडल, जम्मू।
28. हेरिटेज़ जम्मू थरु द एज़िज- सम्पादक बी.आर.मणि
29. अवर हेरिटेज़- डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स
30. जम्मू दर्शन- प्रेम सराफ
31. कल्चरल हेरिटेज़ आफ डुग्गर- ज्योतिश्वर पथिक
32. डुग्गर.के दुर्ग: शिव 'निर्मोही'
33. एन्टीक्वीटिज़. आफ चनाव वेली इन जम्मू- प्रियतमकृष्ण कौल
34. डुग्गर के शिलालेख (प्रकाशनाधीन)- शिव 'निर्मोही'
35. पाडर: लोक और संस्कृति- शिव 'निर्मोही'
36. डुग्गर का सांस्कृतिक इतिहास- कल्चरल अकादमी, जम्मू
37. हिस्ट्री आफ पंजाब हिल स्टेटस- हिचसन व फोगल
38. बसोहली पेंटिंग: एम. एस रंधावा
39. स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर- ओम प्रकाश कोटलवी
40. गोजर इन्साइकलो पिडिया: जावेद राही
41. हिन्दू शराइनज़ आफ द वेस्टरन हिमालयाज़- अशोक जेरथ
42. डुग्गर के देवस्थान- शिव निर्मोही
43. हमारा साहित्य: (1995)- कल्चरल अकादमी, जम्मू
44. डुग्गर के गुफा मंदिर- शिव 'निर्मोही'
45. किश्तवाड़: संस्कृति और परम्परा (पांडु लिपि) शिव 'निर्मोही'
46. फोंटस एण्ड पैलासिज़ आफ द वेस्टर्न हिमालय-अशोक जेरथ
47. नागसेन आफ मिलिन्द पनोह- प्रियतम कृष्ण कौल
48. डुग्गर में बुद्धमत: शिव 'निर्मोही'
49. डुग्गर के दखेश: शिव निर्मोही
50. फोक आर्टस आफ डुग्गर- भाग 2, अशोक जेरथ।

प्रकाशितलेख

1. कहानी जम्मू दी- विश्वानाथ खजूरिया (शीराजा डोगरी अंक 43)
2. उतरकाशी- उतर बैह्नी- मुकुन्दलाल नागर (शीराजा डोगरी अंक 85)
3. सुर्ग भूमि- भद्रवाह- प्रो. मदन मोहन शर्मा (शीराज़ा डोगरी अंक - 3)
4. साम्बे दे खूह- राला ते मंदर- सत्यपाल मिसरा (शीराज़ा डोगरी अंक - 139)
5. कल्हण दे बेले दा जम्मू- बलदेव प्रसाद शर्मा (शीराजा डोगरी अंक 53)
6. रामनगर- इक इतहासक नगर- ओम शर्मा जन्दरे आड़ी (शीराज़ा डोगरी अंक 112)
7. लाटी-धूना- ओम प्रकाश जिंद्रयाड़ी (शीराज़ा डोगरी अंक 120)
8. डुग्गर दा आँचल रामनगर- प्रकाश प्रेमी (शीराज़ा डोगरी अंक 152)
9. जम्मू प्रान्ता दियां पराचीन ग्रीक- बस्सोआं ते ग्रां- जगदीश चन्द्र साठे, (शीराज़ा डोगरी अंक 70)
10. मेरा नगर बनी- शिव दोवलिया (शीराज़ा डोगरी अंक - 126)
11. बन्दरालता- ओम शर्मा रामनगरी (शीराज़ा डोगरी अंक)
12. जसरोटा- कश्मीरी विश्वकोश (शीराजा़ा डोगरी अंक 131)
13. मांडा- मधुवाला (शीराज़ा डोगरी अंक 89)
14. अखनूर- जगदीश चन्द्र- साठे (शीराज़ा डोगरी अंक 84)
15. पुंछ दा किला- कश्मीरी विश्वकोश (शीराज़ा डोगरी अंक 132)
16. हयुगेल दा डुग्गर यात्रा- शिवनाथ (शीराज़ा डोगरी)
17. लोकवार्ता दा भण्डार - भद्रवाह- मदन मोहन (शीराज़ा डोगरी - 1973)
18. रामनगर दा इतिहासः ओम शर्मा जिन्द्रयाड़ी (शीराज़ा डोगरी - अंक 137)

19. राम नगरैच गर्मियें दी ब्हार- ओम प्रकाश विद्यार्थी
(शीराज़ा डोगरी अंक 83)
20. अखनूर: मोती लाल साकी (शीराज़ा डोगरी अंक 94)
21. चिनैनी: जगदीशचन्द्र साठे (शीराज़ा डोगरी अंक- 57)
22. रियासी- इतिहासै दे दर्पण च- डॉ. चम्पा शर्मा
(शीराज़ा डोगरी अंक 113)
23. नृसिंह मंदर घगवाल- मंगल दास डोगरा (शीराज़ा डोगरी अंक 180)
24. माढ़ता ग्रां: हरदेव बन्द्राल (शीराज़ा डोगरी अंक 128)
25. जनसाल ग्रां: हरदेव सिंह बन्द्राल (शीराज़ा डोगरी अंक 178)
26. बलौर- मछैड़ी जातरा: तारा स्मैलपुरी (शीराज़ा डोगरी अंक 101)
27. थियाल ग्रां: शिव निर्मोही (शीराज़ा डोगरी अंक 157)
28. संस्कृति दे झरोखे च उधमपुर: शिव निर्मोही
(शीराज़ा डोगरी अंक 93)
29. जिला डोडा दे मेले ते ध्यार: मुहम्मद असदुल्ला बानी
(शीराज़ा डोगरी अंक 93)
30. भारत छोड़ो अन्दोलन दा चनैह्नी तैह्रीक उप्पर असर: शिव निर्मोही
(शीराज़ा डोगरी अंक 123)
31. मेरी बासकुंड जातरा: शिव (निर्मोही शीराज़ा डोगरी अंक 162)
32. राम नगर दे देवस्थान: मनोज शर्मा निश्चिंत
(शीराज़ा डोगरी अंक 135)
33. अंबारां दा इतिहास: शिव निर्मोही (शीराज़ा डोगरी अंक 135)
34. राम नगरै दे पीर: ओम शर्मा जिद्रयाड़ी (शीराज़ा डोगरी अंक 77)
35. पुर मण्डलै दी राम लीला मुकुन्दराम नागर
(शीराज़ा डोगरी अंक 107)
36. डुग्गर संस्कृति दा केन्दर- कलानगरी बसोहली (जोत 1999)
37. श्री सुद्ध महादेव का इतिहास- (धर्ममार्ग जून 2005)
38. मेरा ग्रां नगरोटा प्रेह्ता- खजूर सिंह (शीराज़ा डोगरी अंक 160)

39. साम्बा नगर निर्माण: जगदीपसिंह सम्वयाल (शीराज़ा डोगरी)
40. पैंथल: शिवनिर्मोही- साढ़ा साहित्य- 1980
41. हीरानगर: गुरुदत शर्मा- साढ़ा साहित्य, - 1980
42. जगटी: अशोक जेरथ साढ़ा साहित्य, - 1980
43. उतरवैह्नी: विश्वानाथ खजूरिया- साढ़ा साहित्य, 1980
44. सलाल: शिव दोवलिया- साढ़ा साहित्य, 1980
45. भद्रवाह: प्रियतम कृष्ण कौल- साढ़ा साहित्य, 1980
46. बसोह्ली : प्रकाश प्रेमी:- साढ़ा साहित्य, 1980
47. बसैन्तगढ़ : परसराम पूर्वा:- साढ़ा साहित्य, 1980
48. विलावर: एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण: सत्यपाल श्री वत्स- हमारा साहित्य, 1986
49. उधमपुर नगर: शिव निर्मोही- हमारा साहित्य, 1986
50. भद्रवाह: प्रियतम कृष्ण कौल- हमारा साहित्य, 1986
51. कठूआ नगर: मन्साराम चंचल- हमारा साहित्य, 1986
52. कठूआ नगर: मन्साराम चंचल- हमारा साहित्य, 1986
53. मीर पुर: डॉ. संसार चन्द्र- हमारा साहित्य, 1986
54. पुंछ: खुश देव मैनी- हमारा साहित्य, 1986
55. रामनगर: प्रकाश प्रेमी- हमारा साहित्य, 1986
56. जम्मू: विश्वानाथ खजूरिया- हमारा साहित्य, 1986
57. रियासी: शिव दोवलिया- हमारा साहित्य, 1986
58. डोडा: मुहम्मद असदुल्ला वाणी- हमारा साहित्य 1986
59. चनैनी दा सांस्कृतक परिचय: प्रेम प्यारी (कश्मीर टाईम्ज़ 15 जून 1993)
60. सुद्ध महादेव: पद्म पुराण के सन्दर्भ में- शिवनिर्मोही, कश्मीर टाईम्ज़ 3.01.1993
61. चनैनी आन्दोलन अमरनाथ शर्मा, - कश्मीर टाईम्ज़ 8.01.1993
62. मेरी चनैनी दियां यादां: ओम प्रकाश गुप्त, कश्मीर टाईम्ज 20.05. 1993

63. बन्दरालता दी लोक संस्कृति : शिवनिर्मोही, कश्मीर टाईम्ज 17 सितम्बर 1994
64. रामनगर दा इतिहासः ओम शर्मा जिन्द्रयाड़ी, कश्मीर टाईम्ज़ 20.5. 1995
65. रियासी दा इतिहास : अब्दुल रशीद जोन, कश्मीर टाईम्ज़, 17.9. 1993
66. भरथल ग्रांदा इतिहासः शिव 'निर्मोही' कश्मीर टाइम्ज़ 19.9.1993
67. रियासी खेतरचनाग जातिः ब्रह्म स्वरुपः कश्मीर टाइम्ज़, 20.9. 1993
68. चढ़ेआई. इतिहास ते संस्कृतिः शिव 'निर्मोही' कश्मीर टाइम्ज़ 9.5. 1993
69. पैंथल ग्रां दा इतिहासः शिव 'निर्मोही' - कश्मीर टाईम्ज़ 9.5. 1993
70. पौनीः शिवनिर्मोही, कश्मीर टाइम्ज़ 23.05.1994
71. मढ़ग्रांः शिव 'निर्मोही' कश्मीर टाइम्ज़ 4.01.1995
72. नंगलग्रांः शिव निर्मोही- कश्मीर टाइम्ज़ 6.01.1995
73. मनकोट दा इतिहासः सुदर्शन खजूरिया 4.5.1995
74. मांडा ग्रां शिव निर्मोही- कश्मीर टाइम्ज़ 7.2.1995
75. राजौरी दा इतिहास, जी.ए.मीर, कश्मीर टाइम्ज़ 9.8.1994
76. मणिसरः शिव 'निर्मोही' कश्मीर टाइम्ज़ 23.04.1994
77. जगानु दा इतिहासः कालीदास खजूरिया- कश्मीर टाइम्ज 13.9.1993
78. बलौर दे स्मारकः शिव 'निर्मोही' कश्मीर टाइम्ज़ 01.02.1994
79. बबौर दे स्मारकः शिव 'निर्मोही' कश्मीर टाइम्ज़ जनवरी 1994
80. बन्दरालता दे स्मारकः शिव 'निर्मोही' कश्मीर टाइम्ज 3 मार्च 1994
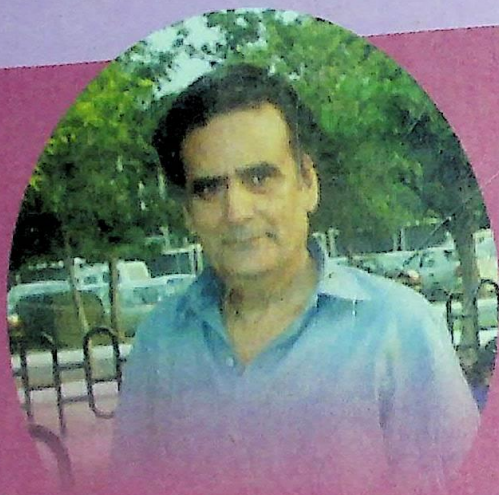
- शिव 'निर्मोही' -

लेखक परिचय

शिव निर्मोही इतिहास, लोक-संस्कृति, पुरातत्व, भाषा विज्ञान, धर्म और दर्शन, पर्यटन, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नृविज्ञान तथा लिपि-विज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान हैं। वे प्रादेशिक इतिहास और संस्कृति के विशेषज्ञ तथा शोधकर्ता के रूप में जम्मू- कश्मीर राज्य में प्रतिष्ठित हैं। वे डुग्गर प्रदेश के अकेले ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने पूरे डुग्गर प्रदेश की यात्राएँ करके डुग्गर सांस्कृतिक धरोहर को संयोजित करने में सफलता प्राप्त की है। वे इस क्षेत्र की सांस्कृतिक [illegible] पर अब तक पच्चीस पुस्तकें लिख चुके हैं। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने इन की पुस्तक 'डुग्गर की संस्कृति' तथा '[illegible] और संस्कृति' को पुरस्कृत किया है। जे.एण्ड.के अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज ने इन की 'डुग्गर की लोक गाथाएँ' और 'डुग्गर का लोक साहित्य' पुस्तकों को सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों के रूप में मान्यता दी है और पुरस्कृत किया है। जम्मू-कश्मीर शिक्षा विभाग और समाज कल्याण विभाग ने भी इन्हें पुरस्कृत और सम्मानित किया है।

प्रो. निर्मोही कई राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय सांस्कृतिक और साहित्यक संस्थाओं से जुड़े हैं। तीस से अधिक संस्थाओं ने इन्हे अभिनन्दित या सम्मानित किया है।

व्यवसाय से प्राध्यापक प्रो. निर्मोही कई राष्ट्रीय स्तर की परिचर्चाओं में भाग ले चुके हैं।

साहित्य संगम पब्लिकेशन्स
कच्ची छावनी, जम्मू